# शिवानी का आशीर्वाद

*

मनु शर्मा

प्रकाशक

अध्यापक प्रकाशन मण्डल

१६१ गडबड़झाला पार्क

लखनऊ

# अपनी बात

कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि की भाँति जीवन-चरित्र भी साहित्य का एक अंग है। 'जो महान चरित्र एवं पराक्रम के कारण' अपने देशवासियों में स्वयं ख्याति प्राप्त कर लेते है, उनकी स्मृति के सम्मान की नैसर्गिक इच्छा'[1] साहित्य के इस अंग के सर्जन का प्रेरक तत्व है। ऐसे ही सम्मान की पुनीत भावना 'शिवानी का आशीर्वाद' के निर्माण के मूल में भी है, जो इस पुस्तक को इतिहास के कोरे तथ्यों एवं घटनाओं की शुष्क तालिकाओं तक ही सीमित न रखकर उस युग के समाज और जन-जीवन तक पहुँचा देती है।

'साहित्य का ऐसा अंग, जो किसी के व्यक्तिगत जीवन का इतिहास हो'[2], जीवन-चरित्र कहलाता है। अतएव ऐतिहासिक तथ्यों के साथ-साथ उसमें साहित्य के तत्वों का भी समावेश अपेक्षित है। दोनों का संतुलित मिश्रण इस कला के लिए आवश्यक है। इतिहास के अभाव में जीवन-चरित्र का कोई अस्तित्व नहीं, और साहित्य के अभाव में वह कोरी घटनाओं की तालिका मात्र रह जाता है। एक प्राण है तो दूसरा तन, एक सुमन की सुरभि है, तो दूसरा उसका रूप-आकर्षण। दोनों के सामंजस्य पर ही इस कला का सौन्दर्य निर्भर रहता है।

इतिहास घटनाओं और परिस्थितियों की याद दिलाता है जिसमें जीवन का सत्य रहस्य में छिपा रहता है। कल्पना की सुकुमार अंगुलियाँ परिस्थिति के गर्भ में छिपे सत्य पर से रहस्य का अवगुंठन हटाती है।

---

1. Sir Sidney Lee in Development of English Biography, page 11.
2. The Oxford Dictionary.

इतिहास की परिधि 'क्यों' और 'कब' के भीतर ही समाप्त हो जाती है। वह 'कैसे' पर बहुत कम विचार करता है। यह विचार साहित्य की ही सीमा के भीतर होता है। इतिहास जीवन से अधिक घटनाओं के विषय में जागरूक रहता है। 'निमंत्रण पर शिवाजी अफजल खाँ से मिले। खाँ ने धोखा देकर शिवाजी पर वार किया, किन्तु वे पहले से तैयार थे। उन्होंने उसका सामना किया और उसे मार भगाया। बस, इतिहास का उद्देश्य इतने से समाप्त हो गया। किन्तु मिलते समय शिवाजी में कैसा अन्तर्द्वन्द्व था, अफजल क्या सोच रहा था, पूरी मराठी सेना रहस्यमय भविष्य की ओर किस प्रकार एक-एक कर निहार रही थी, यह बताना इतिहास के दायरे के बाहर की चीज है, किन्तु जीवन-चरित्र में दोनों चाहिए। इतिहास सत्य के बाह्य पक्ष की ओर जहाँ संकेत करता है, वहाँ कल्पना उसके आन्तरिक सत्य का दर्शन कराती है। इसी से सत्य को सजीव बनाने के लिए, उसका जीवन-चित्र खींचने के लिए कल्पना के पुट की भी आवश्यकता पड़ती है, किन्तु यह कल्पना परियों के देश की नहीं होती जो आदमी को सोने की चिड़िया बना देती है, वरन् इतिहास में वर्णित हाड़-मास के आदमी में प्राण फूँककर पाठकों के सामने चलता-फिरता, हँसता-बोलता आदमी बना देता है। मेरा प्रयास भी शिवाजी को आप के समक्ष ऐसा ही उपस्थित करने का था। देखिए कितना सफल हुआ।

जब जीवन-चरित्र-लेखन की कला में इतिहास के साथ कल्पना का पुट आवश्यक है, तो क्या जीवन-चरित्र ऐतिहासिक उपन्यास से भिन्न नहीं ? नहीं, भिन्न है। इसमें न तो ऐतिहासिक उपन्यासों की भाँति सुगठित कथानक की योजना ही होती है और न आदि से अन्त तक कल्पना की प्रौढ़ परम्परा ही चलती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना से परिवेष्ठित सत्य होता है और जीवन-चरित्र में सत्य से परिवेष्ठित कल्पना।

कल्पना के अभाव में जीवन-चरित्र नीरस हो जाता है। यह कमी हिन्दी के प्राय सभी जीवन-चरित्रों में अब तक खटकती रही है।

यही कारण है कि हिन्दी में जीवन-चरित्रों को पढ़ते समय ऐसा अनुभव होता है, मानों चरित्र-निर्माण के लिए कोई कड़ुई घूँट पीयी जा रही हो, किन्तु कल्पना की अधिकता भी बहुत घातक है। जहाँ कल्पना अधिक हुई, जीवन-चरित्र दो कौड़ी के उपन्यास से अधिक नहीं रहता। रहस्य के उद्घाटन तथा सत्य के प्रदर्शन के साथ ही साथ पाठकों को मधुर घूँट-सा रस मिले, इसीलिये इस पुस्तक में मैंने कल्पना की सहायता ली है। घटनाएँ सब सत्य हैं, संवाद काल्पनिक है।

जीवन-चरित्र लेखन की कला का आरम्भ संसार में सभी जगह संत-चरित्र (Hagiography) के लेखन से होता है। इसके बाद राजाओं के चरित्रों का नम्बर आता है। राजाओं का जीवन-चरित्र तो बराबर काल के कराल गाल में समाता रहा है। कुछ जो अधिक जनप्रिय थे, उनकी कथा समय की प्रौढ़ दीवारों को गिराकर आज भी दिखायी पड़ जाती है। किन्तु संत चरित्र अब तक किसी न किसी रूप में जीवित है। सन्त चरित्र-लेखन की कला में केवल 'गुरु की महिमा' को ही स्थान मिलता रहा है। उनके दोषों का वर्णन करना तो दूर रहा, उनकी कल्पना करना भी पाप माना गया। इससे इन चरित्रों में सदा जीवन के उज्ज्वल पक्ष ही दिखाई दिये, श्याम पक्ष आ न सका। संतचरित्र का यह दोष जीवन चरित्रों में भी दिखायी पड़ जाता है। लेखक जिसकी जीवनी लिखता है, उसके सम्मान तथा महत्ता की रक्षा करने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है, जिससे उसके दोषों का कहीं भी उद्घाटन नहीं होता। मनुष्य भी दूध का धोया देवता मालूम पड़ने लगता है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति इस कला के लिए कलंक है। इस पुस्तक में मैंने किसी भी सत्य को छिपाने की चेष्टा नहीं की। शिवाजी को देवता या दानव बनाना न तो मेरा प्रयोजन था और न इस कला का उद्देश्य।

अन्त में मै अपने मित्र और परम हितैषी श्री सुधाकर पाण्डेय को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ क्योंकि इस पुस्तक का पूरा होना

तो दूर रहा, इस मित्र के बिना मेरे जीवन का कोई कार्य ही पूरा नहीं होता। अपने अनुज देवीप्रसाद शर्मा एवं रामप्रसाद शर्मा को भी उनके श्रम के लिये धन्यवाद देता हूँ।

भाद्र पूर्णिमा, २०१३
७५, मध्यमेश्वर

—मनु शर्मा

पूज्य पिताजी को सादर समर्पित

१

# जय भवानी

यह रंगीन मौसम की एक रंगीन कहानी हैं।

होली सिर पर सवार थी। रंगपंचमी का उत्सव था। पिचकारी के रंगीन पानी की फुहार, अबीर गुलाल की बहार और आपसी प्यार के इस गजब के त्योहार में लोग जैसे अपने को भूल सा गये थे। लखूजी यादवराव भी आज मस्ती में थे। उनके यहाँ तो पूरा दरबार ही लगा था। नाच गाना हो रहा था। मौज से सराबोर वातावरण था। हँसी खुशी की बातें हो रही थीं। कभी कभी जोर के ठहाके से पूरा महल गूँज उठता था।

मालोजी भोसले तथा उनके छोटे भाई विठोजी भी यहाँ आये थे। ये यादवराव के विश्वास पात्र कर्मचारी हैं। स्वामी के उत्सव में उनका आना जरूरी है ही, और फिर मालोजी से यादवराव बड़े प्रसन्न रहते हैं। उनके पराक्रम की प्रशंसा करते वह शीघ्र नहीं अघाते। अपने घर सा उन्हें समझते हैं। मालो जी का एक छोटा पुत्र है—शाहजी! जिसकी अवस्था करीब पाँच छह साल होगी।[1] इसे तो वे अपना बालक ही समझते हैं। वह जब आता यादवराव के पास ही रहता और नहीं तो अन्तःपुर की दासियों के साथ खेलता। महारानी भी

---

१—ग्रायड डफ यदुनाथ सरकार आदि अनेक लेखकों ने शाहजी की अवस्था पाँच साल मानी है किन्तु शिवदिग्विजय में शाहजी की अवस्था लगभग ९-१० वर्ष लिखी है।

इसे खूब चाहती थीं। कमर में छोटी सी तलवार बाँधे उछलते कूदते इस बाल पर महाराज लट्टू हो जाते, बहुधा वह महारानी से कहते—गिरजा, ईश्वर यह अनुपम कृति काश मेरे यहाँ होती!" महारानी मुसका देतीं।

पिता के साथ आज वह भी आया है। सुन्दर वेषभूषा में नाटा सा ठिकना प्रभावशाली बालक उस जन-समूह के बीच जैसे खिलौना हो गया है।

यादवराव ने उसे प्यार से अपनी ओर खींचा और गोद में बिठा लिया स्नेह से चूमते हुए उन्होंने उससे कहा—"देख तो वह कौन आयी?" उसने मुस्कराते हुए देखा। तब तक जीजाबाई हाँथ में अबीर लिये उसपर झपट चुकी थी। उसने अपने साथी शाहजी के मुँह पर खूब अबीर लगायी। किन्तु शाह भी रोने वाला नहीं था। वह भी अपनी मुट्ठी भरकर उठा। उसने जीजाबाई के मुँह पर अच्छी तरह अबीर लगायी और अपना बदला ले लिया। सभी हँस पड़े यादवराव ने दोनों को खींचकर अपनी दोनों जाघों पर बैठाया और मुस्कराते हुए बोले...बस बेटे, अब नहीं।

शाहजी और जीजाबाई के गालों पर लाल लाल अबीर सुन्दर लग रही थी। यादवराव ने दोनो को ममत्व भरी आँखों से एक-एक बार देखा और शाह-जी से बोले, "क्यों बेटा कैसी दुलहिन है?" शाह हँस पड़ा। करुण अधरों के बीच श्वेत दाँत दिखायी पड़ने लगे। मुस्कराते हुए उन्होंने पुनः जीजाबाई से कहा—"क्यों बेटी कैसा सुन्दर दुल्हा है"—वह हँस तो न सकी पर मुस्कराती हुई उठकर भागने लगी। यादवराव ने उसे रोका और जोर से हँसते हुए मालोजी से बोले—"भगवान् ने मेरी लड़की और तुम्हारे लड़के को भी खूब बनाया है। एक चाँद का टुकड़ा, दूसरा गुलाब का फूल। ईश्वर ने सौन्दर्य की इन दोनों मूर्तियों को कैसा मिलाया है!

यादवराव ने यह हँसी में कहा था। कुछ भावावेश में आकर बिना समझे बूझे वह बोल उठे थे, पर मालोजी को तो मौका मिला वह झट उठ खड़े हुए। सभी उपस्थित व्यक्तियों को सम्बोधित कर जोर से कहने लगे—"भाइयों आपने सुना, यादवरावजी क्या कह रहे हैं? वे अब अपनी लड़की का विवाह मेरे लड़के

से करने के लिये वचनबद्ध हो चुके। आज से वे हमारे समधी हुए। जीजाबाई मेरे बेटे की बहू हुई।" इतना कहकर मालोजी अपने स्थान पर बैठ गये।

बात वात की तरह फैल गयी। हँसी हँसी में एक बड़ी प्रतिज्ञा यादवराव से करा दी गयी। तिल का ताड़ हो गया। मालोजी की बात सुनते ही यादवराव की सारी मस्ती कपूर की तरह उड़ गयी। उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि विनोद में कही गयी बात का इतना गंभीर रूप हो जायेगा। वे खिन्न मन उठे और जीजाबाई को साथ ले अंतःपुर में चले गये। आज शाहजी भी उनके साथ नहीं गया। थोड़े समय के लिये गंभीरता छा गयी। पर सभा के सामूहिक वातावरण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। सभा उसी मौज मस्ती में विसर्जित हुई, पर मालोजी ने सब कुछ समझ लिया।

०००-०००

होली का उत्सव समाप्त हो गया। पर बात समाप्त नहीं हुई। लखूजी यादवराव ने आज अपने मित्रों को भोज देने का आयोजन किया है। घर घर निमंत्रण बट रहा है। मालोजी भी आमंत्रित हैं, पर वे नहीं आये। उन्होंने कहला भेजा कि जो बातें हुई हैं, उनके अनुसार अब हम और आप एक सम्बन्ध सूत्र में बँध गये हैं। आप हमारे समधी हैं। अच्छा होता विवाह के अवसर पर ही साथ बैठकर हम भोजन करते। परम्परा के अनुसार आपका हमें या हमारा आपको निमंत्रण देना अब अच्छा नहीं लगता।

भोज हँसी खुशी से समाप्त हुआ। लोगों के लिये आज मालोजी तथा विठोजी का अभाव एक नयी बात थी, किन्तु उनके न आने का कारण किसी ने नहीं पूछा। मन ही मन सब समझ गये। बात तो पुरानी थी, पर सोचना नये ढंग से था। लोगों के चले जाने के बाद यादवराव ने सोचा, इसकी चर्चा गिरजाबाई से भी कर देनी चाहिए। गिरजाबाई यादवराव की पत्नी थी। वीरांगना, तेज बुद्धिमती रमणी थी। वे उन्हें अत्यधिक मानते भी थे। इतना होने पर भी जीजाबाई के कानों तक यह बात पहुँची नहीं थी। अचानक अपनी पुत्री

के विवाह की बात सुनकर गिरजाबाई बिगड़ उठीं। उन्होंने कहा—"शाहजी, मालोजी का पुत्र! और कहाँ मेरी पुत्री? मालोजी आपके अधीन हैं। आपके अनुसार चलने में ही उनकी भलाई है। धन, मान, प्रतिष्ठा आदि किसी में भी वह आपके बराबर नहीं। छोटे से पत्थर की हिमालय से क्या तुलना? यह सम्बन्ध मुझे कदापि स्वीकार नहीं है। साधारण घोड़सवार के लड़के को मैं अपना दामाद कभी भी नहीं बना न सकती।" कहते-कहते उसकी आँखें लाल हो गयी थीं। अधर क्रोध से काँप रहे थे।

गिरजाबाई की बात सुनकर यादवराव बड़े ही लज्जित हुए। वे पहले ही ऐसी भयंकर परिस्थिति को समझ गये थे। उन्होंने बड़े साधारण ढंग से मुस्कराते हुए कहा, "अरे, तू तो व्यर्थ ही लाल-पीली हो रही है। मैंने तो यह सब मजाक में कहा था। भला मैं कब अपने खानदान की इज्जत बोरना चाहूँगा।"

"लेकिन जब मालोजी ने भरी सभा में विवाह की घोषणा की तब तो आपकी जबान पर दही जमी थी?" गिरजाबाई के इस तीखे तर्क में बड़ा दम था। यादवरावजी कुछ समय के लिए बिल्कुल चुप हो गये। बाद में संभलते हुए बोले—"गिरजा तू तो अपनी ही बात कहती है। जरा सोच तो, मैं एक प्रसिद्ध प्रभावशाली मनसबदार हूँ। मालोजी मेरा नौकर है। सभा में तू-तू मैं-मैं करना, उसके मुँह लगना क्या अच्छी बात थी? मेरा शिष्टाचार मुझे विवश कर रहा था कि मैं उसकी बात को हँसकर टाल दूं।" यादवराव के चुप होते ही गिरजा बोली, "आप यह क्यों नहीं कहते कि हमारे शिष्टाचार ने एक धनाढ्य मनसबदार की पुत्री से एक घोड़सवार के पुत्र की शादी की स्वीकृति हँसकर कर दी।" व्यंग बड़ा तीखा था। बड़ी विचित्र मुद्रा से कहा गया था।

"कुत्ते की दुम सीधी हो सकती है, पर औरत का दिमाग सीधा नहीं हो सकता" कहते हुए यादवराव कमरे से बाहर निकल आये। बात बढ़ाना उन्होंने ठीक नहीं समझा था। उनकी मुद्रा गम्भीर थी वे मन में बहुत कुछ सोच रहे थे। यह फड़कते हुए होठों से मालूम हो रहा था किन्तु वे क्या सोच रहे थे पता नहीं। हाँ, आँखें बता रही थीं कि घृणा तथा क्रोध के मिश्रण ने उनके मस्तिष्क

में क्रान्ति कर दी थी। शीघ्र ही उन्होंने मालोजी को लिख भेजा, कि मैंने जो कुछ कहा था वह हँसी दिल्लगी में कहा था। हँसी की बात को सत्य समझना ठीक नहीं। हमारी तुम्हारी कोई समानता नहीं। दुनिया इस सम्बन्ध में क्या सोचेगी ? बीती को भुला दो। शीघ्र ही मिलो। मैं तुम्हें पुनः आमन्त्रित करता हूँ।"

किन्तु मालोजी कब मानने वाले थे। उन्हें तो अवसर से लाभ उठाने की धुन सवार थी। उन्होंने सम्मान का अनुभव करते हुए उत्तर लिखा, जिसका आशय इस प्रकार था, "आदरणीय यादवरावजी आपने विवाह की प्रतिज्ञा चाहे जिस मनः स्थिति में की हो, किन्तु वह भी एक प्रतिज्ञा थी। इतने लोगों के बीच में की गयी प्रतिज्ञा एक मराठा इतनी सरलता से कभी भी नहीं टालता। अब तो हम आपकी प्रतिज्ञा के ही अनुसार आपके घराने से सगाई करने के अधिकारी हैं।"

पत्र देखते ही यादवराव जल उठे। क्रोधाग्नि से उनका अन्तर भभकने लगा। उन्होंने सोचा, "यह हमारा नौकर, हमारे अन्न पर पलने वाला ही हमें शिक्षा देता है। मराठा शिष्टाचार सिखाता है। कल तक जब अपने विरुल गाँव में खेती करता था, तब सारी शिक्षा पेट में रही। आज चला है बात बनाने।" उन्होंने तत्काल ही कारकुन को बुलाकर कहा कि शीघ्र ही मालोजी तथा विठोजी का जितना हिसाब हो वह चुका दो और उन्हें शीघ्र सूचना दो कि लखूजी यादव-राव को आपकी सेवाओं की आवश्यकता नहीं है। आप तत्काल जागीर छोड़कर चले जाइये।" यादवरावजी का चेहरा ताँबा हो गया। उनकी आँखों से खून टपक रहा था।

कारकुन ने यह नहीं जाना कि आखिर बात क्या है ? कल तक तो दोनों भाई बड़े ही प्यारे थे। उन्हें समधी बनाया जा रहा था, फिर आज क्या बात हुई कि वे शत्रु हो गये। कुछ भी हो, हिसाब जोड़ा गया। वेतन तथा यादव-राव की आज्ञा मालोजी तक भेजी गई। यह सब कुछ तत्काल हुआ।

मालोजी वेतन देखते ही घबरा गये। उन्होंने शीघ्र ही पत्र खोला तथा

पड़ा। कुछ समय के लिए होशहवास गुम हो गया। बाद में कुछ सोच समझकर मुस्कराते हुए बोले, पत्रवाहक सामने खड़ा ही था। "कोई बात नहीं। हम मराठे हैं। सत्य को ठीक समझते हैं। हमने सत्य कहा। यदि इससे यादवरावजी को क्रोध आ गया, तो उनका क्रोध सिर माथे पर। हम किसी से डरते नहीं। पुरुषार्थ हमारा साथी है। भाग्य मार्ग निर्देशक है। भावानी का आशीर्वाद हमारे साथ है। हमें संसार के किसी भी व्यक्ति का भय नही।" उन्होंने पुनः पत्र वाहक से वैसी ही सम्मान पूर्ण वाणी में कहा, "अच्छा जाओ, अपने स्वामी से कह देना कि मालोजी ने नमस्कार कहा है, पर मेरा यह नमस्कार महत्वपूर्ण नमस्कार नहीं है। महत्वपूर्ण नमस्कार तो उस दिन होगा जब हम यादवराव के समधी बनेगें। ऐसे अपमान का बदला लिये बिना मालो कभी भी शान्त नहीं होगा।"

पत्रवाहक उचित अभिवादन कर चला गया। शीघ्रातिशीघ्र दोनों जागीर के बाहर निकल गये। अहमदनगर के गाँव विरुल में आ पुनः खेती करने लगे। पुराना काम आरम्भ हो गया।

००००००

माघपूर्णिमा की सुहावनी रात्रि है। आकाश में चन्द्र हँस रहा है। शीत बढ़ चली है। हवा तीर-सी लगती है। वृक्षों से टकराते पवन की सनसनाती आवाज आ रही है। ज्वार बाजरे के खेत झूम रहे हैं। चाँद ने इन खेतों पर दुधिया पोत दी है। लोग खेतों पर पहरा देने आ गये हैं। इस पहाड़ी प्रदेश में फसल कभी अच्छी नहीं होती। पानी ठीक नहींबरसता है। धरती भी अच्छी नहीं है। फसल जब अच्छी हो जाती है, तब ये भेड़िये कलमुंहे उन पर टूट पड़ते हैं और खेत का खेत साफ कर जाते हैं। इसी से रात में पहरा देना बड़ा ही आवश्यक होता है।

कृषक अपने अपने खेत पर पहरा दे रहे हैं। मालो तथा विठो भी खेत पर आ गये हैं। दूर कहीं से कुछ किसानों के गाने बजाने की आवाज आ रही है। बहुधा लोग खेत में अकेले नहीं आते। कुछ लोगों का साथ रहने से मन बहला

रहता है। बातचीत होती है। दिनभर की पंचायत यही निपटायी जाती है। गाना बजाना, हो हल्ला, मजाक इनके मनोरञ्जन हैं। हम जिस खेत का वर्णन कर रहे हैं वहाँ मालोजी तथा विठोजी दोनों हैं। यह उन्हीं का खेत है। मालोजी तो विश्राम कर रहे हैं। विठोजी खेत के चारों ओर घूमते हुए पहरा दे रहे हैं। हाथ में एक बड़ा डंडा है। बगल में तलवार लटक रही है।

इधर विठोजी के पहरा देने का काम चल रहा था, उधर मालोजी करवटें बदले नींद का आमंत्रण कर रहे थे, किन्तु उन्हें नींद कहा? उनके मस्तिष्क में तो एक विकल संघर्ष चल रहा था। वे सोच रहे थे, "यादवराव ने तो मेरा बड़ा अपमान किया। अब मैं अपने मित्रो को भी मुँह दिखाने लायक नहीं हूँ। आखिर ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि मेरे पास पैसा नहीं है, क्योंकि मैं जागीरदार नहीं हूँ। पैसा ही इज्जत है, वही सम्मान है, वही हमारी योग्यता का उचित माप दण्ड है, तो हमें उसकी ही आराधना करनी चाहिए।" सोचते सोचते मालोजी का हाथ बगल में बँधी तलवार पर गया, वे पुनः भावसागर में डूब गये, "...और यह तलवार? मैं इसकी आराधना करूँ या पैसे की।...नहीं नहीं मैं पैसे की ओर कभी नहीं जा सकता। तलवार ही मेरा सब कुछ है। यह भवानी का प्रतीक है।... जय माँ, जगज्जननी तू मेरी रक्षा कर।" मालोजी कुछ ऐसा ही सोच रहे थे। नींद उनसे उतनी ही दूर थी, जितना आकाश के तारे।

विठोजी का पहरा चल रहा था। घण्टों बीत गये। मालोजी को जब नींद न आयी, तब वे उठे। उन्होने पुकारा—"विठो, थोड़ा विश्राम करो, अब मै पहरा देता हूँ। उधर कैसा हो हुल्ला है? क्या भेड़िये आ गये हैं?"

"नहीं भइया अभी आप सोइये न। अभी तो दो घण्टे भी नहीं हुए हैं। आवाज जरूर आ रही है किन्तु कोई बात नहीं।" विठोजी ने पास आते हुए कहा।"

"आज मुझे नींद नहीं आ रही है। सोचता हूँ, थोड़ा टहल लूँ फिर जब नींद आने लगेगी तो, तुझे जगा दूंगा। मालोजी की वाणी में व्यग्रता थी। वह घबड़ाये हुए से लग रहे थे, किन्तु विठोजी करते क्या? बड़े भाई की आज्ञा थी।

"अच्छी बात है।" उन्होंने अपना डंडा मालोजी को थमाया और वे चारपाई पर पड़ गये। मालोजी पहरा देने लगे।

थोड़े ही समय में विठोजी की नाक फुफकारने लगी। वह गहरी निद्रा में सो गये। मालोजी घूम तो रहे थे, उनका मस्तिष्क भी घूम रहा था। विचार एक के बाद एक मनमें आ रहे थे। उनके विचारों की यह श्रृंखला लम्बी थी। भवानी की एक विशाल प्रतिमा उनके सामने खड़ी हो गयी। सारा आकाश मंडल उसमें समा गया। वे विभोर हो उठे। वाणी मुखर हो उठी, "माँ तू जगत्तारिणी है। तू शक्ति है। तू कल्याणकारिणी है। तेरे ही शरण में आया हूँ। अब तेरा ही भरोसा है। इज्जत रखो माँ। वे इसी प्रकार आत्मविभोर होकर घूम रहे थे। अचानक उन्हें ठोकर लगी। विचार श्रृंखला टूटी उन्होंने नीचे देखा। चीटियो का एक बड़ा बिल था। पर बिल पर ठोकर लगने की क्या बात थी? आश्चर्य। उन्होंने बड़े गौर से देखा सोने का कंकण पहने हुए उन्हें एक हाथ दिखाई दिया। वे विस्मय में पड़ गये। लेकिन यह क्या दूसरा हाथ भी निकाला, ठीक वैसा ही। अब सिर, धड़, फिर भवानी की पूरी प्रतिमा ही मालोजी के सामने आ गयी। वे भय और कुतूहल से सन्न हो गये। उनकी आँखें विस्फारित हो गयी। वे चुपचाप माता के चरणों पर गिर पड़े। माता ने आशीर्वाद दिया "प्रसन्न रहो बेटा, तुम्हारी इच्छा पूरी हो।" इतना कह देवी अनन्त अन्तरिक्ष में धीरे-धीरे विलीन हो गयी।

मालोजी भवानी का आशीर्वाद पा बड़े ही प्रसन्न हुए। उनकी प्रसन्नता धैर्य की सीमा पार कर गयी। वे दौड़े हुए विठोजी के पास आये। उन्होंने उन्हें झकझोरते हुए कहा, "विठो, विठो, देख तो सही, आज खेत में अभी भवानी का आगमन हुआ था। अब हम लोगों की मनोकामना पूरी हो जायगी। अब हम लोग प्रसन्न रहेंगे। भवानी ने हमें आशीर्वाद दिया है। उठ तो, वह जो चिटियों का बिल है न, भवानी वहीं जमीन से निकलती थी। आकाश में समा गयी।" मालोजी इतने प्रसन्न होकर विठोजी को झकझोर रहे थे मानो किसी बच्चे को कोई बड़ी ही मोहक वस्तु मिली है और वह अपने बाल साथी को प्रसन्न हो दिखाना चाहता है।

विठोजी को भी अपने भाई की बात सुनकर तथा उनकी अमित प्रसन्नता पर बड़ा ही आश्चर्य था। उन्होंने सोचा कि आजकल भइया बहुत सोचते हैं, सोचते-सोचते ही वे इस अवस्था तक आ गये। उन्होंने ससम्मान कहा—"आपको भ्रम हो गया है। चलिये सोइये। मैं पहरा देता हूं।" विठोजी ने डंडा सँभाला।

"नहीं विठो, मुझे भ्रम नहीं है, मैं सत्य कहता हूँ—बिल्कुल सत्य कहता हूँ। मैंने माता के दर्शन किये है। आज मेरा जन्म सफल हुआ। मैं कितना भाग्यशाली हूं!" मालोजी आत्मविभोर थे।

विठोजी कुछ न बोले चुपचाप घूमने लगे। कुछ समय के बाद उन्होंने चुपके से मालोजी के पास आकर देखा। वह गहरी निद्रा में सो रहे थे। वे चुपचाप आगे बढ़ गये। करीब दो घण्टा और बीता। चन्द्रमा सिर पर आ गया। विठोजी थककर अपने भाई के पैर की ओर जमीन पर बैठ गये। उन्होंने भइया को जगाना ठीक नही समझा। अचानक मालोजी पुनः उठ बैठे और 'विठो...विठो' चिल्लाने लगे। यद्यपि विठोजी उनके पास ही थे और प्रत्येक पुकार पर बोल भी रहे थे, फिर भी वे तीन-चार बार लगातार जोर-जोर से पुकारते गये। अन्त में उन्होने विठोजी के कन्धो को हिलाते हुए कहा, "विठो! मेरे प्यारे विठो! स्वप्न में भी भवानी मुझसे मिली थी। कैसा भव्य स्वरूप था। गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें, मस्तक पर कुंकुम, शरीर पर सुन्दर अरुण वस्त्र, स्वर्ण मुक्ता तथा विविध रत्न-जटित अलंकार।" मालोजी की आँखें भर आयीं वे कहते ही गये, "उन्होने मुझसे कहा है कि मै तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ। तू शक्तिशाली होगा। तुझे संपत्ति मिलेगी। तुम्हारे बेटे का उसी से विवाह होगा, जिससे तुमने सोचा है। तू उसी चीटी के बिल को खोद। भीतर एक साँप रहता है। वह मेरा ही स्वरूप है। तुम उसे नमस्कार करना वह हट जायेगा। यह सम्पत्ति तथा सम्मान तेरे सत्रह पीढ़ी तक रहेगा। इतना कह देवी चली गयी।"

मालोजी की बातों का विश्वास विठोजी को नहीं हुआ। वे चुपचाप बात सुनते रहे। अन्त में दोनों भाई उठे और उस चीटी के बिल की ओर गये।

बिल खुले मैदान में था। चन्द्रमा के प्रकाश से काम चल रहा था। बिल का मुँह साफ दिखाई दे रहा था। मालोजी ने तलवार से मुँह थोड़ा उभारा। एक सनसनाता साँप निकल भागा। दोनों भाइयों ने सादर सिर झुकाकर उस साँप का अभिवादन किया। साँप को निकलते ही विठोजी को अपने भाई की कही बातों पर विश्वास होने लगा। मालोजी ने दूने उत्साह से अब और खोदना शुरू किया।

पहले थोड़ी मिट्टी निकाली। फिर घड़े का ऊपरी भाग दिखायी दिया। मालोजी ने मुस्कराते हुए विठोजी को देखा। उनकी मौन मुद्रा कह गयी—देखा, तुम्हें विश्वास नहीं था न।

विठो ने मिट्टी हटाने के बाद घड़े निकाले। ये जवाहिरात तथा अशर्फियों से भरे थे। मालो का मन विह्वल हो उठा। सपना जैसे आँखो के सामने नाच रहा था। वे बोले—शक्तिदायिनी माँ, तुम्हारा ही आशीर्वाद मुझे चाहिए था। वह मिल गया। अब क्या मजाल है कि यादवराव का घमण्ड चूर न हो जाय। वह हर घड़े को बड़े गौर से देखते रहे।

किन्तु विठोजी में उतनी विह्वलता नहीं थी। विवेक जाग्रत था। उन्होंने विनम्र कहा—अच्छा होता हम इन्हें इसी समय यहाँ से हटा देते।

"ऐसा ही करो।" मालोजी की स्वीकृति मिली। कुछ विश्वस्त व्यक्ति बगल के खेत में बुलाए गये। घड़े रातो रात हटा दिये गये।

००००००

अब क्या था। सम्पत्ति के मिलने से उनमें नया उत्साह आ गया। उन्हें विश्वास हो गया कि अब अवश्य हमारे दिन भी फिरेंगे। यादवराव से बदला लेने की भावना उनकी और भी प्रबल हो उठी। दबी ज्वाला के लिये चिनगारियाँ उनका महत्व नहीं रखती जितना हवा का एक ऐसा झोका जो उन पर पड़ी राख उड़ा सके।

अब मालोजी ने श्री गौंद के साहूकार शेषाजी नायक की सहायता से एक

हजार घोड़े खरीद लिये और बहुत से सैनिक रखें। बहुत कुछ दान दिया। मन्दिर तथा धर्मशालाएँ बनवायीं। उनकी कीर्ति फैलने लगी। अब उन्होंने पुनः यादवराव को शाहजी के विवाह के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा। कदाचित् अब रस्सी की ऐठ कुछ कम हो गयी हो, पर उनका मुँह अब भी टेढ़ा था। उत्तर नकारामक ही मिला। मालोजी को भी क्रोध आया। उन्होंने पुनः प्रण किया कि जैसे हो सकेगा वैसे मैं अपने पुत्र की शादी यादवराव के पुत्री से ही करूँगा। वैमनस्य बढ़ता गया। कटुता की कहानी को कोई विराम न मिला।

"किन्तु यादवराव के उच्च वंश का अभिमान तोड़ने के लिये कोई तरकीब निकालनी चाहिये। क्या उसपर सीधे आक्रमण किया जाय?—पर सफलता सम्भव नहीं है।" विठो को अपनी शक्ति का अनुमान था। उन्होंने पुनः कहा—यदि हमें निम्बालकर सरदारों की सहायता मिल जाय तो इस यादवराव की जागीर में लूटमार शुरू कर दें। हो सकता है, इससे उसकी बुद्धि फिरे।

अब यादवराव की जागीर में लूट आरम्भ हो गयी। गाँव के गाँव तबाह होने लगे। इतने पर भी वह रास्ते पर नहीं आया। इसमें यादवराव की क्या हानि? हानि तो जागीर में रहने वालों की हुई थी, गरीबों किसानों की हुई थी। इसका यादवराव पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। तो फिर इन गरीबों को व्यर्थ परेशान करने से क्या लाभ? दूसरा उपाय निकालना चाहिए। यदि निजाम सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो जाये तो कुछ काम चल सकता है। आखिर तरकीब निकल ही आयी।

गोदावरी के तट पर नेवासा ग्राम था, सुहावना तथा मन मोहक। मालो और विठो वहाँ गये।

वहाँ उन्होंने दो सुअरों के बच्चे को मारकर उनके गले में चिट्ठी बाँधी और उसे दौलताबाद के पास एक मस्जिद में फेंक दिया। पत्र में निजाम सरकार से प्रार्थना की गयी थी कि भरी सभा में यादवराव ने अपने पुत्री की शादी हमारे पुत्र से करने का वचन दिया था। अब वे उसे टाल रहे हैं। हम दोनों भाइयों को अपने यहाँ से भी निकाल दिया है। आपका ध्यान आकृष्ट करने के ही लिये

हम लोगों ने ऐसा किया है। आशा है कि आप अवश्य इसका प्रबन्ध करेंगे। यदि आपने कुछ ध्यान नहीं दिया तो विवश होकर मुझे आपकी और मस्जिदों में ऐसा ही करना पड़ेगा।

पत्र अपना काम कर गया। मस्जिद के भ्रष्ट करने का समाचार पाते ही निजामशाह लाल हो गये। मस्जिद का अपमान भला एक मुसलमान कैसे सह सकता था। उन्होंने तत्क्षण यादवराव को एक पत्र लिखकर बुलाया और कहा—"तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। आदमी की जबान एक। जब तुमने भरी सभा में अपनी लड़की की सगाई मालोजी के लड़के के साथ करने का वचन दिया तो उसे निभाना चाहिए। तुम एक योग्य मराठा हो। वचन भंग करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम्हारे इस करतूत के ही कारण आज हमारी मस्जिद भ्रष्ट हुई। अच्छा जाओ, शीघ्र अपनी पुत्री की शादी की तैयारी करो।" निजामशाह की वाणी में वाक्पटुता और राजनीतिक कुशलता कूट कूटकर भरी थी।

"लेकिन, जहाँपनाह! मैंने प्रतिज्ञा कब की थी। वह तो हँसी-मजाक का दिन था। मौज-मस्ती में बातें कह डाली गयी थी।"

"जानते हो यादवराव, मुँह से निकली हुई श्वाँस और कही गयी बात वापस नहीं होती—और फिर तुम्हारे ऐसे योग्य पुरुष के लिए तो हरएक बात का महत्व है।"

"लेकिन, मालोजी हमारे हैसियत के भी तो नहीं हैं। सम्बन्ध समान घराने से होता है।"

"हैसियत बनायी जाती है। उसे लेकर आदमी पैदा नहीं होता। आदमी की हैसियत तो उसका पराक्रम और उसकी जबान है।"

यादवराव चुप हो गये। बड़े असमंजस में पड़े। यदि निजाम की बात नहीं मानी गयी तो अनर्थ होगा। यदि मान लेता हूं, तो यह सिर कभी मालो के सामने नहीं उठेगा। उनके मस्तिष्क में संघर्ष था और मन में अस्थिरता।

उनके जातीय गौरव ने जैसे उनसे कहा—यादवराव, सिर चला जाये पर सिर की शान जाने नहीं पाये। यदि सिर झुक गया तो सिंहासन का महत्व क्या है?

उन्होंने निजामशाह से ससम्मान कहा, "जहाँपनाह, यों तो आपकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु व्यक्तिगत मामले में मुझपर आप किसी प्रकार का दबाव न दें, तो बड़ी कृपा हो।"

"यह दबाव नहीं। आपको अपने फर्ज की याद दिला रहा था।"

"पर...मैं...अपने फर्ज को आपसे अधिक समझता हूँ।"

"अच्छी बात है, तो जैसी आपकी इच्छा हो कीजिए।" निजामशाह ने उग्रता दिखायी।

बातचीत समाप्त हुई। यादवराव चले गए। निजामशाह को धक्का लगा। उन्होंने सोचा कि हमारा जागीरदार ही हमारी आज्ञा न माने। इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है। उन्होंने प्रत्यक्ष बदला लेना उचित नहीं समझा। इस समय उनकी परिस्थिति अच्छी नहीं थी। बड़ी योग्यता से उन्होंने काम लिया। उन्होंने मालोजी और विठोजी को ससम्मान बुलाया और उन्हें बारह-बारह हजार के घुड़सवारों की मनसबदारी प्रदान की। इसके साथ ही शिवनेरी तथा चाकण का किला और पूना तथा सूपा की जागीरें भी उन्हें दी और वे राजा कहलाए। यह घटना मार्च सन् १६०४ ई० की है।

अजीब बात है। मस्जिद भ्रष्ट की थी मालोजी ने, किन्तु निजामशाह यादवराव पर नाराज हुए। कसूर किसका और क्रोध किस पर उतरा। पर बात कुछ विचित्र थी।

निजामशाह की स्थिति इधर दिनों दिन बिगड़ती जाती थी—दिल्ली के मुगलशासक अकबर ने उसे परेशान कर दिया था। किसी से विरोध लेने की स्थिति में वह नहीं था। उसने सोचा, यदि मालोजी की बात नहीं मानी गयी तो हो सकता है वह हमारे राज्य में उपद्रव शुरू कर दे। यादवराव को इतनी हिम्मत नहीं वह मेरा खुला विरोध कर सके। मराठों को मिलाना अनिवार्य था। इसीसे उसने ऐसा किया था।

अब मालोजी के दिन फिरे। परिश्रम साहस और योग्यता से उन्होंने निजामशाह की अच्छी सेवा की। वह उसकी कार्य क्षमता का लोहा मान गया।

एक दिन उसने मालोजी को बुलाकर कहा—राजा मालो, मैं तुमसे निहायत खुश हूँ। रियाया में तुम्हारे कामों की बड़ी तारीफ है।

"यह सब आपकी ही कृपा है, जहाँपनाह। छोटे हैसियत के आदमी से रियाया खुश रहती ही है। मालोजी को सदा अपमान की याद रहती थी। हैसियत के सम्बन्ध में सोचते थे।

हैसियत की बात सुनते ही निजामशाह ने मालोजी के कहने का तात्पर्य समझ लिया। उन्होने दूसरे ही दिन मालोजी तथा यादवराव के परिवारों तथा रिस्तेदारों को दौलताबाद लाने का हुक्म दिया। हुक्म का तात्पर्य तो लोगों ने समझ ही लिया था। सुलतान की आज्ञा मानना अब यादवराव को आवश्यक हो गया। उनके नये सम्बन्धी की हैसियत उनके बराबर हो चुकी थी। सगे-सम्बन्धी और परिवार दौलताबाद पहुँचा।

१६०४ ई० के अप्रैल मास का एक मनोहर प्रभात था। दौलताबाद नगरी प्रातःकाल से ही सजायी जा रही थी। बड़ी धूम-धाम थी। भोसला परिवार मस्त था। उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो रही थी। यादवराव की आकृति पर जरा भी प्रसन्नता दिखायी नहीं दे रही थी फिर भी उनके नौकर-चाकरों में असीम उल्लास था। धूम-धाम गाजे-बाजे से सारा वातावरण मुखरित था।

सन्ध्या हुई। सूर्य डूबा। मूहूर्त्त आया। जीजाबाई और शाहजी की शादी हो गई। मालोजी की प्रतिज्ञा पूरी हुई। यादवराव को ऐसा लगा कि उनकी लड़की जीजाबाई की विदाई के साथ साथ उनके कुल का सम्मान भी धीरे-धीरे कहीं चला जा रहा है। उनके मनमें पड़ी गाँठ और भी जटिल होती जा रही थी। उनकी स्त्री गिरजाबाई भी अधिक नाराज थी। उनका क्रोध किस पर था? अपने पतिदेव पर या मालोजी पर। यह बताने की नहीं, अनुभव करने की बात है।

००००००

धनवृद्धि के साथ ही साथ मालोजी ने अनेक पुण्य कार्य किये—दान दिया तथा मन्दिर बनवाये। वह ब्राह्मणों का सत्कार करते थे। सतारा जिले के उत्तरी भाग में महादेव पहाड़ के ऊपर चैत्र के महीने में शिवजी के दर्शन के लिए आए हुए यात्रियों को बहुधा भयंकर जल-कष्ट का सामना करना पड़ता था। उन्होंने पत्थरों को काटकर इस पहाड़ी इलाके में एक बड़ा तालाब बनवाया। कहते हैं कि महादेवजी ने प्रसन्न होकर स्वप्न में वर दिया कि हम तुम्हारे वंश में अवतार लेंगे। देवता और ब्राह्मणों की रक्षा करेंगे। दक्षिण देश में तुम्हारे वंश की तूती बोलेगी।

संघर्ष, विद्रोह, मान-अपमान का अनुभव करते-करते मालोजी के भी जीवन की सन्ध्या आ गई। एक दिन जीवन का झिलमिलाता दीपक अपनी अन्तिम ज्योति बिखेरकर बुझ गया। मालोजी परिवार को रोता छोड़कर धरती से दूर चले गये। विठोजी, अब भोंसले वंश के सर्वे-सर्वा हो गए। इतिहासकार कुछ निश्चित रूप से कहने में तो मूक हैं, पर अनुमान है कि १६२६ ई० में उनका भी देहान्त हो गया। शाहजी भोसले वंश के पुस्तैनी गद्दी के हकदार हुए। भोसले वंश की शक्ति भी अब बहुत बढ़ गई थी। उसकी सेना में दो-ढाई हजार सैनिक हो गए थे।

अपने पिता की भाँति शाहजी भी एक योग्य योद्धा अनुकरणीय शासक तथा आदर्श पुरुष थे। धार्मिक भावना भी उनमें अपने पिता के ही समान थी। इस समय दक्षिण की अवस्था बड़ी विचित्र थी। इस अवसर का शाहजी ने उचित लाभ भी उठाया। निजाम शाही राज का मन्त्री मलिक अम्बर अस्सी वर्ष की उम्र में सन् १६२६ ई० में मर गया। उसका पुत्र फतह खाँ उसका स्थान सुशोभित करने लगा। एक वर्ष के ही अन्दर और भी बड़े महत्व के परिवर्तन हुए। दिल्ली का बादशाह जहाँगीर जहाँ से चला गया। बीजापुर के सुलतान इब्राहीम आदिलशाह ने भी परलोक की राह ली। दक्षिण भारत में गोलमाल आरम्भ हो गया।

सन् १६२८ ई० में फतह खाँ की आज्ञा से शाहजी ने मुगल राज्य के पूर्वी खान प्रदेश को लूटना आरम्भ किया, परन्तु उस समय उनके पास सेना कम

थी। उन्हें मुगल सेनापतियों के भयंकर अवरोध का सामना करना पड़ा। वे शक्ति की कमी के कारण विवश होकर पीछे लौटे। इतिहास में वर्णित शाहजी के जीवन की यह पहली महत्वपूर्ण घटना है।

यह तो हुई निजामशाही राज्य की बात। अब जरा अहमदनगर राज्य पर दृष्टि डालिये। अहमदनगर के वैभव का इन दिनों ( सन् १६३० ई० ) दम टूट रहा था। शासन-सूत्र भग्न होता दिखाई दे रहा था। दरबार में रोज ही झगड़े होते जा रहे थे। आपस में खून-खराबियाँ और गोलबन्दी तो बड़ी साधारण बात थी। राज्य में अँधेर था, राजा चौपट था। शाहजी ने इस अवसर का लाभ उठाया। उन्होंने अपने लिए राज्य जीतना शुरू किया। वे बात के धनी होने के साथ-साथ तलवार के भी धनी थे। राजनीतिक चालों से वे परिचित थे। इस मौके पर कभी वे मुगलों का साथ देते, कभी बीजापुर का और कभी वे निजामशाह की नौकरी करने लगते थे। जैसा मौका देखते थे वैसा करते थे। 'जैसी बहे बयार पीठ तहँ तैसी दीजै' अब उनका मूल-मंत्र बना।

सन् १६३३ में एक विचित्र घटना हुई। मुगलों ने निजामशाही राजधानी, अहमदनगर को जीत लिया और निजाम को बन्दी बना लिया। इस समय शाहजी ने अपनी योग्यता का बड़ा ही अच्छा परिचय दिया। उन्होंने निजाम शाह वंश के एक छोटे बालक को निजामशाह घोषित किया और पुस्तैनी राज-मुकुट पहनाया। अब क्या था। सारा राज-काज उनके हाथ में आ गया। पूना और दौलताबाद के आस-पास उन्होंने शासन किया। हवा किधर बहेगी, कहा नहीं जा सकता था। इन दिनों प्रतिदिन राजनीतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हो रही थी। नित्य नये बादल आकाश में दिखायी देते थे।

किन्तु यह सुख शाहजी के जीवन में अधिक नहीं रहा। एक गहरा तूफान आया। राजनीति के आकाश के बादल घने होने लगे। सन् १६३६ ई० में मुगलों ने पुनः आक्रमण किया। उनकी महान शक्ति के सामने शाहजी को झुकना पड़ा। मुगलों की जीत हुई। शाहजी पुनः बीजापुर में नौकरी करने लगे।

जिस आदर्श पुरुष शिवाजी का जिक्र मैं आपसे करना चाहता हूँ, वे इन्हीं शाहजी के द्वितीय पुत्र थे।

२

## होनहार बिरवान के होत चीकने पात

यह शिवनेर का किला है। पहाड़ी वक्षस्थल पर बना हुआ यह दुर्ग भी अपने ढंग का विचित्र है। कभी यह शत्रुओं से त्राण पाने के लिए बनाया गया होगा। जीजाबाई स्वयं इसमें बंदी है। दुर्ग के चारों ओर कठिन पहरा है। एक बच्चा भी अन्दर नहीं आ सकता। जिस पिता ने कभी स्नेह से उसे पाला था। ममता भरी लोरियों के स्वर पर झूलती नींद कभी उसकी आँखों तक आती थी। लाड़-प्यार की वह लाड़ली एक दिन के लिए भी अपने पिता से अलग नहीं होती थी। जब आकाश में चाँद निकलता, तब वह बच्ची को गोदी में लेकर कहते "जीजा, सचमुच तू आकाश के चन्द्रमा से भी सुन्दर है।" जब बरसात आती, बादल घिरते तब जीजा के लिए झूला पड़ जाता था और वह मस्ती से झूलती थी। जाड़े की थरथराती रात में कभी-कभी वह अपने पिता की छाती से चिपक जाती और कहती "वह कहानी सुनाओ न बाबूजी", "...कौन?" "वहीं परियों वाली" और वह कहानी सुनाते। जीजाबाई सो जाती।

जिस पिता के स्नेह की छाया इतनी घनी थी, आज उसी ने अपनी पुत्री को बन्दी बनाया था। विचित्र है विधाता का विधान। यादवराव की लाड़ली शिवनेर दुर्ग के पत्थरों के बीच अपने दिन बिता रही थी। यहाँ उसका कोई भी नहीं है। पतिदेव पता नहीं कहाँ होंगे। पुत्र सम्भाजी भी कदाचित् पिता के साथ हो। किन्तु यह भी एक सम्भावना है। अब उसका कोई सहारा नहीं है।

केवल एक आशा है, जो उसके गर्भ में मुस्करा रही है। आठ महीने की वह गर्भवती है।

संसार में जब कहीं किसी का कोई नही रहता, तब ईश्वर ही उसका एक सहारा होता है। इसी किले में एक शिवानी देवी का मन्दिर है। अम्बिका की प्रतिमा बड़ी ही भव्य है। जीजाबाई नित्य यहाँ आती है। भवानी की घण्टों अर्चना करती है। अपने हृदय से निकली हुई पुकार पत्थर के कानों तक पहुँचचाती है, आशीर्वाद माँगती है, "माँ, तेरी ही शरण में आयी हूँ, तू ही एक सहारा है। पतिदेव को मुक्त करा दे। तुझमें बड़ी शक्ति है, माँ! आशीर्वाद दो। मै वीर पुत्र पैदा करनेवाली माता हो सकूँ। मेरा पुत्र देश, धर्म और जाति की रक्षा करे। तेरे ही नाम पर मैं उसका नाम भी रख दूँगी माँ।"

नित्य ही प्रातःकाल वे शंख ध्वनि होने के पूर्व ही चली आती और घण्टो माँ को साश्रु नेत्रो से देखा करती। वहाँ के पुजारियों को भी उनकी इस भक्ति से आश्चर्य होता। सन्ध्या भी वह घण्टो मन्दिर में ही बिताती और जबतक मन्दिर बन्द नहीं हो जाता, तब तक न हटती। माता से आशीर्वाद माँगते माँगते कभी कभी उनकी आँखों से दो बूँद आँसू भी ढुलक जाते।

०००००

दिन बीतने लगे। रातें खिसकने लगी।

प्रत्येक नया सबेरा अब जीजाबाई के सामने एक कहानी बनकर आता था। सन्ध्या सपने सी समाप्त हो जाती थी। विगत जीवन की घटनाएँ कभी कभी उन्हें याद हो आती। सपने एक के बाद एक आँखो में उतरने लगते।

वह होली की सन्ध्या, शाहजी के मुख पर अबीर लगाना, पिता की प्रतिज्ञा, श्वसुर का हठ और फिर विरोध की लम्बी खाईं। वह सोचती "यह सब जीवन का एक अंग था, या तमाशा।...यदि उस दिन निकल जाती तो क्या ही अच्छा होता, पर मैं थक चुकी थी, मेरे माँथे पर पसीना आ गया था। हाथ काँप रहा था। घोड़े की रास छूटी जा रही थी। उन्होंने कितने प्रेम और ममत्व भरे स्वर

में कहा था—प्रिये, तुम यहीं रुक जाओ। अपनी रक्षा करो। गर्भ में मुस्कराती ज्योति का बलिदान मत करो। अब तुम चल नहीं सकती। यहीं रुक जाओ। आखिर यादवराव तो तुम्हारे पिता ही हैं, उनसे तुम्हारा क्या विरोध? शत्रु तो मैं हूं। अहमदनगर का सेवक तो मै हूँ। उन्होंने मुगलों का पक्ष लिया है। आज मै हार गया हूँ। भाग रहा हूँ। वे मेरा पीछा कर रहे है। अहमदनगर के सेवक को पकड़ने के लिए, अपनी पुत्री को दण्ड देने के लिए नहीं। मेरा कहना मानों, तुम यहीं रुक जाओ।"

मैंने उस समय भी उनसे कहा था, "प्रियतम, पति का शत्रु पत्नी का भी शत्रु होता है। आप संकट में रहें और मैं आपके शत्रु की स्नेह-छाया में रहूँ? क्या मेरा यही धर्म है?"

"यह धर्म नहीं, योग्यता है महादेवी" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा था। "और इस योग्यता को स्वीकार न करना सबसे बड़ी योग्यता है।" मैंने उस समय कह तो दिया था, किन्तु उनकी आज्ञानुसार मुझे जीवित रहने के लिए धर्म और योग्यता दोनो का सहारा लेना पड़ा।

जीजाबाई के जीवन की यह ऐतिहासिक घटना सन् १६२६ की है। इसी किले मे दो महीने बाद शिवाजी का जन्म हुआ। इस दिन बृहस्पतिवार था। भवानी का आशीर्वाद जीजाबाई को मिला। भगवती शिवानी के ही नाम पर उन्होंने अपने पुत्र का नाम शिवाजी रखा।

oooooo

जिस समय शिवाजी का जन्म हुआ, शाहजी बीजापुर में थे। उन्हें समाचार मिला। प्रसन्नता में वे फूले नहीं समाये। गरीबों और ब्राह्मणों को बहुत कुछ दान दिया। यों तो जीजाबाई बंदी ही थीं, किन्तु इन्होंने भी खूब खुशियाँ मनायीं। इन्होंने सोचा—"शिवानी के आशीर्वाद से सचमुच यह वीर पुत्र उत्पन्न हुआ है। इतिहास के पन्ने एक के बाद एक उनके आँखों के सामने उड़ते दिखायी दिये। अकबर का एक चित्र उनके सामने आया, था तो मुगल, पर बड़ा योग्य शासक था। इसका भी जन्म ऐसे ही संकटापन्न स्थिति में हुआ था। इसकी भी

माता अपने पतिदेव के साथ जंगलों, पहाड़ों, गहरी घाटियों, निर्जन स्थानों, पता नहीं कहाँ कहाँ गर्भावस्था में घूमी थी। संकट के बादल मँडरा रहे थे। शत्रुओं ने चारों ओर से घेर रखा था, पर वह महान् हुआ। मेरा पुत्र भी उससे महान् होगा। कहते कहते कभी कभी वह नवजात शिवाजी को चूम लेती थी। अपने पुत्र के भविष्य की मंगलमय कल्पना किया करती थी। एक वीर माता की तरह वह उसका लालन-पालन करने लगी।

दिन जाते देर नहीं लगती। दो वर्ष बीत गए। बालक शिवाजी खड़े होकर चलने लगे। स्वस्थ सुडौल चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, मस्त बालक की ढुलकती चाल बंदी गृह मे पड़ी माता के लिए कितनी आकर्षक होगी, कहने की बात नही। उसी को देखकर जीजाबाई के दिन कट रहे थे।

एक घटना घटी। मल्लिक अम्बर के मरने के बाद फतह खाँ निजामशाही का वजीर हुआ। मुरताज खाँ शाह ने किसी बात पर चिढ़कर फतह खाँ को कैद कर लिया और तबरक खाँ को मंत्री बनाया। इस उलटफेर का लाभ यादवरावजी उठाना चाहते थे। उन्होंने अपने भाग्य का पासा फिर फेंका और मुरताज खाँ को अचानक उलट देने की चाल चली, पर वह समझ गया। उसने ससम्मान यादवराव को दौलताबाद में मिलने के लिये बुलाया और धोखे से उन्हे और उनके पुत्र अचलजी को मार डाला। शिवाजी के नाना का अन्त हो गया। विप्लव, संघर्ष और विरोध का जीवन बिताकर उसने जीवन की यात्रा समाप्त की।

यादवराव भी बड़े शान का आदमी था। आत्म सम्मान की बलिवेदी पर पुत्री का ही बलिदान करने में उसे जरा भी हिचक नहीं थी। जो एकबार निश्चित कर लिया, जीवन भर उसे निबाहा। जिसका विरोध किया, जीवन भर विरोध किया। जिसे चाहा, उसे चाहा।

आप सोचते होंगे कि यादवराव के मरने के बाद जीजाबाई मुक्त हो गई होगी, पर आपके विचारों को एक ठेस लगेगी, जब मै यह कहूँगा कि उनके ऊपर एक नई विपत्ति आई। मुरताज खाँ दूसरे ने मलदर खाँ नामक एक व्यक्ति को त्र्यम्बक का सूबेदार बनाया था। वह शाहजहाँ बादशाह का आदमी था। उसीने जीजाबाई को कैद कर लिया। उसका विचार था कि बालक शिवाजी को पकड़-

कर मुगल दरबार में ले जाया जाय। जिससे शाहजी को झुकना पड़े। अब तक तो जीजाबाई अपने पिता के बंदी गृह में थी, पर अब उन्हे मुगलों ने बंदी कर लिया था। मृत्यु की काली छाया उन पर पता नहीं कब आ सकती थी। उनका पुत्र शिवा उनसे किसी क्षण छीना जा सकता था, इसका पता उन्हें लग गया। वह चिन्ता मे रहने लगी।

एक दिन सन्ध्या को शिवानी देवी के मन्दिर पर वह बहुत पहले ही पहुँची। बाद में पुजारी आया। आज उनकी मुद्रा मलिन थी, चेहरा उतरा था। माता के सामने बैठकर उन्होने मूक आराधना आरम्भ की। नेत्रों से अश्रु की अविरल धारा बह रही थी। कई घण्टे बीते। शिवा गोद में पडा-पड़ा सो गया। मन्दिर बन्द होने का समय आया, पर जीजीबाई अपने स्थान से न हटी।

पुजारी ने धीरे से कहा—माँ, चलने का समय हो गया।

उनकी तन्द्रा टूटी। आँसू पोछा। "चलती हूँ।" बड़ी धीरे कहा। धीरे-धीरे उठी और मन्दिर के बाहर आयी। दरवाजा बन्द हुआ, फिर भी वह खड़ी सोचती रही। पुजारी को आश्चर्य हुआ, वह बोला—क्या बात है माँ?

"सोचती हूँ, माता के इस प्रसाद की रक्षा क्या मै कर सकूँगी?" कहते हुए उन्होने शिवाजी की ओर देखा।

पुजारी समझ गया। सूबेदार की नीयत का आभास उसे पहले ही मिल चुका था। पुजारी मुस्कराते हुए बोला—माता अपने प्रसाद की रक्षा स्वयं करेगी। उसमें घबराने की क्या बात है? जीजाबाई को लगा जैसे कोई देवदूत बोल रहा है।

कहते है इसी पुजारी की सहायता से शिवाजी की रक्षा हुई।

महल का कोना-कोना छान डाला गया शिवाजी का कही पता नही चला। लोग परेशान हो गये। मुगलो की दाल न गली। जीजाबाई की योग्यता का लोहा माना गया। इसी बीच शाहजी ने मुगलो से सन्धि कर ली। तब जीजाबाई मुक्त हो गयीं। शिवाजी खुले वातावरण में मौज से रहने लगे। पत्नी के छूटने के बाद भी पति ने उस पर ध्यान नही दिया।

सीता बनवास से मुक्त हुई पर उन्हें राम की कृपा न मिली। कितनी

आशाएँ, कितने सपने, कितनी कल्पनाएँ मन की मन ही में रह गई होगी। कुछ भी हो उसका शिवा तो उनके पास ही था।

अब शाहजी ने बीजापुर में पुनः नौकरी कर ली, फिर भी महाराष्ट्र में वे बहुत कम रहते थे। उनका मस्तिष्क दूसरी ही ओर था। उन्होने अपना नया परिवार भी तो बसाया। यह बात तो छूट ही गई थी। अच्छा, तो अब सुन लीजिए। जीजाबाई जब बंदीगृह में थी तभी शाहजी ने एक दूसरी शादी कर ली थी। उनकी इस नयी स्त्री का नाम था तुकाबाई मोहिते। भगवान् ने उन्हे विलक्षण सुन्दरी बनाया था। रूप आकर्षक था। नयी के आगे पुरानी को कौन पूछता है। कदाचित् शाहजी के मस्तिष्क में ऐसा ही कुछ आया हो। तभी तो जीजाबाई से उनका वैसा सम्बन्ध इधर नही रहा जैसा पहले था। उनके दूसरी शादी करने के इतिहासकारो ने अनेक कारण बताये है। यदुनाथ सरकार ने कहा है "जीजाबाई की अवस्था शाहजी के दूसरी शादी के समय एकतालिस वर्ष की हो गयी थी। अब उनमें कोई आकर्षण नहीं रहा। सौदर्य की ओर आकृष्ट होकर ही उन्होने दूसरी शादी की थी, पर मेरा ऐसा विचार नही। उस समय बहु विवाह की प्रथा जोर पर थी और इसी से प्रभावित होकर शाहजी ने दूसरी शादी की थी।

००००००

गर्मी समाप्त हो गयी है। आषाढ़ के बादल आकाश में दिखायी दे रहे हैं। किंतु पानी कहाँ? महाराष्ट्र में अभी वर्षा नहीं है, शाहजी के बाग में कुछ विशेष प्रकार के स्वादिष्ट आम के पेड़ लगाये गये हैं। इस साल कुछ पेड़ अच्छे फले भी हैं। कितु ये फल देखने के लिये हैं, छूने के लिये नही। किंतु, देखिये एक पुरुष चला जा रहा है। वेषभूषा और चाल-ढाल से कोई भद्र मालूम पड़ता है। बगल में लटकती लम्बी तलवार उसके पौरुष का प्रतीक है। वह रुका, उसके हाथ अचानक ऊपर उठे और क्षण में ही एक अपराध कर डाला गया। टूटा हुआ एक आम उसके हाथ में था। वह कुछ आगे बढ़ा। अचानक उसकी

आत्मा चीख उठी, "मैंने यह क्या कर डाला। तत्क्षण तलवार हाथ में चमकी और वह अपना दूसरा हाथ काटने के लिये झुका।

"यह क्या कर रहे हैं दादाजी ?" पीछे से आकर एक व्यक्ति ने उनका हाथ पकड़ लिया।

"अपराधी को दण्ड दे रहा हूँ युवक।" उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा।

युवक कुछ भी न समझ सका। मौन खड़ा रहा। उसकी आँखो से जिज्ञासा टपक रही थी। बूढ़े ने आम दिखलाते हुये कहा—मैंने इसी हाथ से इसे तोडा है अब मैं इस हाथ को ही समाप्त कर देना चाहता हूँ।"

"लेकिन यह बाग तो आप ही का लगाया हुआ है।"

मेरा लगाया तो अवश्य है, किंतु यह मेरी सम्पत्ति नहीं। शासन की व्यवस्था करना मेरा काम है, पर शासग तो कोई और करता है ? अपने अपराध के लिये जब मै स्वयं को दण्ड नहीं दे सकता, तो मुझे दूसरे को दंडित करने का क्या अधिकार है। हट जाओ मेरे तरुण साथी ,मुझे अपना काम पूरा कर लेनें दो। उसकी तलवार एक बार पुनः उसके दूसरे हाथ की ओर लपकी। युवक गिड़गिडाता चरणो पर गिर पड़ा तब तक और व्यक्ति इकट्ठे हो गये। सब ने सामुहिक प्रार्थना की। तब कहीं मामला शान्त हो गया।

इस बूढ़े का नाम है कोणदेव। किन्तु लोग इन्हें दादाजी कोणदेव कहते है। यह शिवाजी के पहले गुरु थे। इन्होंने उन्हें आचार, व्यवहार, युद्धशास्त्र और शासन की शिक्षा दी थी। वे शाहजी की ओर से पूना की जागीर का प्रबन्ध करते थे। जाति के ब्राह्मण थे। ईमानदारी और शासन की योग्यता उनमे कूट-कूटकर भरी थी। शाहजी इनपर बड़ा विश्वास करते थे। जब उन्होंने मुगलो से सन्धि की और जीजाबाई मुक्त हुईं, तब उन्होने इन्हे एक और जिम्मेदारी सौंपते हुए कहा कि मेरी पहली स्त्री और पुत्र शिवा शिवनेर के किले में है, उन्हे पूना लाकर देखभाल कीजिये। आज्ञा पालक नौकर के लिये इतना ही काफी था।

दादजी कोणदेव जीजाबाई और शिवाजी को पूना ले आये। पूना आजकल बम्बई प्रान्त का एक बड़ा ही सुन्दर नगर है। कभी यह नगर मराठो के शिक्षा, सभ्यता और उच्च अभिलाषाओ का केन्द्र रहा है, किन्तु जब इसके शासन का

भार दादाजी कोणदेव के हाथ में सौंपा गया तब यहाँ की अवस्था अच्छी न थी। उपज बहुत कम होती थी। धरती भूखी थी। जो भी उपज होती थी उसे भेड़िये खा जाया करते थे। दादाजी ने सह्याद्रि पर्वत पर रहने वाले पहाड़ियो को इनाम दे देकर उन्हे प्रसन्न रखा और उनसे जागीर में बढ़े हुये भेड़ियो की संख्या कम करायी। लोगों को प्रसन्न रखकर थोड़ी मालगुजारी पर जमीने दी। जिससे तराई में भी खेती होने लगी। इसी प्रकार आबादी भी बढ़ी और कृषि में भी शीघ्र उन्नति हुई। सभी दादा से प्रसन्न रहते थे।

जीजाबाई और शिवाजी का दादाजी बड़ा ख्याल रखते थे। बालक शिवाजी के स्वभाव से वे शीघ्र परिचित हो गये। दादाजी ने देखा की माता ने कारागार मे जीवन बिताया है, किन्तु पुत्र के हृदय में उत्कृष्ट वीरोचित भाव भर दिये है। जीजाबाई के लिए तो शिवाजी ही सब कुछ थे। तपकर ही सोना निकलता है। भारत के एक प्रसिद्ध शासक शेरशाह सूर का नाम आप जानते होगे। उसका भी जीवन प्रभात ऐसे ही सघर्ष में बीता था। वह भी एक छोटे से जागीरदार का पुत्र था। उसके पिता ने भी शिवाजी के पिता की तरह नया विवाह करके अपने पहली पत्नी और पुत्र की अवहेलना की थी। दोनो के जीवन का प्रथम अध्याय जंगलों और पहाड़ो मे समाप्त हुआ था। शासन की अद्वितीय क्षमता, चरित्र की दृढ़ता, नवीन राष्ट्र निर्माण की अनुकरणीय योग्यता के विशेष गुणो को दोनो ने घूम-घूमकर सीखा था। लोगों से सम्पर्क स्थापित किया था।

शिवाजी को भी घूमने का बड़ा शौक था। वे जब अवसर पाते चट अपना घोडा लेते कन्दराओं और गुफाओ की ओर चले जाते। कभी-कभी तो ऐसा होता कि सुबह के गये रात बीते लौटते थे। जब रात अधिक हो जाती, आकाश में तारे निकल आते, सारा बन प्रदेश साँय-साँय करने लगता तब जीजाबाई घबरा जाती थी। वह कुछ कहती तो नही, पर उनकी भौंहों का विचित्र घुमाव देखकर ऐसा मालूम होता, मानो अपने पुत्र के सम्बन्ध में उन्होने कोई अशुभ कल्पना कर डाली हैं और भगवती शिवानी से मंगल की कामना कर रही हैं।

कभी-कभी वह शिवाजी को खोजने के लिये इधर-उधर आदमी भी भेजतीं।

जब शिवाजी लौट आते तो सीने से लगाकर बालक को कुछ क्षण तक अपलक निहारती और कहती, "शिवा, तू जरा जल्दी आ जाया कर बेटा, रात हो जाने पर मार्ग भूलने का भय रहता है।" शिवाजी हँसते हुये कहते, "मार्ग तूने एक ही दिखाया है, माँ। उसे मै जीवन भर कभी नही भूलूँगा।" बालक का ऐसा विचित्र उत्तर सुनकर जीजाबाई प्रसन्न हो जाती। उसे छाती से लगा लेती। शिवाजी पुनः कहते—तुम्ही ने तो कहा था माँ, कि जैसे मै तुम्हारी माता हूँ, वैसे पूरे महाराष्ट्र की भूमि भी तुम्हारी माता है। इस समय मै तुम्हारे पास हूँ। इसके पहले अपनी उस माता के पास था। फिर मार्ग भूलने की क्या बात ?"

जीजाबाई बालक के तर्क पर हँस पड़ती और उनके नेत्रों से प्रसन्नता के दो बूँद आँसू टपक पड़ते, जैसे आकाश से कोई तारा पृथ्वी पर टपक पड़े। रात ऊँचे ऊँचे सपनों में बीत जाती।

इस प्रकार के प्रयाण से दादा कोणदेव को भी भय लगता था। वे भी शिवाजी को अकेले घूमने के लिये मना करते थे। दादाजी की आज्ञा के सन्मुख कुछ कहने की उनकी हिम्मत नही थी। अकेले घूमने में कुछ कमी आयी। किन्तु वे रुकने वाले कब थे। मौका पाते ही निकल जाते थे। प्रकृति के रम्य स्थलों को वह देखते। प्रसन्न होते। उनके लिये उन सुनसान पर्वतों में विशेष आकर्षण था। वहाँ के झरने, उपत्यकाएँ, सोते, कन्दराएँ सदा शिवा को पुकारा करती थीं।

उन्हें ऐसा लग रहा था मानो पर्वत प्रदेश, वन प्रांतर, ग्राम उनसे पुकार-पुकार कर कह रहे है—शिवा मुझे देखो, मेरी स्थिति पर विचार करो। मै भी तुम्हारी माता हूँ, तुमने यहाँ का अन्न खाया है, जल पीया है, तुम्हारी श्वाँस में यहाँ का प्रकंपन है। तुम्हारे पूर्वजों की आत्मायें यहीं कही भटकती फिरती है। इतना होते हुए भी मैं यवनों से पदाक्रात हूँ, आततायियो का मुझ पर राज्य है। क्या मैं ऐसी ही रहूँगी, जरा सोचो तो।" घूमते हुए ऐसे ही विचार शिवाजी के मस्तिष्क में मँडराया करते थे। बहुधा वे सोचते-सोचते रो पड़ते थे। गीली मिट्टी पर बनी हुई यह लकीर धीरे-धीरे पक्की होती रही और अन्त में अमिट रह गयी।

दादाजी ने भी बंधन ढीला किया। शिवाजी मुक्त होकर घूमा करते थे। पहाड़ी की कोई भी ऐसी गुफा और कन्दरा न रह गयी जिसे शिवाजी ने अच्छी तरह न देख लिया हो। जब कभी दादाजी पूछते "शिवा, तुम्हे बड़ा आनन्द आता है घूमने में ? तब शिवाजी विनम्र हो कहते, "नही दादाजो मुझे यह देखने में आनन्द आता है कि मैं दूसरो को कितना आनन्द दे सकता हूँ।" दादाजी शिवा की इस वाक्य पटुता से बहुत प्रसन्न होते और बातचीत के सिलसिले में जीजाबाई से कहते, "जीजा, तुम्हारी साधना व्यर्थ नही जायेगी, शिवा तुम्हारे स्वप्नो को जरूर पूरा करेगा। जीजाबाई आकाश की ओर देखती और दोनो हाथ ऊपर उठाकर कहती, "दादाजी यह सब भवानी शिवानी का ही आशीर्वाद है।"

शिवाजी की दिनो दिन भ्रमण में रुचि बढ़ती गयी। इसे रोकने का कोई उपाय दिखायी नही दिया। दादाजी को इसकी अधिक चिन्ता थी कि यदि शाहजी सुनेंगे कि लड़के पर कोणदेव नियंत्रण कर नही पा रहे है, तो क्या कहेगे ? लाचार उन्होंने एक दिन शिवाजी को अपने पास बुलाया और कहा— "शिवा, अब मैंने यह निश्चय किया है कि जागीर में तुमको अपने ही साथ लिवा चलूँगा।"

"क्यों दादा ?" शिवाजी बड़े असमंजस में पड़े। क्या अब उनकी स्वतंत्रता छिन जायेगी। वे चुप थे। दादाजी बोले—"इससे मुझे अपने काम में कुछ मदद मिल जायेगी। तुम जागीर की व्यवस्था के संबन्ध में भी विशेष बातें जान जाओगे और घूमने की तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो जायेगी। क्यो ठीक है न ?" शिवाजी ने मुस्कराते हुए स्वीकार किया।

अब दादाजी जहाँ जाते वहाँ शिवाजी को लिवा जाते। जागीर की व्यवस्था में भी अब उनका हाथ रहता। इसका परिणाम यह हुआ कि शिवाजीलोगो के संपर्क में आये। उन्होंने इन्हें पास से देखा। जनता ने भी अपने भावी शासक को निकट से देखा।

दादाजी न्याय करते समय भी शिवाजी को रखते थे। इस प्रकार न्याय, धर्म नीति आदि की उन्हे व्यावहारिक शिक्षा मिलती रही। दादा ने ही उन्हें शस्त्र चलाने तथा घोड़सवारी भी की शिक्षा दी थी। जहाँ तक बौद्धिक शिक्षा का

सम्बन्ध है—यदुनाथ सरकार के शब्दों में शिवाजी अकबर, रणजीतसिंह, हैदरअली आदि योद्धा और विचारकों की तरह निरक्षर थे। पर कुछ मराठे इतिहासकारो का कहना है कि यद्यपि शिवाजी को ऊँची शिक्षा नहीं मिली थी, किन्तु वे लिखना पढ़ना जानते थे। कौन सा मत ठीक है? कहा नहीं जा सकता। किन्तु अभी तक शिवाजी के हाथ का लिखा एक पत्र भी नहीं मिला। रामदासी पत्र व्यवहार नामक पुस्तक में शिवाजी का एक पत्र दिया हुआ है, जिसकी लिखावट शिवाजी की बतायी जाती है, किन्तु कोई तर्क उसके प्रमाणिकता के पक्ष में नहीं दिया जा सका।

कुछ भी हो शिवाजी लिखना भले ही न जानते रहे हों, किन्तु उनमें बड़ी विलक्षण योग्यता थी। माता जीजाबाई ने बचपन में उन्हे धार्मिक कहानियाँ सुनाई थी। महाभारत और रामायण की कथाएँ उन्हें याद थी। इन कथाओं का उनपर बडा प्रभाव पड़ा था। वे बहुधा कथा सुनते-सुनते आवेश में आकर कह उठते थे, माँ मैं भी ऐसा ही बनूँगा। अन्याय अधर्म का पक्ष लेने वालो का नाश करूँगा, जननी जन्म भूमि की सेवा में तनमन अर्पित करूँगा। जीजाबाई बड़े विश्वास के साथ कहती—भवानी तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी करे।

बचपन में मस्तिष्क में बैठे हुये विचार धीरे धीरे प्रौढ़ होते गये। जब वे कभी किसी पर अत्याचार होते देखते तो उनका खून खौल उठता था। वह अपने को रोक नहीं पाते। उनमें कोई धार्मिक कट्टरता नहीं थी। चाहे हिन्दू हो या मुसलमान सभी का वह आदर करते थे। अधर्मी उनका शत्रु था। वे साधुओं को जितना मानते थे, उतना ही फकीरों को भी। जहाँ वे हिन्दू धर्म की अच्छी कहानियाँ साधुओं से सुनते थे, वहाँ फकीरों से भी उपदेश ग्रहण करते थे। वे अन्याय सहन नहीं कर पाते थे।

इनके बचपन की एक घटना है। शिवनेर के किले से आने के दो वर्ष बाद दादाजी कोणदेव उन्हे और उनकी माता जीजाबाई को लिवाकर बंगलोर गये। उन दिनों शाहजी बंगलोर में थे ही। दादाजी जागीर की वसूली का हिसाब देने गये थे। उन्होंने सोचा कि माँ बेटे को भी लिवाता चलूँ। शाहजी उनसे मिलकर प्रसन्न तो होंगे ही। इन्हें देखे उन्हें कितने दिन हो गये होंगे।

सचमुच शाहजी शिवाजी को देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। उसके बात करने का ढंग, उसकी योग्यता तथा बुद्धिमानी पर वे फूले नहीं समाये। रत्न कोई छिपाकर नहीं रखता। शाहजी भी शिवाजी को छिपाकर नही रखना चाहते थे। उन्होंने सोचा, यदि यह सुलतान से मिले, तो इसकी बातचीत से वह भी प्रसन्न हो जायगा। इनाम देगा। हमारी और उसकी मित्रता बढ़ेगी। इसीसे उन्होंने एक दिन शिवाजी से कहा—"बेटा, आज मैं तुम्हें बीजापुर के दरबार में लिवा चलूँगा।" किन्तु बालक शिवा अपने जन्म जात स्वाभिमान से बोल उठा, "मैं दरबार में नही जाऊँगा" दादाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरी शिक्षा का शिवाजी पर तो कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा, उसने आज पिता का कहना नही माना। उन्होंने शिवाजी को समझाते हुये कहा "बेटा, पिता की आज्ञा परमात्मा की आज्ञा है, उसका पालन करना तुम्हारा धर्म है।" "यह तो ठीक है, गुरुदेव, किन्तु दरबार में जाने का मतलब है अपना अपमान। वह जो अत्याचारी है जिसने हमारा धर्म नष्ट किया है, उसको मै कभी नमस्कार नहीं कर सकता। हाँ, यदि दरबार में जाकर बिना नमस्कार किये अपने स्थान पर मै बैठ सकूँ, तो मै चल सकता हूँ। शाहजी विस्मय में थे, दादाजी चुप थे, जीजाबाई मनमें मुस्करा रही थी। आखों से फूल झड़ रहे थे।

शिवाजी के स्वभाव के कारण जीजाबाई उन्हें वहाँ अधिक दिन तक रखना नही चाहती थी। इतना होने पर भी शिवाजी को पिता के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनके सम्मुख उनका मस्तक सदा नत रहता था। शाहजी को भी इस पुत्र पर गर्व था। वे समझते थे, पुत्र ही पिता का गौरव है और शिवा मेरे नाम को एक दिन इतिहास के पन्नो में अवश्य स्थापित करा देगा। जीजाबाई बगलोर में अधिक दिन तक न टिकी। जब दादा कोणदेवजी लौटने लगे, तो वे भी अपने पुत्रके साथ लौट आयीं। पिता पुत्र का यह मिलन थोड़े ही दिनों का था, लेकिन बड़ा महत्वपूर्ण था। इसमे पिता ने पुत्र को समझा—और पुत्र ने पिता को।

रक्त का सम्बन्ध बड़ा विचित्र होता है। दशरथ राम से विमुख होकर एक क्षण भी न जी सके। शाहजी भी अपने पुत्र से दूर तो रहते थे, किन्तु कभी कभी उसे देखने की उत्कट अभिलाषा जाग उठती थी। यो तो तुकाबाई का पुत्र शाह जी के साथ था ही, किन्तु शिवाजी ऐसी योग्यता उसमें न थी। उन्होने सन् १६४१ ई० में शिवाजी और जीजाबाई को बीजापुर बुलाया। इस समय शिवाजी की अवस्था १४ वर्ष की थी। इस बालक की आकृति से अद्वितीय प्रतिभा, अप्रतिक तेज टपकता था। भविष्य के पौरुष का कोमल स्वरूप स्पष्ट दिखायी देता था। आलस्य उनमें छू तक नही गया था। भोग-विलास की छाया से वे दूर थे। अपने गुणो से लोगो को आकृष्ट कर लिया करते थे। बीजापुर में आते ही वे अपने पिता के मित्रो के प्रिय पात्र हो गए। बीजापुर के सरदार, अमीर जागीरदार उन्हे अपना ही लड़का समझने लगे। इसका कारण यह था कि वे सबका बड़े सम्मान से स्वागत करते थे। उनकी वाक्पटुता बड़ी हृदयग्राही थी। पुत्र का यह गुण पिता के हर्ष का कारण बना। अपने पिता से मिलकर वे फूले नही समाये।

एक मुँह से बात हजार मुँह की हो गई। आग के फैलने में देरी लगती है पर बात के फैलने में नहीं। बीजापुर के सरदारो ने शाहजी के पुत्र शिवाजी की प्रशंसा सुलतान से की। सुलतान भी प्रसन्न हुआ। एक बालक की इतने लोगो द्वारा की गई प्रशंसा अवश्य कुछ महत्व रखती होगी। सुलतान ने शाहजी को एक दिन बुलाया और कहा, "तुम्हारा पुत्र यहाँ आया और तुम उसे दरबार में भी नही लाए।" शाहजी बड़ी विनम्रता से शिवाजी को दरबार में उपस्थित करने का आश्वासन देते हुए बोले "अभी कुछ ही दिन तो आये हुए जहाँपनाह—, एक दिन तो लाने ही वाला था।" बात टल गई। काम बन गया।

शाहजी की इच्छा शिवाजी को दरबार में उपस्थित करने की अवश्य थी, किन्तु वे अपने बालक के स्वभाव से परिचित थे। उन्होने अपने मित्र मुरारपंत को इस कार्य के लिए उपयुक्त समझा। मुरारपंत से शाहजी की बड़ी घनिष्ठता थी। बीजापुर के दरबार में जितना सम्मान इनका था, उतनाही शाहजी का भी।

मुरारपंत ने शिवाजी को पास बुलाकर पुचकारते हुए कहा "चलो बेटा,

आज तुम्हे दरबार में लिवा चले, सुलतान को सलाम करावे।" शिवाजी उनकी बात सुनकर कुछ समय तक चुप रहे। कुछ बोलना उचित न समझा। पिता के मित्र थे, पिता तुल्य थे। अन्त में मुरारजी ने पुनः कहा "चलो बेटा, तैयारी करो।" इसबार शिवाजी ने सोचा कि मन की बात कह देनी ही उचित है, चुप रहने से काम न चलेगा। उन्होने बड़ी विनम्रता से कहा "हम हिन्दू हैं। सुलतान हमारे धर्म का नहीं, हमारी जाति का नहीं, हमारे देश का नही। गाय और ब्राह्मण हमारे पूज्य है। सुलतान उन्हें सताता है, गऊ की हत्या करता है इसलिए वह हमारा भी शत्रु है। आप उसे सलाम करने को कहते हैं, मेरा तो जी कहता है कि मैं उसका सिर धड़ से अलग कर दूँ।" बालक के इस वीरोचित उत्तर पर मुरारजी पंत दंग रह गए। वे कुछ बोल न सके। अन्त में कुछ लोगों ने शिवाजी को पुनः समझाया "बेटा, विधर्मियो की ही सेवा करने से तुम्हारे पिताजी को इतना वैभव प्राप्त हुआ है। राजा से द्वेष करना उचित नहीं। जल में रहकर मगर से वैर नहीं करना चाहिए।" "सूर्य की किरणे तो जल में पड़कर भी जल से वैर करती हैं, क्योकि उनमें तेज है, उनमें बल है।" शिवाजी ने छूटते ही जबाब किया।

शक्तिशाली बाण के आगे शत्रु भले ही टिक जाय, किन्तु शक्तिशाली तर्क के आगे बुद्धि नहीं टिक सकती। सभी समझाकर हार गए, किन्तु शिवाजी अपने विचारों पर दृढ़ रहे, यहाँ तक कि जीजाबाई ने भी उन्हें समझाया। अपनी माता को वे भवानी के समान मानते थे, फिर भी उस समय अपने विचार से वे न डिगे। अन्त में एक दिन शाहजी ने उन्हें एकान्त में बुलाया और कहा "बेटा, तुम्हारे विचार बड़े ऊँचे हैं मुझे तुम पर गर्व है। मुसलमानो से मुझे भी घृणा है, किन्तु ईश्वर की कुछ ऐसी मर्जी है कि मै इन्हीं मुसलमानों की सेवा कर रहा हूँ। मनुष्य क्या कर सकता है, परमात्मा की ही कृपा है कि इतने थोड़े से मुसलमान हिन्दुओं पर राज्य करते हैं। अब हम लोगो की भी कुशल इसी में है कि हम लोग सुलतान के कृपापात्र बनें।" शिवाजी ने बड़ी श्रद्धा से मस्तक झुका कर पिता की आज्ञा स्वीकार की, किन्तु हृदय की बात न रोक सके और अन्त में उन्होने कह ही दिया "परमात्मा की कृपा से मुसलमान हम पर शासन करते हों

या न करते हों, पर भवानी की कृपा से मै उनका विरोध अवश्य करता हूँ।"

शाहजी सुलतान के अन्धभक्त न थे, किन्तु परिस्थिति देखकर काम करते थे। आज शिवाजी को दरबार में ले जाना था। उन्होने सोचा कि शिवा अभी बालक है। आचार-व्यवहार से अभी परिचित नही है। दरबार का रीति-रिवाज क्या जाने और फिर स्वभाव का भी थोड़ा गरम है। उसकी नसो में शीघ्र उबाल आ जाता है। इसीलिए उसे दरबारी शिष्टाचार और रीति-रिवाज की बातें शीघ्र समझा देनी चाहिए। उन्होने शिवाजी को दोपहर के पहले एक बार पुनः बुलवाया और उन्हें दरबारी शिष्टाचार की शिक्षा दी। प्रत्येक परिस्थिति पर शान्त रहने का उपदेश दिया। शिवाजी चुपचाप बैठ कर सारी बाते सुनते रहे और विनम्र होकर सभी को स्वीकार किया। जैसे कोई कर्त्तव्यपारायण शिष्य अपनें गुरु से धर्म की दीक्षा ले रहा हो।

अन्त में वह ऐतिहासिक समय आ गया जिसके लिए शाहजी ने शिवाजी को तैयार किया था और हम-आप जिसके लिए इतनी प्रतीक्षा कर रहे थे।

सुहावनी सन्ध्या है। सूर्य अस्त हो रहा है। किरणें पीली पड़ गई है। सुलतान के दरबार में उपस्थित होने के लिए सरदार, जागीरदार, अमीर आदि सभी उत्सुक है। लोग उपस्थित होने लगे। धीरे-धीरे दरबार का समय आ गया। सभी स्थान भर गए लेकिन अभी भी लोग चले आ रहे हैं। शाहजी को आज कुछ बिलंब हो गया है। उनका पुत्र शिवा, उनके साथ है। दरबार में उपस्थित होते ही शाहजी ने जमीन छूकर, दरबारी शिष्टाचार के अनुसार, सलाम किया, पर शिवाजी ऐसा न कर सके। उनकी आत्मा ने उन्हें रोक लिया। सुलतान के सामने जाते ही पता नहीं कितनी घृणा तथा कितने तिरस्कार से उनका मन खिन्न हो उठा, जिसका अनुमान हम-आप नहीं लगा सकते। वे झुकते-झुकते रुक गए और साधारण नमस्कार करके अपने पिता के बगल में जा बैठे। उनका यह कार्य आश्चर्यजनक तो था ही, साथ ही यह दरबारी शिष्टाचार को एक खुली चुनौती भी थी। दरबारी दंग रह गए। सुलतान को विस्मय हुआ कि आखिर यह कौन है? उन्होने मुरारपंत से पूछा "आज दरबार में किसका लड़का आया है? क्या यही राजा शाहजी का पुत्र शिवाजी है?"

"जी हाँ हुजूर, यही शिवाजी है। अभी यह लड़का है। दरबार के नियम नहीं जानता। सलाम करना तक भी इसे नहीं आता" मुरारजीपंत की बात सुलतान को जँच गई। उन्होने शिवाजी को अपने पास बुलाया और मुस्कराते हुए कहा "शाबास बेटा, अपने पिता के ही समान वफादार और बहादुर बनना।" उन्होंने उसे जवाहरात और कपड़े भी दिए। दरबार उल्लास और आनन्द के बीच समाप्त हुआ। शाहजी भी प्रसन्न थे। क्योंकि उनपर सुलतान आज खुश हुआ था। शिवाजी भी प्रसन्न थे क्योंकि उनके सिर से आज की एक बला टल गयी थी। घर आकर शिवाजी ने सब कपड़े उतार कर फेंक दिये और दिव्य स्नान किया। सुलतान का एक स्पर्श भी शिवाजी को सह्य नहीं था।

इसके बाद यदाकदा शिवाजी अपने पिता के साथ दरबार में जाते थे, किन्तु उन्होंने सुलतान को कभी भी झुककर सलाम नहीं किया। सुलतान का संशय बढ़ता गया। एक दिन उसने शिवाजी को अपने पास बुलाकर मुस्कराते हुए दरबारी ढंग का मुजरा ( सलाम ) न करने का कारण पूछा। शिवाजी की प्रतिभा विलक्षण थी। उन्होंने बड़ी योग्यता से उत्तर दिया "पिताजी ने मुझे मुजरा करना सिखाया है और करने को कहा भी है, किन्तु जब मैं दरबार में आता हूं, मुजरा करना भूल जाता हूँ और जैसे पिता के समक्ष हाथ उठ जाता है, उसी तरह हुजूर के सामने भी हाथ उठ जाता है। मैं अपने पिता और बादशाह सलामत में कोई अन्तर नही समझता। यदि आप समझते हों तो मेरे सलाम को ही मुजरा समझें।" इस उत्तर से सुलतान गद्‌गद हो गया। मुरारपंत और भी मोहित हो गए। शाहजी ने उस ईश्वर को मन ही मन कोटिशः धन्यवाद दिया, जिसने शिवाजी ऐसा पुत्र प्रदान किया था। सुलतान ने शिवाजी की बडी प्रशंसा की।

दिन बीतता गया। जिन्दगी आगे बढ़ती गई, शान्ति से नही, अपनी स्वाभाविक क्रांति के साथ। दरबार जाने के मार्ग में कसाईयों की अनेक दूकानें थीं। गोहत्या करना और मास बेचना उनका व्यवसाय था। शिवाजी को यह पसन्द न था। इन कसाईयों की दूकाने देखकर उनका खून उबल पड़ता था। कभी-कभी क्रोध में अपने को भी भूल बैठते थे। एक दिन एक भयंकर घटना

हो गई। वे राजप्रासाद की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक कसाई एक गाय की हत्या कर रहा था। गाय चिल्ला रही थी। उसकी ध्वनि में बड़ी पीड़ा थी, बड़ी करुणा थी। शिवाजी को ऐसा लगा जैसे उनसे कोई पुकारकर कह रहा है, "शिवा, अपनी प्रतिज्ञा याद करो। क्या तुमने यही प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारे आँखो के सामने अन्याय होगा और तुम देखते रहोगे? तुम्हारे सामने गो-हत्या होगी और तुम चुपचाप रहोगे?" बस इतना तो काफी था। शिवाजी आपे से बाहर हो गये। क्रोध में वे परिस्थिति को भी भूल बैठे। सिंह की तरह कसाई पर चढ़ गये। लात घूँसा और तमाचे से उसकी मरम्मत की। गाय बच गई। गो-वध होते-होते बच गया। बात चारो ओर फैल गई। नगर भर में इस काड की चर्चा होने लगी।

शाहजी को समाचार मिला। वे शिवाजी के स्वभाव से खिन्न हो उठे। शिवाजी को साथ लेकर कैसे निबह पायेगी, उनके लिए एक समस्या हो गयी। इधर शिवाजी भी बीजापुर में घबरा गये। हिन्दू और हिन्दू धर्म का अपमान वे देख नही सकते थे। उनका जी ऊब गया। एक क्षण एक युग के समान हो गया। अब बीजापुर को नमस्कार कर छोड़ देना ही उन्होने उचित समझा, किन्तु पिता की आज्ञा इसके कुछ विरुद्ध थी। एक ओर उसका मन था, धर्म और कर्त्तव्य की भावना थी, दूसरी ओर पिता की आज्ञा थी। तराजू का कौन पलड़ा भारी है, इसका निर्णय आप न कर पाये होगे, किन्तु शिवाजी ने कर लिया। उन्होंने बड़े धैर्य के साथ पिता का विरोध किया और कहा "अब मुझे दरबार में चलने की आज्ञा मत दिया कीजिए। मार्ग में कसाइयो की दूकान पर टँगे मांस को देखकर मेरा मन खिन्न हो उठता है। क्रोधाग्नि धधक उठती है। मेरी तलवार बाहर निकलते-निकलते अपनी परिस्थिति देखकर भीतर चली जाती है। आप बादशाह के नौकर हैं। लाचार हैं। यह सब देख सकते है। मै दरबार में तब तक नही जाऊँगा जब तक बाजार में गोमास बिकना बंद न हो जायगा।"

शाहजी शिवाजी की बात सुनकर बड़ी दुविधा में पड़े। उनके लिए आगे तालाब था और पीछे कुआँ। शिवाजी को ले जाना खतरे से खाली नही था। न ले जाने से सुलतान अप्रसन्न होता। क्या किया जाय, उन्हें कुछ समझ में न

आया। अन्त में वे मीरजुमला से मिले। मीरजुमला मुसलमान थे। उनके दरबारी साथी थे। सज्जन थे। दोनो एक दूसरे के हृदय की बात जानते थे। उन्होंने शिवाजी की सारी बातें मीरजुमला से कह दीं। दोनो के सामने समस्या आ गयी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि आज शिवाजी को घर पर ही रहने दिया जाय। यदि सुलतान का चित्त प्रसन्न देखा जायगा, तो गो-बध निवारण की बात कही जायगी।

ऐसा ही हुआ। मीरजुमला और शाहजी दरबार में पहुँचे। आज मीर-जुमला ने बडी ही तत्परता से सारा सरकारी काम शीघ्र ही समाप्त कर डाला। सुलतान की मुद्रा भी बड़ी प्रसन्न थी। उन्होंने शाहजी की ओर देखकर कहा "क्या शाहजी तुम्हारा पुत्र कहाँ है?" शाहजी सकपकाए, किन्तु बीच में ही मीर-जुमला ने खड़े होकर बड़े अदब के साथ कहा, "हुजूर, मै आपकी खिदमत में कुछ अर्ज करना चाहता हूँ। यदि हुजूर का हुक्म हो तो मै अपनी अर्जी पेश करूँ।" सुलतान का ध्यान अचानक शाहजी की ओर से खिच गया। उन्होंने मीरजुमला को अपनी बात कहने की स्वीकृति दे दी। उसने कहना आरंभ किया "हुजूर, आप बीजापुर के सुलतान है, बीजापुर की प्रजा के आप माँ-बाप है। हिन्दू-मुसलमान दोनो आपकी प्रजा है। आपके दरबार में जितने मुसलमान मुलाजिम है, उससे कही अधिक हिन्दू है। आपके राज की शोभा इसी मे है कि दोनो अपने धर्म के अनुसार चलें। दोनों में आपस में मेल हो। राजमार्ग और राजप्रासाद के आसपास गोमास की बहुत सी दूकाने है। इन दूकानो को देखने से हिन्दुओं को गोहत्या का पाप लगता है। इससे उन्हे मानसिक कष्ट होता है। जिससे हमारे मेल मिलाप का बन्धन ढीला हो सकता है। आज भी शाहजी का पुत्र इसीलिए दरबार में नहीं आया कि उसे गोमास की दूकाने देखनी ही पड़ जाती है। अपने पिता पर भी वह काफी नाराज हुआ है, किन्तु उसके पिता तो आपके एक वफादार खिदमतगार है। अच्छा होता कि आप...इन मास की दूकानों को यहाँ से हटवा देते।" मीरजुमला के निवेदन से दरबार में विस्मय छा गया। यदि यह बात शाहजी ने कही होती तो इतना प्रभाव न पड़ पाता। सुलतान ने कहा "मीरजुमला, मै तुम्हारी बात पर गौर करूँगा।"

दूसरे दिन एक आज्ञा निकली कि सभी कसाई की दूकानें शहर के बाहर दक्षिण की ओर चली जायें। शहर में कोई भी गोमास की दूकान न रह जाय। इस प्रकार नगर में गोबध बन्द हो गया। मीरजुमिला का तीर लग गया। शिवाजी की प्रतिज्ञा पूरी हुई।

अब शिवाजी नित्य दरबार में बड़ी प्रसन्नता से जाया करते थे। सुलतान उन पर प्रसन्न था। वह नित्य ही शिवाजी को कुछ न कुछ दिया करता था—वस्त्र, आभूषण, मिठाई, मेवे सब कुछ शिवाजी को मिलता था। दिन शान्ति से बीतने लगे। हँसी-खुशी जिन्दगी आगे बढ़ने लगी। हम-आप रुक सकते है पर नियति का चक्र नही रुकता। चक्र में बँधकर घटनाएँ आती जाती है। ऐसी ही घटना शिवाजी के जीवन में एक और आयी।

सबेरा हो चला था, पर सूर्य नही निकला था। आकाश लाल था। पवन शीतल था। जीवन और प्रकृति मे नई स्फूर्ति थी। शिवाजी अपने साथियों के साथ घोड़े पर टहलने निकल गये थे। उन्होने आज फिर वही देखा, जिसे वे कभी देखना पसन्द नहीं करते थे। नगर के सदर दरवाजे पर एक कसाई बैठा मास बेच रहा था। वह लपक कर पहुँच ही तो गये। उन्होने कसाई से पूछा "यह क्या है ?" कसाई थोड़ा अकड़ा। बिजली सी चमकती तलवार म्यान के बाहर आई। नागिन सी फुफकार हुई। कसाई का सिर धड़ से अलग हो गया। खून बह निकला। इधर शिवाजी की आँखो से खून टपक रहा था। उनके पिछड़े साथियो के आने में देर न होती तो कसाई का काम तमाम न होता।

समाचार शीघ्र ही नगर भर में फैल गया। नगरवासी तरह-तरह की आलोचनाँ करने लगे। शिवाजी को सभी निरंकुश समझने लगे। विरोध की चिनगारी भभक उठी। इधर कसाई की स्त्री रोती विलखती सुलतान के पास पहुँची। सुलतान ने उसकी फरियाद गौर से सुनी और अन्त में उसे ढाढ़स दिलाते हुए बड़ी नम्रता से बोले "सचमुच तू अभागिन है। मैने जब यह हुक्म जारी किया कि शहर में कोई मांस न बेचे, तब तुम्हारे पति ने मांस बेचने की हिमाकत की। शिवाजी ने उसे जो दंड दिया वह उचित ही था। यदि तुम्हारा पति जीवित होता, तो मैं भी उसे ऐसा ही दंड देता।" सुलतान का प्रत्येक शब्द कानून था।

उसने स्त्री को चार रुपये अपने पति को दफ़न करने के लिए दिये तथा उसे भठियारखाने से नित्य सेर भर रोटी दिलाने की व्यवस्था की ।

घटना से नगर में हलचल तो मची ही थी, सुलतान के निर्णय से उसमें और वृद्धि हो गयी । विरोध की चिनगारी ज्वाला में परिवर्तित दिखाई दी । शाहजी घबरा गए । उन्होंने सोचा कि अब शिवाजी के साथ निबहना कठिन है । उन्हें समझाना, उपदेश देना पत्थर पर पानी फेंकना है । फिर भी उन्होंने एक बार प्रयत्न करना उचिन समझा । उन्होंने जीजाबाई के सामने ही शिवाजी को बुलाया और समझाते हुए कहा—"बेटा, अब तुम बच्चे नही रहे । तुम में विवेक है । राह चलते झगड़ा करना तुम्हारे ऐसे लोगो को शोभा नहीं देता । बात-बात में झगड़ा करना कोई अच्छा काम है ? शिवा, जरा सोचो तो तुम्हारे पूर्वज मुसलमानो की सेवा करके ही प्यादा से राजा हुए है । मुझे वर्तमान वैभव प्राप्त हुआ है । निजामशाही में मैने कैसे कैसे कष्ट झेले हैं । इसे कभी तुम अपनी माँ से भी पूछना । विपत्ति और संघर्ष के बीच चलता-चलता आज वहाँ चला आया हूँ, जहाँ बहुत कम लोग आ पाते है । यह सब आदिलशाही राज की सेवा के कारण ही हो सका है । तू भी अपने पिता के मार्ग पर चलकर अपना भाग्य चमका सकता है । अपना गौरव और सम्मान बढ़ा सकता है । उद्धतता, आवेश और जंगलीपन से कुछ लाभ नही । तुमने कसाई की हत्या की । सारे राज्य में तुम्हारा विरोध हो रहा है । अब सुलतान का भी कान भरा जायगा । तब कैसी परिस्थिति हो सकती है, जरा सोचो तो । अब तुम अपनी यह आदत छोड़ दो । विचार करो, और यदि जँचे तो मेरी बाते मान लो ।

शिवाजी ने बड़े ध्यान से पिता की बातें सुनी । चुप रहे । ऐसा लगा कि चट्टान पर एक लहर आई और धीरे से चली गयी । जीजाबाई ने भी शिवाजी को खूब समझाया, किन्तु शिवाजी पर कुछ विशेष प्रभाव न पड़ा । शिवाजी माता के शक्तिशाली से शक्तिशाली तर्कों के सामने यही कहते थे, "माँ, तुमने मुझे जो शिक्षाएँ दी हैं, फिर से याद करो । तुम्हारी सारी बातो का उत्तर उनमें तुम्हें मिल जायगा । अब मैं तुमसे हाथ जोड़कर बीजापुर से कही दूर चले जाने की

आज्ञा माँगता हूँ। मैं एक दिन भी इस राज्य में रह नहीं सकता। अपने धर्म का अपमान देखना तुम्हारे पवित्र गर्भ को कलंकित करना है।

जीजाबाई ने ज्यो की त्यो सारी बातें शाहजी से कह दी। शाहजी के पास अब कोई चारा न रहा। उन्होंने अपने मित्रो से इस सम्बन्ध में सलाह ली। सभी ने शिवाजी को बीजापुर से हटा देने की ही सलाह दी। तब तक दादाजी कोणदेव पूना से हिसाब-किताब लेकर आ पहुँचे। शाहजी ने जीजाबाई और शिवाजी को उनके साथ पूना भेज दिया। शिवाजी पिजड़े से मुक्त हो गये। जंगल का शेर पुनः जगल में चला गया।

०००००७०

शिवाजी की एक शादी पूना में ही हो चुकी थी। शाहजी की बड़ी इच्छा थी कि उनकी यह शादी बीजापुर में ही होती। किन्तु शिवाजी के यह कहने पर कि यवनों को मैं विवाह में सम्मिलित नहीं करूँगा। उनके सम्मिलित होने से इस कार्य की पवित्रता में धब्बा लगेगा, शाहजी समझ बूझकर चुप ही रहे। विवाह सम्पन्न हो गया। यह तो हुई पहले विवाह की बात। शिवाजी का एक दूसरा भी विवाह हुआ था। इसकी भी एक विचित्र कहानी है।

एक दिन शिवाजी अपने पिता के साथ दरबार में पहुँचे। बातचीत के सिलसिले में सुलतान ने शाहजी से कहा, "शाहजी, अब अपने पुत्र का विवाह भी कर डालो!" शाहजी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "विवाह तो हो चुका है, जहाँपनाह।"

"अच्छा, तो तुम्हारा पुत्र विवाहित है?......। विवाह कर लिया और मुझे निमंत्रण भी नही दिया।

"क्या करता, जहाँपनाह। विवाह ऐसे समय हुआ, जब मैं भी उपस्थिति नहीं था।"

"तब यह विवाह कैसा, जिसमें न तुम ही उपस्थिति थे और न मैं ही?"

सभी दरबारी हँस पड़े। शाहजी कुछ बोल न सके। सुलतान ने पुनः कहा—

अच्छा हम लोग इसकी दूसरी शादी करेंगे, जिसमें हम सभी भाग लेंगे। खूब धूम धाम से आयोजन किया जायगा।"

शाहजी क्या कहते? शिवाजी के स्वभाव का स्मरण कर उन्होंने इसे ठीक नहीं समझा। फिर भी विरोध करने की उनमे हिम्मत नहीं थी।

उन्होंने गम्भीर स्वर में छोटा सा उत्तर दिया—"अच्छी बात है।"

बात पक्की हो गयी। आदिलशाह ने एक मराठा सरदार की पुत्री शिवाजी के लिये चुना। इसका नाम सोयराबाई था। विवाह की तैयारी होने लगी। पूरे राज्य में हर्ष और उल्लास छा गया। ठाट-बाठ से शादी का समाहोर सम्पन्न हो गया। सुलतान ने खूब इनाम बाटा। बहुत कुछ खर्च किया गया। शिवाजी के हाथ एक बार पुनः पीले हो गये। उन्हें एक नयी जीवन सगिनि मिली।

जीवन का प्रातःकाल समाप्त हुआ। बचपन बीता। यौवन आया। नवीनता आयी।

---

३

## स्वतंत्रता के पथ पर

पूना जिले के पश्चिम में ९० मील लम्बा और करीब १२ से लेकर १४ मील चौडा एक पहाडी प्रदेश है। उसका नाम है मावल। मावल का तात्पर्य है, सूर्यास्त का देश या पश्चिम का प्रदेश। यह प्रात बडा ऊँचा-नीचा है। बड़े बड़े टीलो से भरा है। इसमें टेढ़ी-मेढ़ी गहरी अनेक तराइयाँ है। नीचे की भूमि कुछ समतल है, किन्तु उस पर भीं छोटे-बड़े पहाड़ एक दूसरे से मिले हुए जमीन पर उठे फोड़े से जान पड़ते हैं। सारा प्रदेश बनों से घिरा है। वृक्ष है। घनी झाड़ियाँ है। लताएँ और पेड़-पत्ते है, जो चलने वालो का रास्ता रोकते रहते है। इसी मावल प्रदेश के उत्तर की ओर पुरानी असभ्य डाकुओं की जाति रहती थी; जिसे 'कोली' कहते थे। इसके दक्षिण में मराठा किसान रहा करते थे जिन्हे मावले कहा जाता था। ये दुबले-पतले और काले होते हे, किन्तु इनका शरीर बड़ा फुर्तीला होता है। परिश्रम इनकी जीविका और साहस इनकी सम्पत्ति है। यहाँ की जलवायु दक्षिण में अन्य स्थानों की अपेक्षा कम गरम है, जिससे यह स्वास्थ्य के लिए अच्छी है।

इस प्रान्त को भी दादाजी कोणदेव ने अपने अधिकार में कर लिया था। इनके छोटे छोटे गाँव में देशपाण्डे (तहसीलदार) हुआ करते थे। ये देश-पाण्डे अपनी प्रजा पर—जो बहुत थोड़ी होती थी—अत्याचार करते थे। दादाजी ने इन सभी देशपाण्डो को समाप्त किया। अत्याचार समाप्त हुआ। सभी मावले ग्राम पूना के अधिकार क्षेत्र में आ गए। दादाजी को इससे बड़ा लाभ हुआ।

शिवाजी भी सदा दादाजी के साथ रहा करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि मावले उन्हें अपना ही व्यक्ति समझने लगे। उन से शिवाजी की घनिष्ठता बढ़ने के कारण मावलों के परिश्रम करने का विशेष गुण उनमें आ गया। शिवाजी के बचपन के बहुत से साथी मावल-बन्धु ही थे, जिनमें एसाजी कंक, तानाजी मालसरे और नेताजी पालकर उनके जीवन के साथ ही साथ इतिहास में अपने कृत्यो के लिए अमर हो गये। इन्ही लोगो की सहायता से शिवाजी ने सह्याद्रि पर्वत के दुर्गम स्थलो का भ्रमण किया था, जिससे वे भयंकर से भयकर परिस्थितियो का सामना सहर्ष करने मे समर्थ हो सके।

किन्तु शिवाजी की आँखो में स्वतन्त्र राष्ट्र का सपना था। उनके मस्तिष्क में सदा स्वतन्त्रता की भावना गूँजा करती थी। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सब कुछ इसी भावना से प्रेरित होकर करते थे। जब उन्होंने देखा कि मावलो का विश्वास हम पर अत्यधिक बढ़ गया है, वे हमारे एक इशारे पर अपना जीवन दे सकते हैं, तब उन्होने कुछ करने का विचार किया। और यह बात बिल्कुल सत्य है कि मावले उन्हे अपना नेता, मित्र, पिता और देवता समझते थे। नैपोलियन के समर्थको के हृदय मे भी उसके प्रति ऐसा ही सम्मान था। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप को भीलों ने ही सहायता दी थी। राजाराम बानर-वाहिनी की सहायता से लंका पर चढ़ाई करने मे समर्थ हुए थे। ये छोटी जातियाँ कभी बड़ा काम तो कर नहीं सकी है, पर बड़ा काम करने मे बड़ी सहायक हुई है।

मावलों को अपने पक्ष में देखकर शिवाजी के मस्तिष्क मे एक बात आयी। उन्होंने सोचा कि पहले अपनी जागीर पूना की स्थिति ठीक करनी चाहिए। इस जागीर के उत्तर में मुगलों का प्रसिद्ध सूबा अहमदनगर था। वर्तमान समय में शिवाजी को इससे कोई भय नहीं था। पश्चिम की ओर घने बनो से आच्छादित सह्याद्रि पर्वत-श्रेणियाँ थी। मार्ग दुर्गम था। अचानक आक्रमण असम्भव था। पूर्व दिशा की ओर से भय अवश्य था, किन्तु बीजापुर से पूना बहुत दूर है। आकस्मिक आक्रमण की आशंका नही थी। जो भय था वह दक्षिण की ओर से ही था। इधर की ही व्यवस्था पर शिवाजी ने ध्यान दिया।

पूना से २५ मील दक्षिण की ओर तोरण का एक किला था। यह दुर्ग बीजापुर का था। शिवाजी ने इस पर अधिकार करना निश्चित किया। निश्चय तो बड़ा अच्छा था, किन्तु शक्ति की आवश्यकता थी। शिवाजी शक्ति की आराधना में लग गये। उन्होंने अपने प्रिय उन तीनों साथियो एसाजीकंक, तानाजी और नेताजी पालकर से सलाह ली। कार्यक्रम बन गया, किन्तु गुप्त रक्खा गया।

गर्मी तपकर निकल गयी। आकाश में बादल दिखाई देने लगे। धरती से सोंधी साँस निकली। बरसात आरम्भ हुई। पर्वतश्रेणियाँ घनघोर वर्षा से लहराने लगी। तोरण किले के सैनिक पहाड़ी से नीचे उतर आये। किले का स्वामी किले में रह गया। मौका अच्छा मिला। अवसर हाथ आया।

एक दिन जब वर्षा हो रही थी। शिवाजी अपने तीनो साथियों को लेकर चुपचाप तोरण किले में पहुँचे। किला सूना था। किले का स्वामी एक ओर रहता था। महल बिल्कुल खाली था। घनघोर वर्षा की सुनसान अँधेरी रात में यहाँ प्रेत आत्माएँ भी भय से काँप जाती होगी। हवा के झोको की विचित्र आवाज एक सनसनी पैदा कर देती थी।

शिवाजी ने देखा महल जर्जर हो गया है। कई स्थानो पर दीवारें तो गिर गयी हैं। विचार किया गया कि महल की चुपचाप मरम्मत करनी चाहिए। किन्तु किसी को किसी प्रकार की शका भी न हो। यदि किलेदार ने कुछ पूछा तो...? देखा जायेगा।

मावलो ने दीवार बनानी आरम्भ कर दी। ईंट-पर-ईंट रखी जाने लगी। काम में उत्साह अधिक था, किन्तु वर्षा से अधिक काम न हो सका। किलेदार को शंका हुई। उसने एक दिन तानाजी को बुलाकर पूछा—यह सब आप किसकी आज्ञा से कर रहे हैं? इसमें आज्ञा तो नहीं थी, पर हमारा कर्तव्य हमें ऐसा करने के लिये विवस कर रहा था। "तानाजी ने बड़ी नम्रता से कहा।"... क्या मतलब? बात यह है कि हम सुलतान के राज में रहते हैं। उसकी कृपा पर जीते हैं। वफादार प्रजा का कर्त्तव्य है कि वह राज्य की प्रत्येक वस्तु की देख-भाल करे। उसकी रक्षा करे।" बात तो टल गई, पर किलेदार के मन की

शंका नहीं गयी। उसने सुलतान को शिवाजी के इस कार्य की सूचना देते हुए उनकी शिकायत की।

किसी प्रकार शिवाजी को यह बात मालूम हो गयी। अब क्या किया जाय? बहुत विचार के बाद एक तरकीब सूझी। शिवाजी ने भी सुलतान को पत्र लिखा, जिसका आशय था, "तोरणगढ़ जर्जर हो गया है। हालत अच्छी नहीं है। प्रान्त का भी प्रबन्ध ठीक नहीं है, जिससे भूमि-कर भी अच्छा नहीं मिलता। अब किला मैंने अपने अधिकार में ले लिया है। प्रबन्ध ठीक करने में लगा हूँ। शीघ्र ही भूमि-कर भी अच्छा मिलने लगेगा। मेरा ख्याल है कि मैं अपने मालिक को जल्दी ही अपनी वफादारी से खुश कर लूँगा।

निशाना ठीक बैठा। सुलतान शिवाजी की बातों में आ गया। किन्तु वह शिवाजी को धन्यवाद या बधाई का पत्र न भेजकर मौन रह गया। इसमें उसकी दोनों को खुश रखने की नीति थी। इधर मरम्मत का काम जोरों से चल रहा था। किलेदार यह देखना चाहता था कि उसकी शिकायत का क्या परिणाम होता है? शिवाजी यह देखना चाहते थे कि उनकी चाल कहाँ तक सफल होती है। दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे। काम चल रहा था।

बीच-बीच में किलेदार शिवाजी से मिलता भी जाता था। वे उससे इधर-उधर की बातें कर बात टालते जाते थे। एक दिन तो कुछ कहा-सुनी भी हो गयी, पर यह मौका झगड़े का नहीं था। शिवाजी ने स्वयं बात दबा दी।

शिकायत का कुछ फल न हुआ। शिवाजी के पत्र का भी कोई उत्तर न आया, किन्तु दोनों प्रतीक्षा में थे। इसी बीच एक घटना घटी।

एक दिन प्रातःकाल जब आकाश बादलों से घिरा था। पानी बरस रहा था। कई राजगीर अभी भी अपने काम पर नहीं आये थे। एक मावल दौड़ा शिवाजी के पास आया और बोला—"महाराज कल की खोदी गयी दीवार के स्थान की मिट्टी बह गयी है और वहाँ कई घड़ों के मुख दिखायी पड़ रहे हैं।" कितनी जल्दी और कितने घबराहट में उसने ऐसा कहा, इसे बताना कठिन है। "घड़े?" शिवाजी और उनके साथी आश्चर्य में पड़ गये। वे दौड़े हुए उधर आये। सचमुच ये घड़े थे। उनमें अतुल सम्पत्ति भरी थी।

शिवाजी को धन मिला। माँगी मुराद मिली। अन्धे को आँख मिली। उन्होने सोचा भवानी ने ही यह सब किया है। उनका मस्तक श्रद्धा से झुक गया। आँखो मे भक्ति की अपूर्व आभा दिखायी पड़ी। मन पूजा के भावो से पूरित हो गया, वाणी बोल उठी, "धन्य हो माँ, तेरी महिमा अपार है। तेरे ही आशीर्वाद से मेरे सपने पूरे हो सकेंगे।"

इस धन से शिवाजी का उत्साह बढ़ा। उन्होने सेना एकत्र करना आरम्भ किया। गोला बारूद आदि लड़ाई के सामान भी खरीदे गये। शक्ति बढ़ने लगी। यह सब देखकर किलेदार को शंका हुई। उसने सोचा—"मेरी शिकायत का कोई फल नही हुआ। उधर शिवाजी की शक्ति बढ़ती जा रही है। कदाचित् यह सब सुलतान की ही माया हो। वह मुझे यहाँ से निकालना चाहता हो। तब तो जितना शीघ्र ही यहाँ से चला जाय, उतना ही अच्छा हो।" और वह एक दिन चुपचाप किला छोड़कर चला गया।

मार्ग से बाधा हटी। कुछ परिश्रम भी न करना पड़ा। शिवाजी का एक काम शान्ति से पूरा हो गया। मरम्मत भी धीरे-धीरे पूरी हो गयी। तोरण नया हो गया। नया नाम भी दिया गया—प्रचण्ड गढ़। किन्तु यह नाम अधिक दिनों तक न चला। तोरण, तोरण ही रहा।

शिवाजी अब शक्ति एकत्रण में और अधिक परिश्रम करने लगे। उनके साहस उत्साह, लगन तथा परिश्रम ने नये खून को अधिक आकृष्ट किया। पिटे-पिटाये रूढ़िग्रस्त विचार वालो के लिये किसी प्रकार की क्रान्ति का कोई महत्व नहीं होता, क्योंकि उनमें विद्रोह की क्षमता नहीं होती। इसी से नवजवान लोग उनसे अधिक मिले। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर नये खून की गर्मी अधिक काम आती है। शिवाजी ने इन्हें प्रेम से गले लगाया। इन नवजवानों में से कुछ के नाम अब भी इतिहासकार बड़े सम्मान से लेते है। मोरो पिङ्गले, अन्नाजी दात्तो, निराजी पण्डित, रामजी सोमनाथ, दाताजी गोपीनाथ, रघुनाथ पन्त तथा गङ्गाजी मङ्गाजी। ये उन्हीं नवजवानों में से थे, जिन्होंने तन मन धन से शिवाजी की सहायता की। ये उन्ही कारकूनों के लड़के थे, जिन्हें कोणदेव ने शासन में सहायता के लिये रखा था। ये सभी जाति के ब्राह्मण थे।

००००००

तोरण का कार्य समाप्त करने के बाद शिवाजी ने इससे ६ मील की दूरी पर एक दूसरा किला बनवाने का विचार किया। अपनी शक्ति संघटित करने के लिये किलों का निर्माण आवश्यक था। लोगों ने मुरवाद नामक स्थान में रायगढ़ का निर्माण कराना आरम्भ किया। रात दिन काम लग गया। शिवाजी के नये साथियों के प्रोत्साहन से आसपास के गाँव के लोगो ने भी इस काम में पूरे उत्साह से हाथ बढ़ाया। रात-दिन दीवारें उठने लगीं।

लगी हुई आग राख के नीचे दब सकती है, किन्तु ऐसी बातें दबा नहीं करतीं। शीघ्र ही यह समाचार दादाजी कोणदेव को मालूम हुआ। दादाजी शाहजी और सुलतान आदिलशाह के राज भक्त थे। अपने स्वामी की समृद्धि ही उनका कर्त्तव्य था। छलप्रपंच उन्हें छू तक नहीं गया था। वे ईमानदारी से प्रत्येक काम करते तथा सोचते थे। शिवाजी का यह कार्य इन्हें अच्छा नहीं लगा, क्योंकि यह उनके स्वामी आदिलशाह के विरुद्ध था। शिवाजी के इस कार्य के प्रबल विरोध की भावना उनमें जागी। उन्होंने अपने सहायक कारकूनों को बुलाया और उनसे अपने मन की बातें बताते हुये कहा, 'देखिये शिवाजी शाहजी का पुत्र है और शाहजी आदिलशाह के राजभक्त नौकर। वे सुलतान की सेवा में अपना जीवन बिता रहे है।—और शिवाजी सुलतान के ही विरोध के लिये अपनी शक्ति इकट्ठा कर रहा है। क्या यह भला काम है?' दादाजी प्रश्न वाचक मुद्रा में कुछ समय तक रुके।

"इसके विषय में हमलोग भला क्या बता सकते हैं।" कारकूनों में से कई ने एक साथ कहा।

"लेकिन उसे ऐसा करना नहीं चाहिये। सुलतान का विरोध करना नदी में रहकर मगर का विरोध करना है।"

"यह भी हो सकता है कि शिवाजी ने शासन प्रबन्ध ठीक करने के लिये ऐसा किया हो।" एक ने बड़े गम्भीर स्वर में कहा।

"किन्तु शासन का अधिकारी हूँ मै। शासन प्रबन्ध करना मेरा काम है, शिवाजी का नहीं।" दादाजी की स्वाभिमान से भरी हुई अधिकारपूर्ण गम्भीर मुद्रा थी। उन्होंने पुनः कहा, "यदि शिवाजी को प्रबन्ध ही करना था, तो अपने

पिता को लिखता, वे सुलतान से कहकर उसे मुरवाद दिला देते। फिर वह चाहे किला बनाता या जो मन में आये करता। किन्तु, इस प्रकार से चुपचाप शक्ति एकत्र करना, सुलतान के विरोध के लिये लोगो को भड़काना, अच्छा काम नहीं है।"

"हो सकता है, इसमें कोई ऐसी अच्छाई हो, जिसे हम देख न पा रहे हो"

"मानता हूँ कि इसमे एक नहीं हजार अच्छाई होगी, किन्तु इसमें सबसे बड़ी एक बुराई राज-द्रोह की है। एक सच्चे मराठा के लिये हजार अच्छाइयो का उतना महत्व नहीं, जितना इस बुराई का।" सब शान्त थे। दादाजी ने पुनः कहना आरम्भ किया,...आप लोगों के लड़को को भी उसने बहकाया है। अच्छा होता, आप उन्हें समझा लेते।'

"लेकिन बच्चे अब बच्चे नही रहे, उन्हे समझाना सरल कार्य नहीं।"

"किन्तु सदा आप सरल कार्य ही नहीं करते, कभी कभी कठिन कार्य भी करना पड़ता है।" दादाजी ने मुस्कराते हुये कहा।

लोग कहना चाहते थे कि हम अपने कठिन कार्य करने की शक्ति का प्रयोग अपने बच्चो पर ही नहीं करना चाहते। पर दादा के सामने कुछ बोल न सके।

सभा समाप्त हुई। विचारो में डूबे सब चले गये।

००००००

समाचार शिवाजी को कानो कान पता चल गया। दादाजी के इस कड़े रुख से उन्हें दुःख हुआ। दादा का एक पत्र भी उन्हें मिला, जिसमें लिखा था, "शिवा, तुझे यह कार्य शोभा नहीं देता। तुम बहादुर बनो, राजद्रोही नही। शीघ्र ही रायगढ़ का निर्माण बन्द कराके सुलतान को पत्र लिखो और उनसे किले बनवाने की आज्ञा माँगो। वफादारी एक ऐसा गुण है, जिसे मराठा अपने माँ के दूध से ही प्राप्त कर लेता है। उसकी रक्षा करना उसकी अपनी विशेषता है।"

पत्र का आशय बिल्कुल सीधा था। किले का निर्माण बन्द कर देना

चाहिये। शिवाजी के सामने एक समस्या खड़ी हो गयी। वे दादाजी को अपने पिता से भी बढ़कर मानते थे। किन्तु, उनके सपने भी तो थे। माता के मुख से बचपन में सुने हुए वाक्य आज भी उनके मस्तिष्क में घूम रहे थे। "बेटा, जिस प्रकार मैं तुम्हारी माता हूँ, उसी प्रकार यह धरती भी तुम्हारी माता है। आज यह माता दुःखी है। यवनों से पादाक्रान्त हो रही है। उसकी रक्षा करो, बेटा।' एक ओर पिता तुल्य दादाजी की आज्ञा थी, दूसरी ओर माता तुल्य धरती की पुकार थी। शिवाजी क्या करे? आपत्ति और असमंजस्य में मित्र सदा काम आता है। आज भी काम आया। मोरो पिंगले ने कहा—'दादाजी के पत्र का उत्तर न देना ही अच्छा है। मौन रहिये, और किले का निर्माण दिन दूने तथा रात चौगुने लगन से करना चाहिये।'

रामजी सोमनाथ ने कहा—दादाजी को पत्र लिखवा देना चाहिये कि आप जिसे राजद्रोह समझते है, वही हमारा देश प्रेम है।

'दादाजी हमारे गुरु हैं। उन्हें ऐसा नहीं लिखना चाहिये।' रघुनाथ पंत बोला।

अपने मित्रों की बात सुनने के बात शिवाजी को मोरो पिंगले की बाद ठीक जँची। दादाजी को कोई उत्तर न देकर अपना काम करते रहना चाहिये। यह बात सबने मान ली अब और तेजी से काम होने लगा। देखते देखते दीवार उठने लगी।

इधर दादाजी ने देखा कि शिवाजी ने मेरी आज्ञा का उलंघन किया। वह जरा भी टस से मस नहीं हुआ, तब उन्होंने सभी कारकूनो को पुनः बुलाकर समझाया और कहा कि अपने लड़को को समझा कर शीघ्र ही शिवा से अलग कीजिये, नहीं तो आदिलशाह के दंड का भागी हम सबको होना पड़ेगा। यदि हो सके तो आप शिवा को भी समझायें। वह आपके स्वामी का लड़का है। इतना ही नहीं शिवाजी की शिकायत करते हुये दादाजी ने शाहजी को पत्र लिखा। इन दिनों शाहजी कर्नाटक के युद्ध में व्यस्त थे। पत्र पर वे ध्यान न दे सके।

कारकूनों ने भी शिवाजी को समझाया। उन्होंने अपने लड़कों को उनसे

अलग रहने के लिये कहा, किन्तु इसका कुछ परिणाम न हुआ। धारा बहती रही, उसने कोई मोड़ न लिया। शक्ति के संचय तथा रायगढ़ के निर्माण से सुलतान को भी शिवाजी पर सन्देह होने लगा। उसने भी शाहजी को लिखा। शाहजी अब घबराये। वे अपने शिवा के स्वभाव से तो परिचित थे ही। उन्होने दादाजी कोणदेव को शिवाजी पर नियंत्रण रखने के लिये लिखा और सुलतान को भी बड़े नम्र शब्दों में पत्र लिखा कि शिवाजी ने जो कुछ भी किया होगा वह आपकी भलाई के ही लिये किया होगा। वह भला आपके विरुद्ध जा सकता है।

शाहजी का पत्र पाकर दादाजी ने एकबार पुनः शिवाजी को समझाने की कोशिश की। शिक्षा दी, किन्तु जो विचार एक बार बन गये थे, उन्हें मिटाना बड़ा मुश्किल था। शिवाजी के विचार जरा भी नहीं बदले। विरोध, आपत्ति तथा अनेक बाधाओं में भी उनका कार्य चलता रहा।

oooooo

इस घटना के कुछ ही दिनो बाद दादाजी बीमार पड़े। उनके जीवन की संध्या आगयी। शिवाजी को इसकी सूचना मिली। वह दौड़े हुए दादाजी की सेवा में आये। अनेक वैद्यो का इलाज हुआ, किन्तु दशा सुधरने के बजाय बिगड़ती गयी। शिवाजी ने दादा की शुश्रूषा में कोई कोर कसर उठा नहीं रखी। किन्तु ज्यो-ज्यों दवा हुई मर्ज बढ़ता ही गया। रोग प्राण घातक था। एक दिन हालत चिन्ता-जनक हो गयी। हाथ पैर ठंडे हो गये, ऊर्ध्व श्वाँस चलने लगी। लोग घबरा गये। चेतना धीरे-धीरे लुप्त होने लगी। अन्तिम बार उन्होने शिवाजी को इशारे से बुलाया। दादाजी के जीवन के अन्तिम बचन सुनने के लिये और लोग भी बिस्तर के पास आगये। उन्होने काँपते हुए स्वर में शिवाजी से बड़े प्रेम से कहा "बेटा शिवा, घबरा मत सभी एक न एक दिन वहाँ जाते है, जहाँ मै जा रहा हूँ। यह मृत्य लोक है। यहाँ कोई अमर होकर नहीं आया है। सभी मरते है, सभी मरेंगे। मरना क्या है? एक नया जीवन पाना है। मै भी नये जीवन की ओर जा रहा हूँ।" शिवाजी की आँखों मे आँसू झलक आया। यह तो आप

जानते ही हैं कि शिवाजी अपने पिता के पास अधिक दिनो तक नहीं रहे। पितृ स्नेह उन्हें दादाजी से ही मिला था। उन्हें उनसे बडी ममता थी। दादाजी अपने शक्ति हीन तथा कॉपते हुए हाथो से शिवाजी के आँसू पोछने की असफल चेष्टा करते हुए बोले, "बेटा, तू बड़ा योग्य है। मुझे विश्वास है कि तू एक न एक दिन अवश्य हम लोगो का नाम अमर करेगा। माता, धरतीमाता तथा गऊ-माता की सदा सेवा करना। अपनी माता की सेवा मे प्राणो तक का उत्सर्ग करना पड़े, तो कर देना। यही सच्चे पुत्र का धर्म है। तुमने अब तक जो कुछ किया, उससे सचमुच मै प्रभावित हूॅ। किन्तु, मै करता क्या? पराधीन हूँ, सुलतान का नमक खाता हूॅ। मुझे क्षमा करो" शिवाजी रोते हुए चरणो पर गिर पड़े। उनके साथियों की आँखो में भी समुद्र उमड़ा चला आरहा था।

दादाजी ने पुनः बोलने का प्रयास किया और कहा—"यह खजाने की ताली लो और शासन संभालो।" अन्य लोगो की ओर संकेत करते हुए कहा—"आज से आप लोग शिवा के अधीन हुए। उसकी आज्ञा वैसे ही मानिएगा जैसी मेरी मानते रहे हैं।" इतना कह दादाजी चुप हो गये। वह एक टक शिवाजी को देख रहे थे। दोनों की आँखो में सावन भादो की झड़ी थी। औरों के भी नेत्र बरस रहे थे। गम्भीर शान्ती छा गई।

एक बार पुनः शीत का दौरा हुआ। हाथ पैर ठंडे हो गये। धीरे-धीरे दम भरते-भरते दादाजी ने दम छोड़ दिया।

००००००

बन्धन टूटा। अब शिवाजी को खुलकर खेलने का मौका मिला। खजाना उनके अधिकार में था। जोरो से शक्ति बढ़ायी जाने लगी। इसी प्रकार साल बीत गया। एक दिन शाहजी ने पिछले साल की वसूली के धन के लिये शिवाजी के पास आदमी भेजा। पर यहाँ रूपया कहाँ था? शिवाजी पहले कुछ सकपकाये, पुनः उन्होंने उस आदमी से बड़े साहस से कहा—"जब से दादाजी का देहान्त हुआ है, तब से यहाँ का खर्चा बहुत बढ़ गया है। वसूली से खर्चा पूरा नहीं होता।" आदमी को आश्चर्य हुआ। विचित्र बात थी। जागीर वही थी। वसूल

भी इस वर्ष पहले से अधिक हुई थी. फिर क्या बात थी कि सारा धन खर्च हो गया? वह बड़ी नम्रता से बोला—"तो महाराज से क्या कहूँगा?" कह देना कि इस समय थोड़ा खर्च बढ़ गया है। ज्योंही रूपया आ जायेगा, मैं स्वयं भेज दूँगा। किसी को आने की आवश्यकता नहीं।

यह समाचार पाते ही शाहजी समझ गये कि शिवा अपने कार्य में लगा है। उन्होंने शिवाजी को समझाना, उससे कुछ कहना व्यर्थ समझा। चुपचाप बीजापुर से कुछ दूर जाकर तंजौर में रहने लगे जिससे शिवाजी के कारण उन्हें सुलतान से कोई झगड़ा न मोल लेना पड़े। जब वह तंजोर में गये तब उनकी पत्नी तुकाबाई तथा दूसरा पुत्र बङ्कोजी भी उनके साथ था।

इधर दादाजी के कथनानुसार सभी लोग शिवाजी की आज्ञा मानते थे तथा उन्हें वसूली का धन देते थे, किन्तु दो सज्जन ऐसे थे जो शिवाजी की अधीनता स्वीकार न कर सके। एक था उनका सौतेला मामा या तुकाबाई का भाई शम्भाजी मोहिते तथा दूसरा था फिरंगोजी नरसाला। फिरंगोजी चाकन नामक दुर्ग का अधिकारी था। यह दुर्ग पूना से उत्तर की ओर पड़ता था। शम्भाजी के अधिकार में पुना के दक्षिण पश्चिम का दुर्ग सूपा था। सौतेला मामा होने के कारण वह शिवाजी से बहुत जलता था। इसीसे उसने वसूली देने से इनकार किया और कहा कि जागीर के मालिक तो शाहजी है। शिवाजी कौन होता है? शाहजी जो कहेगें, मै मानूँगा। यदि शिवाजी सोचे कि मैं बहुत बड़ा शक्तिशाली हूँ और जोर जुलुम करके लोंगो को अपने अधिकार में कर लूँगा, तो उसका यह सोचना उसे आदिलशाह के कोप का भाजक बना देगा। मै जानता हूँ कि शिवाजी की कितनी शक्ति है और वह कितना उत्पात मचा रहा है। इससे वह अपना बुरा करेगा ही. साथ ही साथ अपने पिता का भी अपमान करायेगा।

जब यह समाचार पत्र वाहक ने शिवाजी को दिया, तब उनके क्रोध की सीमा न रही। उनका मन जल उठा। किन्तु, अपनी शक्ति को देखकर उस समय वह चुप रह गये। तरकीब सोचने लगे।

एक दिन,

जब अँधेरी रात थी। तारे आकाश में सो रहे थे। धरती शान्त थी।

हवा मथर गति से बह रही थी। मार्ग सूने हो गये थे। विजन प्रदेश साँय-साँय कर रहा था। तब शिवाजी ने अपने तीन सौ साथियो को एकत्र किया। और कहा "वीरों, थोड़ी देर बाद जब आधी रात हो जायेगी, तब हम सब एक बड़े महत्व के कार्य के लिये चलेंगे। तब तक आप शक्ति की आराधना कीजिये।"

इतने से सैनिक कुछ समझ न सके, फिर भी अपने स्वामी की आज्ञा मान आधी रात की बाट देखने लगे। पल-पल समय कटने लगा। रात्रि और भी गम्भीर हो गयी। ठीक समय आ गया। शिवाजी ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा "मेरे वीर सैनिको, इस समय हम लोगों को सूपा के किले पर चलना है। आज रात में ही किले पर अधिकार करना है। अपनी शक्ति पर भरोसा रखिये। भवानी का आशीर्वाद हमारे साथ है।" जय भवानी के नारे से आकाश गूँज उठा। सेना चल पड़ी, केवल तीन सौ आदमियों की सेना। धरती शान्त सो रही थी। सेना चली जा रही थी।

मध्य रात्रि के बाद सैनिक सूपा पहुँचे। लोग सो रहे थे। तीन सौ सिपाहियों ने किले को घेर लिया। महल के अनेक लोगो को कैद कर लिया गया।

शम्भाजी मोहिते किले के पीछे भागना चाहता था। उसने प्रयास किया, किन्तु विफल। उसके चारों ओर तो मृत्यु खड़ी थी। वह पकड़ा गया। रस्सी जल गयी. पर ऐंठ न गयी। पकड़े जाने पर भी वह दाँत पीसते हुए बोला—"धूर्त...नीच...पापी छिपकर आक्रमण करने में ही अपनी बहादुरी समझता है।"

शिवाजी के सैनिक उस पर एक साथ झपटे। किन्तु उन्होने उन्हें रोकते हुए कहा—"खबरदार यदि मामाजी पर तुम्हारी तलवारें गिरीं। इन्हें किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना ही पूना ले चलो।" इस लूट में शिवाजी के हाथ खजाना भी लगा।

जिन बन्दियों ने शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली, उन्हें उन्होंने अपने पास रख लिया। मामा के साथ भी अच्छा बर्ताव किया। शिवाजी सोचते थे कि मेरे व्यवहारों का कुछ न कुछ प्रभाव तो उन पर पड़ेगा ही, पर कुत्ते की

दुम टेढ़ी की टेढ़ी रही। लाचार होकर अन्त में उन्होंने उसे अपने पिताजी के पास भेज दिया।

सूपा के अधिकार में आते ही शिवाजी का रोब जम गया। लोग उनसे डरने भी लगे। जिन लोगों ने शिवाजी की अधीनता स्वीकार करने में आनाकानी की थी, अब वे भी चुपचाप अधीनता स्वीकार करने लगे। फिरङ्गोजी भी आ मिला। शिवाजी ने उससे कहा, "मुझे भूमि नहीं चाहिए, मुझे तो आपका हृदय चाहिए, मित्रता चाहिए और वह मुझे मिल गयी। अब चाकता के किले का प्रबन्ध आपही कीजिए।" किला फिरङ्गो के ही अधिकार में रहा। उसने अपने प्रान्त का अच्छा प्रबन्ध किया आसपास के गाँव से वसूली भी अच्छी की। राज भक्ति का अच्छा परिचय दिया।

शिवाजी की बढ़ती शक्ति देखकर इन्द्रपुर तथा बरामती के किलेदारों ने भी उनसे झगड़ा मोल लेना उचित नहीं समझा। चुपचाप अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार शिवाजी ने अपने पिता की समस्त जागीर अपने अधिकार में कर ली। अब उनकी दृष्टि आसपास के किलो पर पड़ी। एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के लिये अब आसपास के शक्तिशाली किलो पर भी अधिकार करना आवश्यक था। पूना से दक्षिण १२ मील की दूरी पर एक बड़ा ही शक्तिशाली दुर्ग कोंकण का था इस किले को अधिकार में करना आवश्यक तो था, किन्तु शक्ति कम थी। किया क्या जाय, यदि आक्रमण किया जाय तो सेना की और भी शक्ति कम हो जायगी। किसी प्रकार बिना रक्त पात के यदि काम चल जाता तो अच्छा था। शिवाजी अपने कुछ साथियो को लेकर किले के मुसलमान प्रधान अधिकारी के यहाँ पहुँचे। पहले तो उसने आनाकानी की। तब शिवाजी ने पूछा—तुम इस किले के पीछे अपनी जान क्यों देते हो? क्या यह तुम्हारा है?"

"यह हमारा नही, है सुलतान का। किन्तु मै उसका नमक खाता हूँ।"

"तुम तो सुलतान के प्रति इतने वफादार हो, किन्तु क्या सुलतान तुम्हारे प्रति अच्छे विचार रखता है।" शिवाजी के कहने का ढंग कुछ ऐसा था जैसे वे कोई बड़ा रहस्य जानते हों। किलेदार भी कुछ समय तक शान्त हो गया।

"आपका जीवन यहाँ सुरक्षित नहीं। यह लीजिये अपने बच्चो के लिये।" शिवाजी ने अशर्फियों से भरी थैली उसके सामने की। किलेदार के मन में सोया लोभ जाग उठा। शिवाजी ने पुनः कहा, "बच्चो को लेकर यहाँ से चले जायिए और सुलतान से कह दीजिये कि मैने किले का अच्छा प्रबन्ध कर दिया है।"

किलेदार शिवाजी के झपकी में आ गया। एक धन का लोभ दूसरे अपनी हत्या के षडयन्त्र की ( झूठी ) सूचना के कारण उसने अविलम्ब किला छोड़ दिया। बिना रक्तपात के किला शीघ्र अधिकार में आ गया। आगे चलकर इसी किले का नाम सिंहगढ़ पडा।

सिंहगढ़ से दक्षिण पूर्व की ओर एक दूसरा दृढ़ दुर्ग पुरन्दर का था। जागीर की सीमा पर होने से इसकी स्थिति महत्वपूर्ण थी। यह किला बीजापुर के अधिकार में था। इसका प्रबन्धक एक ब्राह्मण नीलकण्ठ था। पर बड़ा क्रोधी था। इसकी मृत्यु भी दादाजी के मरने के कुछ दिनो बाद ही हो गयी थी। उसका बड़ा लड़का पीलू अब किले का मालिक था। वही वसूली करता था। उसको दो छोटे भाई और थे। तीनों में खट-पट थी। नित्य झगड़े हुआ करते थे। लाचार हो दोनों भाई शिवाजी के शरण मे आये। पहले उन्होंने उन्हें खूब समझाया, किन्तु वे नही माने। अन्त में उन्होंने तीनो को कैद कर लिया। पीलू को छोड़कर अन्य भाइयो के लिये शिवाजी का यह कार्य अच्छा था। दोनों यही चाहते थे।

इन लोगों को कैद करने से पुरन्दर का किला भी शिवाजी के अधिकार में आ गया। बाद में तीनो भाइयो को मुक्त कर दिया गया और उन्हे जागीरें दी गयी। अब ये शिवाजी के भक्त हो गये।

०००००० 

सन्ध्या हो चुकी थी। प्रान्त धीरे-धीरे सूना हो रहा था। जगल से लौटते हुए चरवाहों की आवाज कभी कभी सुनाई पड़ जाती थी। एक बूढ़े के भर्राये स्वर के समान यह सन्ध्या बिल्कुल गम्भीर थी। कालिमा अब बढ़ती चली जा रही थी, रात होने वाली थी। शिवाजी चिन्तन मुद्रा में बैठे थे। मस्तक पर पड़ी

सिकन से पता चल रहा था कि वे किसी गम्भीर समस्या पर विचार कर रहे हैं। उनके आसपास कुछ और भी लोग थे।

"अब हम लोगों की शक्ति तो दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही है, किन्तु खजाना बिल्कुल खाली हो गया है" शिवाजी ने बड़ी गम्भीर मुद्रा में कहा।

"किन्तु हमें क्या करना चाहिये ?" उनके पास बैठे लोगो में से एक बोल उठा।

"यही तो मै सोच रहा हूँ।" उन्होने मुस्कराते हुए कहा। कुछ देर चुप रहने के वाद वे स्वयं बोले—"आज मौलाना अहमद अपनी वसूली का रुपया बीजापुर भेजने वाला है। गाडियो पर लदा हुआ खजाना थाना से कोकण होता हुआ ही जायगा, ऐसी सूचना मुझे मिली। यदि आप ठीक समझे तो उस खजाने पर आक्रमण किया जाय।"

शिवाजी करते तो वही थे, जो वे ठीक समझते थे, किन्तु कभी कभी अपने सहयोगियो से भी राय ले लिया करते थे। इससे उनके मन की बात भी मालूम हो जाती थी। खजाना लूटने के प्रस्ताव का समर्थन सभी ने एक मत से किया और कहा "वह धन जो मुझपर अत्याचार करने में सहायक हो तथा जिसकी सहायता से गऊ और ब्राह्मण की हत्या हो अवश्य लूट लेना चाहिये।" सभी एक मत थे। समय की प्रतिक्षा होने लगी।

पल मिनट और घंटे बितने लगे।

रात का एक पहर बीत गया। शिवाजी और उनके साथियो के अतिरिक्त किसी को भी कुछ खबर नहीं थी। लोग चुपचाप सूपा पहुँचे। सूपा की सेना के चुने हुए सैनिकों को एकत्रै किया जाने लगा। आज और दिनों की भाँति काम नहीं चलेगा। आज तो रक्त-पात निश्चित है। आज तलवार अवश्य चमकेगी। तीन-चार सौ सिपाही चुने गये। मध्य रात्रि के पहले ही सेना पूना के पश्चिम ओर चल पड़ी। आकाश में चाँद मुस्करा रहा था। चाँदनी में सेना चली जा रही थी। घोड़ों की टापों से उड़ी धूल चाँदी की धूल मालूम पड़ रही थी।

लोग घण्टो चलते रहे। एक अजीब मस्ती थी। अजीब उत्साह था, जवानी के खून का उबाल था। कुछ ही समय में लोग भोर के मुँहाने पर पहुँच गये।

पड़ाव पड़ा था। दूर ही से मराठों को दिखायी दिया। उत्साह और भी बढ़ा। शिवाजी आगे आये।

खेमें के चारो ओर कुछ सैनिक पहरा दे रहे थे। भीतर लोग विश्राम कर रहे थे। मराठा सैनिकों ने तलवारें खींच लीं और एक दम टूट पड़ने ही वाले थे कि शिवाजी ने रोका उन्होंने प्रत्येक को चेतावनी देते हुए कहा "देखो, बहादुर सैनिक कभी सोये हुए पर प्रहार नहीं करते। हर एक को मारने के पहले भवानी का नाम लेकर जगाना, संभलने का अवसर देना और तब उस पर हमला करना। युद्ध में भी धर्म का ख्याल रखना। अच्छा आओ" शिवाजी ने अपनी नगी तलवार ऊपर उठाते हुए कहा। आज्ञा पाते ही सैनिक आगे बढ़े और टूट पड़े।

एक बार तलवार खनकी। प्रतिरोध हुआ। किन्तु, मुसलमान सैनिक टिकने वाले कब थे। उन्हें मालूम भी नहीं था कि खजाना लूटा जायगा। किसी प्रकार की भी आशंका नहीं थी। वे बिल्कुल निश्चिन्त हो सो रहे थे। इसी से वे खजाने की रक्षा करने में बिल्कुल असमर्थ हो गये। उनके पास सेना भी कम थी। उन्हें केवल पहाड़ी डाकुओं से भय रहता था। इसी से सेना केवल इतनी थी जिससे पहाड़ी डाकुओं का सामना किया जा सके। शिवाजी के सामने इतनी सेना का टिकना मुश्किल ही नहीं असंभव भी था।

इस खजाने के लूटने से शिवाजी को सम्पत्ति तो मिली, किन्तु सुलतान से खुल्लम-खुल्ला विरोध का भी सूत्रपात हो गया।

००००००

इस लूट से काफी सम्पत्ति मिली। लोग खुश थे। प्रातःकाल से ही मराठे बड़े प्रसन्न दिखायी दे रहे थे। एक समस्या का हल कुछ समय के लिये तो निकल ही आया। शिवाजी ने अब आगे का कार्यक्रम बनाना आरम्भ किया। अचानक उन्हें समाचार मिला कि अबाजी सोनदेव मिलना चाहते हैं। ये भी एक पुराने कारकुन के पुत्र तथा शिवाजी के अच्छे सहयोगी हैं। ऐसे लोगों के लिये उनका दरवाजा आठों पहर खुला था। उसे शीघ्र ही बुलाया गया। दूर

ही से वह बड़ा प्रसन्न दिखायी पड़ रहा था। उसका मस्तक ऊँचा था। छाती फूली हुई थी। बड़े उत्साह से वह चला आ रहा था। अधरों के बीच में अप्रत्यक्ष हँसी खेल रही थी।

आते ही वह शिवाजी के गले से लिपट गया। वह सहयोगी तो था ही साथ ही साथ शिवाजी का गुरु भाई भी था। उसे भी दादाजी कोणदेव ने शिक्षा दी थी। शिवाजी ने वैसी ही स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ पूछा "कहो, क्या समाचार है? मातृभूमि के लिये क्या कर रहे हो?"

"बहुत बडा काम कर चुका हूँ।" उसने हँसते हुए कहा, सीना फूल-सा फूला था। आँखो से महत्वाकाक्षा झलक रही थी।

"शाबाश, बोलो मेरे बहादुर साथी क्या समाचार है।" पीठ ठोकते हुए शिवाजी ने कहा।

"अब कल्याण का किला आपके अधिकार में है। इसके आसपास के प्रदेश के आप स्वामी है। मौलाना अहमद को मै बन्दी बनाकर लाया हूँ। कुछ सम्पत्ति भी मिली है।" इतनी बाते पता नहीं उसने कितनी जल्दी कही। शिवाजी ने उसे पुनः गले से लगा लिया और बोले, "शाबाश तुम्ही लोगो के बल पर तो जन्मभूमि के मुक्त होने की आशा है।"

शिवाजी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होने आबाजी सोनदेव के साहस तथा पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की और उसी समय उसे उस प्रान्त का शासक बना दिया। कल्याण का अब वह दुर्गाध्यक्ष था। इसके बाद उन्होंने मौलाना अहमद को बुलवाया। मौलाना एक अपराधी की भाँति आकर सामने खड़ा हो गया। इस समय शिवाजी के कई सहयोगी भी उपस्थिति थे। मौलाना शान्त था। वह कभी धरती की ओर देखता था, कभी आकाश की ओर और कभी आबाजी सोनदेव की ओर।

शिवाजी ने बड़ी गम्भीरता से कहा, "मौलाना, आप मेरे पिता के उम्र के हैं। यह अच्छा नही लगता कि आप खड़े रहे और मै बैठा रहूँ। कृपाकर आप भी आसन ग्रहण कीजिये" कुछ दूरी पर दाहिनी ओर के रिक्त स्थान की ओर उन्होंने संकेत किया। मौलाना कुछ सकपकाये। शिवाजी ने पुनः कहा, "घब-

राने की कोई बात नहीं है। यहाँ आप पूर्ण मुक्त हैं जैसे आकाश में उड़ने वाला पक्षी।" मौलाना अपने स्थान पर बैठ गये। ऐसा लगा मानो उसके दिल की धड़कन कुछ कम हो गयी।

शिवाजी ने आबाजी सोनदेव से पुनः मुस्कराते हुए पूछा "और क्या लाये हो कल्याण से?"

"आठ दस जवाहिरातों तथा बहुमूल्य सामानों से भरी हुई बड़ी-बड़ी सन्दूकें।"

एक एक सन्दूक लाने की आज्ञा दी गयी। कई लोग साथ ही नीचे गये। बैठे लोगों में जिज्ञासा थी, कुतूहल था। सभी देखना चाहते थे कि कितना सामान निकलता है। अचानक आदमी घबराये हुए आये तथा दूर ही से बोल उठे, "महाराज वहाँ तो एक बड़ी खूबसूरत औरत बैठी है।"

'खूबसूरत औरत...' सभा के विस्मय का ठिकाना न रहा। शिवाजी की तो आँखें लाल हो गयी जैसे उन्हें क्रोध आ गया हो। सभी को आश्चर्य था। केवल मौलाना की आकृति से विचित्र भाव टपक रहा था, जिसकी कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती।

शिवाजी ने अपने को बहुत कुछ रोकते हुए और बड़ी शान्ति से कहा "अच्छा उस औरत को बुला लाओ।"

आश्चर्य अपनी पराकाष्ठा पर था। लोग पत्थर की मूर्ति के समान बैठे थे। बिल्कुल सन्नाटा था। ऐसी शान्ति आपने तो कभी नहीं देखी होगी।

इधर जब औरत ने शिवाजी के सामने उपस्थित होने की आज्ञा सुनी तब वह अवाक् रह गयी। उसके प्राण हवा हो गये, किन्तु आज्ञा थी। विवसता थी। चलना जरूरी था। वह धीरे-धीरे—बड़ी धीरे-धीरे खोई-सी चली मानो वह शूली पर चढ़ने जा रही हो। आपत्ति में याद आनेवाला भगवान उसे याद आ रहा था।

वह काँपती हुई शिवाजी के सामने उपस्थित हुई। उसका सौन्दर्य देखकर सारी सभा सकपका गयी। शिवाजी भी बोल उठे—"धन्य हो भगवान् तुमने यह नारी क्या सुन्दरता की पुतली ही बना दी है। काश, मेरी माँ भी इतनी सुन्दर होती तो मै भी सुन्दर होता। कुछ समय तक चुप रहने के बाद

वह पुनः बोले, "तुम्हें यहाँ कौन ले आया ?" वह चुप थी। बड़ी धीरे से बोली, "आपके आदमियों ने..."

"मेरे आदमियों ने...बताओ कौन हैं वे आदमी ?" शिवाजी को जैसे आग लग गयी। मारे क्रोध के उनका हाथ बगल में बँधी तलवार पर गया। कई बार घूरते हुए उन्होंने आबाजी सोनदेव की ओर देखा भी। अन्त में नारी बोली, "मैं उन्हें बता नहीं सकती।"

"मेरे आदमी तुम्हें ले आये और तुम उन्हें बता भी नहीं सकती, अजीब बात है।"

बात यह है कि जब आपके आदमी मेरे महल में घुसे तब मैं घबरा गयी। मैंने अपने को खतरे में समझा। जान बचाने के लिये मै एक सन्दूक में जा छिपी। ऊपर से ढक्कन बन्द कर लिया। जब लूट का सामान आपके आदमी लाने लगे तब मै भी यहाँ तक स्वयं बन्दी हो चली आयी।" इतना वह पता नहीं कैसे बोल गयी। चुपचाप धरती की ओर देखती रही मानो वह गड़ी जा रही हो।

"मेरे आदमियो से अनजान में बहुत बडी भूल हो गयी, नारी। इसके लिये तुम मुझे क्षमा कर दो। अच्छा बताओ तुम कहाँ जाना चाहती हो, तुम्हारा परिचय क्या है ?"

"मै कल्याण के किलेदार की पुत्रबधू हूँ।" उसने दबे जबान से कहा।

"तुम मौलाना की पुत्रबधू हो...क्यो मौलाना।" शिवाजी ने आश्चर्य से मौलाना की ओर संकेत करके पूछा। उसने सिर हिलाकर स्वीकृत दी।

"तब तो मुझसे बहुत बड़ी भूल हुई। मौलाना मुझे क्षमा करो। हम मराठा जैसे अपने घर की बहू बेटी की इज्जत करते है, वैसे ही दूसरों की बहू बेटी को भी समझते है। अच्छा.... हमारे सैनिक आपको बीजापुर तक सुरक्षित पहुँचा देंगे। आप चले जायिए।"

ऐसे सद्व्यवहार की कल्पना भी मौलाना ने अपने जीवन में कभी नहीं की थी। वह नारी भी पता नहीं क्या-क्या सोचती, प्रसन्न चित्त बीजापुर की ओर चली।

उसके चले जाने के बाद शिवाजी ने अपने सभी साथी, सहयोगी और सैनिको से कहा, "मित्रों आज का यह काण्ड अनजान में हो जानेवाला एक भयानक काण्ड है। हमें ऐसी घटना से बचना चाहिए। हमें दूसरे के घर की महिला का उतना ही सम्मान करना चाहिए जितना सम्मान हम अपने घर की महिलाओं का करते हैं। दूसरे के घर की बहू बेटी और माता को अपने घर की बहू बेटी और माता के समान समझना चाहिए। यही हिन्दू धर्म है। यही मेरा कर्त्तव्य है।"

प्रसन्नता तथा ग्लानि के मिश्रित वातावरण में सभा समाप्त हुई।

———

४

---

# बीजापुर से विरोध

थाना के खजाने की लूट का समाचार बीजापुर पहुँचा। सुनते ही सुलतान आग बबूला हो गया। हमारे टुकडो पर जीने वाले की यह मजाल कि वह हमारे खिलाफ बगावत करे! उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। वह शिवाजी को दबाने की तरकीब सोचने लगा। इसी बीच मौलाना अहमद भी बीजापुर आगया। उसके क्रोध की ज्वाला में घी पड़ गया। उसने मौलाना को फटकारते हुए कहा—"खजाना लुट गया। आबरू चली गयी। और तुम जीते जी यहाँ लौट आये। लानत है तुम्हारी जिन्दगी पर...चले जाओ हमारी आँख के सामने से।"

मौलाना क्या कहता? वह एक पराजित सैनिक की भाति ग्लानि और चिन्ता से सिर नीचा किये वहाँ से हट गया।

मौलाना खुद तो न कह सका, किन्तु उसने कल्याण के छीन जाने का समाचार सुलतान के पास भेजा। इस समाचार से सुलतान को ही चिन्ता नही हुई, दरबारियो में भी काना फूसी होने लगी। शिवाजी की शक्ति वर्षा की नदी के समान बढ़ती चली जा रही थी। उसे रोकना कोई हँसी खेल नही था। सुलतान ने दूसरे दिन सन्ध्या के समय अपने विश्वासपात्र दरबारियों तथा सरदारो को बुलाया।

संध्या हो चली थी। सूरज अभी डूबा नहीं था। महल के ऊपरी भाग में चमकती हुई हल्की धूप दिखाई पड़ रही थी। सुलतान का दरबारें खास में बैठने का अभी समय नहीं हुआ था, फिर भी लोग चले आरहे थे। क्या होगा

इसका अनुमान सभी कर चुके थे। सुलतान ठीक समय से दरबार में उपस्थित हुआ। आज उसके आकृति पर वैसी निश्चिन्तता नहीं थी जैसी नित्य देखी जाती थी। आज वह कुछ परेशान दिखाई दे रहा था। उसके आते ही लोग उठकर खड़े हो गये।

दरबार की परम्परा के अनुसार सुलतान नित्य एक बार चारो ओर घुम कर लोगो को देख लिया करता था। लोगों के बैठने का स्थान भी निश्चित रहता था। जब कोई स्थान रिक्त दिखाई देता तो कभी-कभी सुलतान उस व्यक्ति की अनुपस्थिति का कारण भी पूछता। आज उसने यह सब कुछ नहीं किया। आते ही मंच पर बैठा और फिर बड़ी परेशानी से बोलने के लिये खडा हुआ। उसने दरबारियो को सम्बोधित करते हुए कहाँ "प्रिय मित्रो, आज आपसे एक बड़े महत्वपूर्ण विषय पर सलाह लेनी है। आप जानते हैं कि शाहजी मेरा एक जागीरदार तथा वीर सैनिक है। मेरी रोटी पर पलता है। आज उसके लड़के शिवाजी ने हमारे विरुद्ध बग़ावत शुरु करदी है। अब तक उसने मेरे बहुत से किलो को चुपके चुपके अपने अधिकार में कर लिया और मुझे भुलावे में रखा। अभी कुछ ही दिन हुए उसने थाना का खजाना लूटा और कल्याण का किला मौलाना अहमद से छीन लिया। अब सूचना हमें मिली है कि मेरे विरुद्ध बहुत बड़ी बगावत शुरू हो रही है। यह तो आप जानते ही है कि शाहजी से मेरे सुलूक कैसे है। जिसके बाप ने हमारे राज्य मे रहकर अच्छी उन्नति की उसके बेटे का यह व्यवहार मै कभी सहन नही कर सकता। बताइए क्या किया जाय?"

"जहाँपनाह ऐसा आदमी तो तोप से उड़ा देने के काबिल है। हमें शीघ्र ही सेना लेकर शिवाजी का मुकाबला करना चाहिए।" दरबारियों में से एक ने बड़े अदब के साथ उठकर कहा।

ठीक पता नहीं चल रहा है कि यह आदमी कौन हैं, लेकिन उसकी दाढ़ी में कुछ सफेदी आगयी है। आकृति पर झुर्रियाँ भी दिखाई पड़ रही हैं। पुराना दरबारी आदमी मालूम पड़ता है। बड़ी अदब के साथ उसने बोलना आरम्भ किया "जहाँपनाह, शिवाजी पर चढ़ाई करना ठीक नहीं। इस समय उसकी

शक्ति बढ़ती जारही है। बाढ़ की नदी में बाँध बनाना मूर्खता है। अच्छा हो किसी दूसरी तरकीब से उसे परास्त किया जाय।......"

"आखिर वह तरकीब क्या है?" सुलतान ने झुंझलाते हुए कहा। "जहाँ-पनाह, मैं वही तो बता रहा हूँ। मेरे ख्याल से सबसे अच्छी तरकीब यह है कि शाहजी को बन्दी बनाकर बीजापुर के किले में रखा जाय और शिवाजी को पत्र लिखा जाय कि जब तक वह अपने जीते हुए किले वापस न कर देगा तब तक उसके पिता को छोड़ा नही जायगा।"

यह राय सबको अच्छी लगी। बुड्ढे की बात मान ली गयी, पर शाहजी को बन्दी कैसे बनाया जाय? यह एक समस्या थी। बिल्ली के गले में घंन्टी बाँधेगा कौन? इसका कोई उपाय नहीं दिखायी दिया। इस समस्या का हल सुलतान ने स्वयं करने का विचार किया। सभा आशा और उत्साह के वातावरण में समाप्त हुई।

इस समय अँधेरा हो गया था। आज चन्द्रमा देर से निकलेगा। बन प्रदेश सुनसान हो चला। धरती गहरे अंधकार की चादर ओढ़ चुपचाप सोने लगी। लोगों के चले जाने के बाद सुलतान ने पहले सोचा कि शाहजी को सेना भेजकर गिरफ्तार किया जाय। किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं, इससे शाहजी भी विरोध करेंगे और शिवाजी भी उफन पड़ेगा। दोनों ओर शक्ति लगानी पड़ेगी। काम कठिन हो जायगा। इसलिए अच्छा होता यदि बाजी घोरपड़े को पत्र लिखा जाय क्योंकि यही एक ऐसा आदमी है जो शाहजी से बहुत जलता है तथा उसका विरोध कर सकता है। थोड़े से प्रलोभन से काम चल जायगा।

ऐसा ही हुआ। सुलतान ने बाजी घोरपड़े को शाहजी को गिरफ्तार करने के लिए पत्र लिखा। पत्र में उसे प्रलोभन दिया गया था।

००००००

प्रायःकाल से ही तैयारी हो रही थी। आज उत्सव का दिन था। महल अच्छी तरह सजाया जा रहा था। फूल-पत्ती और झंडियाँ टाँगी जा रही थी। बड़ी चहल-पहल थी। उत्सव का रहस्य अब तक बाजी घोरपड़े के अतिरिक्त और

कोई भी नहीं जानता था। आज वह बड़ा ही प्रसन्न दिखाई दे रहा था। उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। पता नही क्या सोचता था, उसे देखने से ऐसा लग रहा था, मानो आज ही उसके सपने साकार होंगे, आज ही उसकी आकांक्षा पूरी होगी, उसे तीनो लोक का राज मिल जायगा। वह बड़े उत्साह के साथ तैयारी में लगा था। काफी निमंत्रण बाटा गया था। अधिक लोगो के आने की सम्भावना थी। शाहजी भी निमंत्रित थे।

निश्चित समय पर आयोजन प्रारम्भ हुआ। कुछ लोग भोज के लिए विशेष रूप से आमंत्रित थे, उनकी संख्या अधिक न थी। इस उत्सव में शाहजी भी आये थे। उन्हें भी भोज का निमंत्रण था, किन्तु वे शिष्टता बस उत्सव में ही बैठे और कुछ समय के बाद उठकर चलने लगे। एक दरबारी व्यक्ति ने रोका। बड़े सम्मान के साथ भोजन कराने लिवा गया। मार्ग में ही उसने कहा कि भोजन के कमरे में जाने के पहले ही अस्त्र-शस्त्र अलग रख देने की व्यवस्था है। ऐसा सभी लोगो ने किया है। शाहजी का माथा ठनका। उन्होंने ऐसा भोज अपने जीवन में कभी नहीं देखा था जिसमें हथियार अलग रखा दिया जाता हो। फिर भी उन्होने वैसा ही किया जैसा उनसे कहा गया। भीतर ले जाकर उन्हें सबसे अलग एक कमरे में बैठाया गया। वहाँ चार-छह व्यक्ति पहले से ही बैठे थे। बहुमूल्य धातुओं के पात्रो में भोज्य पदार्थ रखा था। शाहजी को बैठा दिया गया। वे अब कुछ घबरा रहे थे। किन्तु करते क्या लाचार थे। वीर सैनिक का सदा साथ देने वाली तलवार भी उनके साथ न थी। अन्त में घोरपड़े मुस्कराता हुआ आया और बड़े प्रसन्नता से बोला "कहिए शाहजी, क्या हाल-चाल है?" गहरा कटाक्ष था उसकी वाणी में।

"सब भवानी की कृपा है।" बनावटी प्रसन्नता दिखाते हुए शाहजी ने कहा। भोजन आरम्भ हुआ। शाहजी बहुत जल्दी ही खाकर बैठ गये। घोरपड़े ने व्यंग करते हुए कहा "जितना अन्न मिले खा लेना चाहिए। पता नहीं वह फिर मिलेगा या नहीं।"

"भविष्य की चिन्ता एक वीर मराठा नहीं करता, घोरपड़े!"

"तो क्या वह वर्तमान की चिन्ता में व्यस्त रहता है?"

"नहीं वह वर्तमान की सभी परिस्थितियों का सामना साहस और बहादुरी के साथ करता है। यह उसका जन्मजात स्वभाव है।"

"तो दिखाइए अपना साहस और बहादुरी इस समय आप बन्दी है" घोरपड़े ने ललकारते हुए कहा।

"मै...?...बन्दी" शाहजी के विस्मय का ठिकाना न रहा। जिस आशंका से वह घबरा रहे थे वैसा ही हुआ। उन्होंने ललकारते हुए कहा "घोरपड़े तुमने मराठा का काम नहीं किया है। इस समय मेरी तलवार भी पास नही है। मैं जकड़ा गया हूँ। अगर तुममें जरा भी मराठा रक्त का सम्मान होता तो ऐसा न करते। यदि अब भी तुम मेरी तलवार मुझे दे दो तो मैं देखूँ कि तुम्हारे सैनिकों की बाहो में कितना बल है।

"हॉ-हाँ-हाँ..." वह जोर से हँस पड़ा।

"हँस लो जितना हँसना हो, पर याद रखो। शेर पिंजड़े में बन्द होने के बाद भी शेर ही रहेगा। गीदड़ उसकी समानता नहीं कर सकता।"

"शेर...हॉ-हॉ-हाँ" वह और जोर से हँसा। उसकी हँसी बड़ी भयानक थी। शाहजी दाँत पीसकर रह गये।

यह घटना ६ अगस्त सन् १६४८ की है।

००००००

शाहजी बन्दी बनाकर आदिलशाह के दरबार में लाये गये। आज दरबार खचाखच भरा था। सबसे वीर, महान् योद्धा पराक्रमी और वफादार कर्मचारी बन्दी हो आदिलशाह के सामने खड़ा था। दरबारी लोग आपस में मुँह में मुँह डालकर कुछ बात कर लिया करते थे। कुछ विशेष आवाज सुनायी नहीं पड़ती थी। कभी-कभी बाजी घोरपड़े के हँसी का टहाका लोगों को सुनायी पड़ जाता था। कुतूहल तथा जिज्ञासा पूर्ण शान्ति थी। सुलतान ने शाहजी से क्रोध भरे स्वर में पूछा "क्यों शाहजी आप अपनी हरकत से बाज नही आयेंगे।"

"जहाँपनाह, शिवाजी के कार्यों से मै बिल्कुल अपरचित हूँ।" "यह तो कभी नहीं हो सकता जहाँपनाह कि पुत्र पिता का रुख देखे बिना ही कुछ कर

डाले। शिवाजी के कार्यों में शाहजी का हाथ नहीं—यह कैसे विश्वास किया जा सकता है।" घोरपड़े ने आग में घी छोड़ते हुए कहा।

"यह तो ठीक ही है। शिवाजी ने इन्हीं के इशारे पर बगावत की है।" सुलतान ने कहा।

किन्तु जहाँपनाह आप मेरी स्थिति को ठीक समझ नहीं रहे हैं। शिवाजी हमारी बड़ी पत्नी का लड़का है। वह सदा हमसे अलग रहता है। और अपने मन की बात करता है। उसकी कार्यवाही से मैं बिल्कुल अपरिचित हूँ। मेरा कोई दोष नही है। आप भ्रम में है।"

"मैं इधर-उधर की कुछ भी बात नहीं जानता। इस समय तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम शिवाजी को रोक दो और हमारे राज्य का जितना भाग तथा जितने किलों पर शिवाजी ने अधिकार किया है उन्हें लौटा दो, नहीं तो तुम्हारे साथ अच्छा न होगा"—सुलतान ने गरजते हुए कहा।

"किन्तु जहाँपनाह आप बिल्कुल विश्वास मानिये कि शिवाजी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आप जैसे भी चाहे उसका दमन कर सकते है।"

"तुम्हारा पुत्र और तुम्हारे अधिकार में न रहे? तुम झूठ बोलते हो शाहजी। मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी।"

सुलतान ने शाहजी की बात नही मानी। उसने उनसे कहा कि तुम शीघ्र ही शिवाजी को पत्र लिखकर यहाँ बुलाओ, नही तो तुम्हें जीवित दीवार में चुन दिया जायगा। शाहजी ने पुनः कहा—जहाँपनाह मेरे पत्र का उस पर कोई प्रभाव नही होगा। वह मेरे अधिकार में बिल्कुल नहीं है। सुलतान ने इसे स्वीकार नहीं किया। उसने उन्हे कारागार में डाल दिया। एक मौका सोचने का और दिया गया।

इस बीच घोरपड़े ने खूब खोवा कूटा। शाहजी के प्रति सुलतान की घृणा बढ़ती गयी। जब उसने काम बनता नहीं देखा तब शाहजी को जीवित दीवार में चुन देने का हुक्म दिया। पूरे बीजापुर में सनसनी फैल गई।

दूसरे दिन शाहजी एक छोटी कोठरी में चुने जाने लगे। ईंट पर ईंट रखी जाने लगी। सुलतान का बफादार सहयोगी उन्हीं के सामने चुना जा रहा था।

कुछ लोगों को दया आयी। शाहजी की सेवा और ईमानदारी से मुसलमान कर्मचारी भी खुश रहा करते थे, वे उन्हें अपना साथी समझते थे। आज उनका साथी उन्हें छोड़कर चला जा रहा था। दीवार कमर तक उठ आयी थी। शाहजी हाथ जोड़कर सबसे अन्तिम बिदा ले रहे थे। प्रत्येक चुनी जाने वाली ईंट के साथ ही साथ सुलतान चिल्ला-चिल्लाकर कहता था—"शाहजी अपनी जान बचाओ। अपना गुनाह मंजूर करो। अन्त में ईंट गले तक चुन दी गयी। केवल मुँह खाली था।

इस घटना से सभी दुखी थे। सुलतान भी शाहजी की जान लेना नहीं चाहता था। यदि किसी को शाहजी के प्राणों की भूख थी तो वह था बाजी घोरपड़े। राजसुख भी कितना मादक होता है। बड़े से बड़े जघन्य अपराध केवल राज्य के लिए किये जाते है। भाई पर भाई की तलवार इसी के लिए उठती है। महा विनाश तथा भयानक अपराधों का यह कारण होता है। इसी राजसुख ने बाजी घोरपड़े को यह सब करने को बाध्य किया। यद्यपि वह मराठा था। शाहजी का जातीय था।

लाचार होकर शाहजी ने अपनी स्थित बताते हुए शिवाजी को पत्र लिखा।

००००००

शिवाजी को पत्र मिला। पिता को संकट में देखकर वे घबरा गये। कितना कठिन समय था। एक ओर पिता सकट में थे। दूसरी ओर धरती माता संकट में थी। सचमुच यह उनके धैर्य की परीक्षा थी। किन्तु वे क्या करें, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यदि वह आत्मसमर्पण कर दें, तो पिता की रक्षा हो जायगी। किन्तु अब तक के किये कराये कार्य पर पानी फिर जायगा। और यह भी हो सकता है कि आत्मसमर्पण करने के बाद भी मेरे साथ पिताजी बन्दी रहें और मार डाले जाँय। वे बड़े असमञ्जस में थे। सोच रहे थे। कोई ऐसा उपाय निकाला जाय, जिससे साँप मरे और लाठी भी न टूटे।

महिलाओं ने कभी-कभी पुरुषों के कार्यों में बड़ा सहयोग दिया है। जब मनुष्य घबरा जाता है। उसके धैर्य के पग लड़खड़ाने लगते हैं तब उत्साह

संतोष, विवेक और साहस की एक हल्की रेखा दिखाने वाली कभी-कभी महिलायें होती हैं। शिवाजी जब घबराये हुए थे, तब उनकी स्त्री सुईबाई ने बड़ी योग्यता का कार्य किया। उन्होंने शिवाजी से कहा, "आदिलशाह के दरबार में आत्मसमर्पण करने से अच्छा हो कि आप मुगल सम्राट शाहजहाँ से मित्रता करें। यदि उसने मित्रता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो सब काम बन जायगा। मुगल सम्राट के मित्र या उसके सहयोगी को प्राण-दण्ड देने का साहस बीजापुर का सुलतान कभी भी नहीं कर सकता। इसी बीच सुलतान को भी पत्र लिखें कि मैं आप के यहाँ उपस्थित होने के सम्बन्ध में विचार कर रहा हूँ।"

शिवाजी ने शाहजहाँ के दक्षिण के शासनकर्ता मुरादबक्स के पास मित्रता का प्रस्ताव भेजा। बड़ी आशा और विश्वास के साथ पत्र लिखा गया था। मित्रता की शर्त भी साधारण थी। शिवाजी ने लिखा था कि यदि बादशाह पिताजी के पुराने अपराध क्षमा कर दें, पिताजी और उनके लड़को की रक्षा का भार ले तथा सदा के लिये एक अभय पत्र दे दे, तो मैं बादशाह की नौकरी स्वीकार कर लूँगा और मुगल सेना में भरती हो जाऊँगा।

दिन, रात और महीने बीतते गये। उत्तर की प्रतीक्षा हद से ज्यादा की गयी, किन्तु कोई उत्तर नहीं आया। भयङ्कर स्थिति थी। एक ओर दीवार चुनी जाने वाली थी, प्राणो का अन्त निकट था। पिता पुत्र के उत्तर की प्रतीक्षा में था और पुत्र मुरादबक्स के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। मुरादबक्स अपने पिता शाहजहाँ का रुख देख रहा था। वह जानता था कि शाहजी ने पिताजी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया है। इसी से उसने शिवाजी के पत्रवाहक राघव-पंडित को शाहजहाँ के पास भेजा।

पत्र देखते ही शाहजहाँ को शाहजी के पिछले कार्यों का स्मरण हो आया। ऐसे आदमी को मित्र बनाकर जिन्दा रखने से शत्रु बनाकर मार डालना ही अच्छा है, किन्तु उसने सोचा कि इस समय दक्षिण में मुसलमानी राज्यों की हालत अच्छी नहीं है। यदि शिवाजी और शाहजी को मिला लिया जाय, तो उनकी सहायता से इन राज्यों को दबाकर साम्राज्य की सीमा बढ़ाई जा सकती है। अतएव उसने शाहजी को इस आशय का पत्र लिखा—"प्रिय शाहजी,

तुम्हारे पुत्र शिवाजी भोसले का प्रतिनिधि राघव पण्डित एक पत्र लेकर मुझसे मिला। पत्र में मेरे प्रति जो अपार श्रद्धा तथा विश्वास व्यक्त किया गया है, उसके लिये हम आभारी हैं। हम तुम्हें अपनी सद्भावना के लिये विश्वास दिलाते हैं और आशा करते हैं कि तुम स्वच्छ हृदय से हमारे सभी कार्यों में सहायक होगे। तुम्हारे सारे अपराध क्षमा कर दिये गये। आज से तुम मुगल साम्राज्य के कर्मचारी हुए। घबराहट से मुक्त हो। तुम्हारी सेवा के अधिकार का प्रमाण पत्र तथा हमारी सद्भावना की स्मृति में सम्मानित पोशाक एक विश्वासपात्र कर्मचारी द्वारा भेजी जा रही है। पुत्र शम्भाजी और दूसरे लोगों को भी सरकारी नौकरियाँ मिलेंगी। तुम्हारे पूरे परिवार की रक्षा का भार मुगल सरकार अपने ऊपर लेती है।" पत्र पर मुरादबक्स की मुहर[1] थी।"

बीजापुर में शाहजी को यह पत्र मिला। यह सबकी चर्चा का विषय बन गया। आदिलशाह सबसे अधिक परेशान हुआ। अब यदि शाहजी को मारता है तो एक मुगल सरदार को मारता है और मुगल सरकार से विरोध लेता है और यदि छोड़ देता है तो शिवाजी और भी तेजी से उत्पात मचाना आरम्भ कर देते है। वह कुछ समझ नही पा रहा था। उसकी गति साँप छछुन्दर की गति थी। शाहजी के मित्र मुरार जयदेव और खवुल्लाखाँ ने सुलतान को समझाया और शाहजहाँ का रुख स्पष्ट किया। लाचार होकर उन्हे छोड़ देना पड़ा।

शाहजहाँ ने शिवाजी को भी इस आशय का पत्र लिखा कि तुम्हारा पत्र राघव पण्डित द्वारा मिला। मै अपनी हार्दिक मित्रता के पवित्र भावों को प्रदर्शित करता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि सदा तुम्हारे प्रति उदार व्यवहार करूँगा। जब स्वयं शाही खेमे में आऊँगा तो बहुत-सी बातें सहानुभूति पूर्वक निश्चित कर ली जायगी। तुम्हारे पिताजी को भी पत्र लिख दिया गया है।

शिवाजी इस पत्र से बड़े प्रसन्न हुए। सुईबाई सबसे अधिक खुश थी। उनका निशाना अचूक था।

---

1. History of the Maratha people, vol I page 146 Appendix A

शाहजी मुक्त हो गये। चुनी हुई दीवार की ईंटें गिरायी गयीं, किन्तु वे बीजापुर के बाहर नहीं जा सकते थे। अब भी उन पर नियंत्रण था। पत्ती के पंख तो खुले, किन्तु आकाश अब भी दूर था।

बीजापुर में शाहजी नजरबन्द थे। यह जीवन उनके लिये सुखकर नहीं था। किसी प्रकार दिन बीतता था। सन्ध्या होती थी। समय की प्रतीक्षा थी। कब समय मिले और पत्ती उड़े। इन दिनों—सन् १६५० से १६५५ तक शिवाजी भी शान्त थे। पाँच वर्ष में उन्होंने कुछ नहीं किया। वे सोचते थे कि यदि मुझसे कुछ भी बीजापुर सरकार के विरुद्ध हो जायगा, तो उसका दण्ड मेरे पिताजी को ही भोगना पड़ेगा। बात ठीक भी थी।

शाहजी के गिरफ्तार हो जाने के बाद से ही कर्नाटक का शासनसूत्र ढीला हो गया था। प्रजा में अशांति थी। विद्रोह की चिनगारी धीरे-धीरे सुलगने लगी थी। कारण यह था कि शाहजी से कर्नाटक की प्रजा बहुत प्रसन्न थी। उनका व्यवहार अच्छा था। इसके अतिरिक्त बाजी घोरपड़े की नीचता भी लोगों को बहुत बुरी लगी। शासन में उच्छृङ्खलता बढ़ी। इस समय कर्नाटक के विद्रोहियों में दो प्रकार के लोग थे। एक तो वे जो शाहजी के व्यक्तित्व से अधिक प्रभावित थे तथा धोखे से उनका पकड़ा जाना उन्हें बहुत बुरा लगा था। दूसरे वे जो इस अवसर का लाभ उठाकर लूट खसोट कर रहे थे। इस दूसरे प्रकार के लोगों की संख्या पहले प्रकार के लोगों से बहुत अधिक थी।

उत्पात की सूचना सुलतान को बहुत पहले ही मिल गयी थी। वह स्वयं भी जानता था कि कैद करने के बाद कर्नाटक में शान्ति न रह सकेगी। आशंका ठीक निकली। जमींदार और जागीरदार केवल अपनी प्रधानता तथा शान के लिये आपस में कटे-मरे जा रहे थे। जन-जीवन सङ्कट में था। सुलतान ने कई शासक वहाँ नियुक्त किये। किसी को सफलता न मिली। विद्रोह बढ़ता ही गया, लपटें ऊँची उठती गयीं। अन्त में वह लाचार हो गया। विवश हो उसने शाहजी को बुलाया। अचानक सुलतान के समक्ष उपस्थित होने के समाचार से शाहजी को थोड़ा विस्मय हुआ, किन्तु घबराये नही। यद्यपि सुलतान का कोई निमन्त्रण किसी रहस्य से खाली नही होता था। इसे सब जानते थे।

निश्चित समय पर शाहजी सुलतान से मिले। इस समय सुलतान के पास आपसी आदमियों के अतिरिक्त और कोई नहीं था। वह स्वभाव से ही गम्भीर था, आज और भी गम्भीर दिखाई दे रहा था। शाहजी के उचित अभिवादन के बाद बातचीत आरम्भ हुई।

सुलतान बड़ी रुक्षता से बोला "आपको मालूम ही होगा कि आपके यहाँ आने के बाद से ही कर्नाटक में उत्पात चल रहा है।"

"मै जानता तो नहीं, पर हो सकता है।" शाहजी की मुद्रा स्वाभाविक ही थी "हो सकता है ?···हूँ" रुखाई और अधिक थी। उसने आगे कहा "जो कुछ भी हो इसे आपको ही शान्त करना पड़ेगा। यह खोवा किसने कूटा है ? मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ।"

"जो आज्ञा...अवश्य पालन करूँगा। अपनी बात भर ही तो कह सकता हूँ। आप समझे या न समझे। आपके दिमाग को बदलने की मुझमें शक्ति नही।"

सुलतान की आँखो में लाली आयी। वह तड़पा "क्या कहते हो शाहजी" "ठीक कहता हूँ सुलतान।"

"अच्छा तो अब आज्ञा दीजिये।" शाहजी चलने लगे। सुलतान ने उन्हें जाने से रोका और कहा, "देखो बाजी घोरपड़े से बदला लेने का विचार मत करना। नहीं तो बीजापुर की समूची सेना तुम्हें कुचल डालेगी।"

"इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ।" शाहजी ने हँसते हुए कहा।

सुलतान कुछ समझ न सका। शाहजी मन ही मन कुढ़ते चले गये।

oooooo

आज्ञा का शीघ्र पालन हुआ। शाहजी कर्नाटक की ओर चले। मुक्त पक्षी को आकाश भी मिला, किन्तु धर्म और कर्त्तव्य के बन्धन में वह अब भी बँधा था। घोरपड़े से बदला लेने की भावना रह-रह जाग उठती थी, किन्तु शाहजी मन मसोस कर रह जाते थे। उनका घोरपड़े से खुल्लम खुल्ला विरोध करना बीजा-पुर से विरोध करना था। लाचार होकर उन्होने प्रिय पुत्र शिवाजी को एक पत्र

लिखा। पत्र*क्क उनका हृदय था, उनकी चीखती हुई आत्मा थी। पत्र कुछ ऐसा ही था।

प्रिय पुत्र,

भवानी की कृपा से सदा प्रसन्न रहो।

तुम्हारे प्रयत्नों के कारण आज मैं संसार की दृष्टि में मुक्त हूँ। कर्नाटक की ओर पुनः चल पड़ा हूँ। बन्धन ढीले हो गये हैं, किन्तु अब भी बँधा हूँ। क्योंकि गुलामी का अन्न खाता हूँ। नौकरी हमारी जीविका है। किन्तु ···? तुम बन्धन हीन हो, तुम्हारे श्वासों में स्वतंत्र वायु का प्रकंम्पन है। तुम स्वतंत्र रूप से सोच सकते हो। बेटा, आज मैं अपने हृदय की बात तुमसे कहना चाहता हूँ। यह एक ऐसी बात है जिससे मुझे अत्यधिक चोट पहुँची है। भगवान करे ऐसी बात, जैसी मैं अभी कहने जा रहा हूँ, फिर कभी किसी से कहने का अवसर न मिले।

तुम बाजी घोरपड़े को तो जानते ही होंगे। उसके किये कार्यों का विवरण भी तुम्हें मिल ही गया होगा। मैं इतना बँधा हूँ कि स्वयं तो उससे बदला ले नहीं सकता। अच्छा होता तुम उससे बदला लेते। मेरे जीते जी यदि यह कार्य हो जाय, तो अच्छा है। यदि ऐसा न हो सके तो मरने के बाद भी मेरी इस हृदय की आवाज को मत भूलना। नहीं तो मेरी आत्मा तड़पती रह जायगी।

भवानी सदा तुम्हारी रक्षा करती रहे। तुम गऊ, ब्राह्मण और जन्मभूमि की रक्षा करते रहो।

तुम्हारा ही

शाहजी

शाहजी का पत्र पढ़ते ही शिवाजी की आँखों से आँसू बरस पड़े। उन्होंने उसी समय बाजी घोरपड़े से बदला लेने की प्रतिज्ञा की। जवानी का खून उबल पड़ा। अवसर पर वह अपने पूरे वेग के साथ उमड़ा।

००००००

इधर शाहजी कर्नाटक की ओर बढ़े। साथ में पुत्र शम्भाजी भी थे। मार्ग में ही शाहजी ने पता लगाया कि इस अशान्ति का कारण क्या है? मार्ग वासियों ने बड़े दुख के साथ सारी कहानी सुनायी। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत नगर में चरितार्थ थी। चारो ओर हाहाकार था। आगे बढ़ने पर पुनः मालूम हुआ कि यह सारा कनकगिरि के दुर्गाध्यक्ष का ही उत्पात है। थोड़ी चिन्ता हुई, किन्तु सेना अच्छी थी। घबराने की कोई बात नही। योग्य पुत्र के रहते पिता को क्या चिन्ता। शम्भाजी ही आगे आये। पिताजी से आज्ञा लेकर कनकगिरि के दुर्गाधिकारी को दबाने चल पड़े।

दिन का एक पहर बीता होगा। अभी गर्मी तेज नही थी, फिर भी धूप तेज लग रही थी। सैनिक कुछ प्यासे थे। मार्ग में ही उन्होंने पानी पीया। नयी चेतना, नयी स्फूर्ति आयी। लोग आगे बढ़े। सैनिकों को किसी भीषण युद्धकी आशंका नहीं थी। सोच रहे थे, बगावत है, पहुँचते ही समाप्त हो जायगी। किन्तु वास्तविकता कुछ इसके विरुद्ध थी।

शाहजी के आगमन की सूचना पाकर कनकगिरि के किलेदार ने भी अच्छी तैयारी की। मार्ग में ही दोनो सेनाओ का सामना हुआ। तलवारें चमक उठी। वार पर वार होने लगे। एक इंच भी पीछे हटना किसी सिपाही के लिये मुश्किल था। क्या होगा?—कोई कह नहीं सकता था। मौत में डूबती उतराती जवा-नियाँ आगे बढ़ने को प्रस्तुत थी। सचमुच इतने भयंकर युद्ध की कल्पना न किलेदार ने की थी और न शाहजी ने की थी। शाहजी तो युद्ध-स्थल से दूर थे, उन्हें अभी खबर नहीं थी। इधर शम्भाजी बड़ी वीरता से लड़ रहे थे—आखिर शाहजी का पुत्र ही तो था, मारने मरने से डर क्या? हजारों मृत्यु के घाट उतारे जा रहे थे।

अचानक एक सनसनाती गोली आयी और शम्भाजी के वक्षस्थल को चीरती हुई निकल गयी। उसका निष्प्राण तन पृथ्वी पर गिर पड़ा। ज्योति ज्योति में विलीन हो गयी। सेनापति के गिरते ही सेना में खलबली मची—और वह सेना-पति ही नहीं गिरा था; शाहजी का पुत्र गिरा था, शिवाजी का भाई गिरा था। सेना भाग खड़ी हुई।

पराजय का समाचार शाहजी को मिला। उन्हें बड़ा ही दुख हुआ। पुत्र भी चला गया और लड़ाई भी न जीती जा सकी। पराजय का अपमान उन्हें उतना नहीं सता रहा था जितना पुत्र प्रेम। उनकी आँखों के सामने शम्भा की बचपन की तस्वीर आ जाती जब वह घुटनो के बल चल रहा है, किलकारी भरता है। और अब बड़ा हुआ, खेलता है। तलवार चलता है और घोड़े पर चढ़ता है, किन्तु सोचते सोचते जब उन्हें यह याद होता कि अब वह चला गया, उनकी तन्द्रा टूट जाती, चित्र अचानक सामने से हट जाता, नेत्र सजल हो जाते।

जब पराजय से अपमान का ध्यान होता, उनकी भुजाएँ फड़क उठती। सोचते, सुलतान भी क्या सोचता होगा और यह किलेदार...? उनका चेहरा लाल हो जाता। क्रोध से तन काँप उठता। दायीं भुजा तलवार की मुठिये पर जाती। उन्होने शीघ्र ही प्रमुख सैनिकों को बुलाया। उनमें नया उत्साह भरा और शीघ्र सेना तैयार होने की आज्ञा दी।

आज्ञा पाते ही सैनिक तैयार हो गये, नये उत्साह और नये जोश के साथ। अब की बार शाहजी स्वयं नेता थे। हर जवान मे एक नयी गर्मी थी। लोग आगे बढ़े। जय भवानी! जय महाकाली!! देखते ही देखते कनकगिर आ गया। सैनिकों के तुमुल घोष से एक बार फिर आकाश गूँज उठा। किलेदार ने भी तैयारी की थी। वह जानता था कि शाह जी चुप रहने वाले नही है। अपनी पराजय—और विशेष रूप से शम्भा जी के मृत्यु का बदला लेने वह अवश्य आयेंगे।

शाहजी वास्तव में बदला लेने ही गये थे क्योकि पुत्र के मारे जाने के बाद उनका उत्साह कुछ समय के लिये सो गया। प्रतिहिंसा की भयंकर ज्वाला उनके हृदय में जल रही थी। आज इसी ज्वाला की चिनगारी से कनकगिरि जल उठेगा। "जय भवानी, तू रक्षा कर" शाहजी ने अपनी तलवार पर मस्तक झुकाते हुए कहा।

कनकगिरि का किलेदार भी अपनी सेना ले आ धमका। जमकर लड़ाई हुई। विजय किसकी होगी, यह तो निश्चित था किन्तु दोनो पक्ष जी जान से लग गये थे। शाहजी का लक्ष्य सैनिकों को मारना काटना नहीं था। वह तो

अर्जुन की भाँति अपने पुत्रघाती जयद्रथ को खोज रहे थे...और जयद्रथ—दुर्गाध्यक्ष अपनी सेना के मध्य के सुरक्षित स्थान पर था।

कहते हैं जो मौत को नहीं चाहता मौत उसे ही चाहती है। इतने रक्षित स्थान पर भी शाहजी के घातक वारों से किलेदार बच न सका और तलवार के एक ही वार में सिधार गया।

शाहजी की प्रतिज्ञा पूरी हुई। सूर्य के अस्त होने का प्रश्न ही नहीं आया और जयद्रथ मारा गया। सेना भाग चली। मैदान खाली हो गया। शाहजी की शानदार विजय हुई।

पुत्र का बदला तो ले लिया गया, पर पुत्र तो नहीं मिला।—शाहजी का दुख किसी प्रकार कम नहीं हुआ। जिसे उन्होंने पाला-पोषा था; पैदा किया था, जिसपर उनकी बड़ी बड़ी आशाएँ थी वह चला गया। सपने कितने मनोहर होते है, किन्तु उनका जीवन कितना अवास्तविक तथा अस्थिर है—शाहजी सोच रहे थे। चिन्ता उनके हृदय में चिता की भाँति धधक रही थी।

वे उदास रहने लगे। राज सम्बन्धी कार्यों पर अब उनका अधिक ध्यान नहीं रहता था। शासन में शान्ति के स्थान पर अशान्ति बढ़ने लगी। अत्याचार तथा अपराधो की संख्या बढ़ गयी।

oooooo

बीजापुर के सुलतान को कर्नाटक की अशान्ति का समाचार मिला। शम्भाजी की मृत्यु तथा शाहजी की उदासीनता की बात उसे मालूम हो गयी। "मामला क्या है? ऐसा कभी सम्भव नही कि शाहजी की शक्ति कर्नाटक के विप्लब को दबाने में कमजोर पड़े। कोई रहस्य अवश्य है। मुझसे नाराज होने के कारण ऐसा तो नहीं कि उसने अपने पुत्र शिवाजी को मदद भेजी हो, जिससे उसकी शक्ति कम हो गयी। किन्तु, क्या शाहजी ऐसा कर सकते हैं? वह इतना नीच तो नहीं है। फिर क्यों ऐसा है?" सुलतान कुछ ठीक सोच नहीं पाया।

लाचार उसने यह शंका एक दिन अपने दरबार में उठायी। दरबारियो को सन्देह था। एक दरबारी ने सुलतान को प्रसन्न करने के लिए उसकी बात का

समर्थन करते हुए कहा "हुजूर आप ठीक कहते हैं। शाहजी की मंशा अवश्य विद्रोह करने की है, नहीं तो इस प्रकार की अराजकता का कोई कारण नहीं।"

"...और शाहजी अब अपने को मुगल दरबार का सेवक समझते हैं। बीजापुर की सेवा का उनके लिये कोई महत्व नहीं' यह भी तर्क पूर्ण बात थी। सुलतान को कुछ ठीक जँची। किन्तु करना क्या चाहिए? अब प्रश्न यह था। कई प्रस्ताव हुए। बाजी श्यामराजे की बात लोगो को अधिक पसन्द आयी। उसने कहा, "इस समय शिवाजी को दबाना ही सबसे अच्छा उपाय है। पिता कर्नाटक मे फँसा है। ऐसे समय पुत्र को चारों ओर से घेर लेना चाहिए। सारा मामला शान्त हो जायगा।"

बात तो ठीक है। भला इसका कौन विरोध कर सकता है, किन्तु शिवाजी का सामना करेगा कौन? अब यह समस्या थी। सुलतान ने इस कार्य के लिये किसी बहादुर का आमंत्रण किया, दरबार मे शान्ति छा गयी। अपने दरबारियों की कायरता तथा भीरुता पर वह मन ही मन खीझ उठा। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि एक दरबारी ने कुछ कहने की इच्छा प्रकट की। अनुमति पाने पर उसने कहना शुरू किया "जहाँपनाह, इस कार्य के लिये यदि बाजी श्यामराजे को ही चुना जाय तो अच्छा होगा क्योकि यह सूझ उनके ही दिमाग में पहले आयी है। उनके पराक्रम की भी हम सब प्रशंसा करते हैं।" इस मुसलमान दरबारी का उद्देश्य था अपने सिर से बला टालना और एक हिन्दू को ही हिन्दू के विरुद्ध लड़ाना। यदि बाजी श्यामराजे की विजय होती तो अच्छा ही है, क्योकि शिवाजी का सदा के लिये विनाश हो जाता। यदि श्यामराजे की हार होती है तो भी इस दरबारी के लिये अच्छा ही था क्योंकि इससे एक सुलतान का कृपापात्र हिन्दू अपमानित होगा और दरबार में उसका वह सम्मान नहीं रह जायगा जो अभी तक है।

'बिल्कुल ठीक है। बाजी श्यामराजे हमारी सभा के भूषण हैं। हम आशा करते हैं कि वे अवश्य इस कार्य को करेंगे।' सुलतान ने बात मान ली।

स्वयं श्यामराजे शिवाजी का सामना करना नहीं चाहता था किन्तु परिस्थिति

ऐसी आ गयी, जिससे उसे सुलतान की आज्ञा शिरोधार्य करनी पडी। कार्य-क्रम बन गया।

००००००

इन दिनो शिवाजी कोकण के अन्तर्गत महर नामक ग्राम में रहते थे। प्रकृति का सँवारा और दुलारा ग्राम शिवाजी को अत्यन्त प्रिय था। स्थान भी सुरक्षित था। सकरी तथा दुर्गम घाटियो मे से होकर किसी नये आदमी का चुपचाप चला आना कठिन था। यहाँ रहकर वे अपनी शक्ति सचय करते थे।

बाजी श्यामराजे ने सीधे महर ग्राम पर चढायी करनी उचित नही समझी। पहले वह जावली नामक ग्राम मे आया। सतारा जिले के उत्तर पश्चिम के कोने में महाबलेश्वर पर्वत से छः मील पश्चिम में जवाली ग्राम पड़ता है। इसके पश्चिम की ओर सह्याद्रि पर्वत की गगन चुम्बी चोटियाँ समुद्र से चार हजार फीट ऊँची हैं। पूरब की ओर तराई है, घने जगलों तथा पत्थरों से भरी हुई। प्रकृति ने इसे बड़ा मनोरम बनाया है। मोहक झरनो तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से भरी यह घाटी अत्यन्त आकर्षक है।

इस पथरीली जमीन का पश्चिमी हिस्सा ६४ मील चौड़ा है। इसको पार कर कोकण जाना पडता है। कोकण जाने के लिये आठ घाटियाँ पार करनी पडती है। जिनमे से केवल दो ही ऐसी है, जिनमे बैल गाडियाँ चल सकती है। यह तो है कोकण की दशा। महर पहुँचना तो इससे भी कठिन है।

इस समय बाजी श्यामराजे जावली के जागीरदार से मिला। जावली की जागीर, मोरे वश के अधिकार में थी। आठ पुस्त पहले यहाँ के एक मोरे ने अपने हाथ से एक शेर मारा था। इसी से प्रसन्न होकर बीजापुर के सुलतान ने उसे 'चन्द्रराव' की उपधि प्रदान की थी। यही उपाधि परम्परा के अनुसार मोरे वश के ज्येष्ठ पुत्र धारण करते थे। जावली का अधिकारी बडा भाई होता था और छोटे भाइयों को निकट के ग्राम दिये जाते थे।

इस प्रकार सुलतान की बफादारी चन्द्ररावो का धर्म था। श्यामराजे से वे बड़ी प्रसन्नता से मिले। उससे गुप्त सन्धि हुई और निश्चित हुआ कि जैसे हो

सके वैसे ही शिवाजी को बन्दी बनाकर सुलतान के सामने उपस्थित करना चाहिए। "किन्तु उसे जीवित बन्दी करना टेढ़ी खीर है।" चन्द्रराव ने कहा। "फिर उसका सिर काटकर हम सुलतान के सामने उपस्थित करेंगे।" श्यामराजे ने बड़े ही विश्वास के साथ कहा।

"यह हो सकता है किन्तु इसके लिए भी हमे बडी सर्तकता की आवश्यकता है। उसे किसी प्रकार अपने खेमे में बुलाना चाहिए और उसका बध करना चाहिए।"

"क्या युद्ध मे हमें सफलता नही मिलेगी? हमारे पास विशाल शक्तिशाली सेना है।" बाजी श्यामराजे का उत्साह और विश्वास अपनी चरम सीमा पर था। चन्द्रराव मुस्कराया मानो वह श्यामराजे के अज्ञान पर जोर से हँस रहा हो, पुनः उसने समझाते हुए कहा, "इस पहाडी प्रदेश में हमारी आपकी क्या हस्ती है। सुलतान की सम्पूर्ण सेना भी उसे हराने मे सफल नही हो सकती।"

"तो फिर क्या करना चाहिए?"

"फारघाट में जाकर डेरा डालिये और यह प्रचारित कीजिये कि सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया हूँ।...याद रखिये कभी उससे मिलने की चेष्टा मत कीजिएगा।" अन्तिम वाक्य कहते समय चन्द्रराव की आकृति पर अत्यन्त गभीरता आयी। ऐसा लगा मानों वह अपने किसी कटु अनुभव की बात कह रहा है।

श्यामराजे ने चन्द्रराव की बात मान ली। फारघाट पर डेरा डाला। सन्धि की बात प्रचारित की गयी। इस बीच चन्द्रराव तथा श्यामराजे के बीच कई बार गुप्त मन्त्रणाएं हुईं।

००००००

प्रतिदिन का समाचार गुप्तचर शिवाजी को देते थे। बाजी श्यामराजे की कार्यवाही से वे पूर्णतः परिचित हो जाया करते थे। किंतु उसकी नीयत क्या है? क्या वह सचमुच सन्धि करना चाहता है और इसी मंशा से आया है? ये कुछ ऐसी शंकाएं थी, जिसका समाधान शिवाजी भी ठीक कर नहीं पा रहे थे। उधेड बुन मे थे।

दूसरे दिन प्रातःकाल गुप्तचर ने एक नयी सूचना दी। उसने बताया कि फारघाट पर बाजी श्यामराजे का जो कैम्प है, उसमें जावली के दुर्ग से आज और अधिक युद्ध का सामान आया है। "सामान किस मार्ग से आया क्या तुम बता सकते हो"—शिवाजी ने कुछ सोचते हुए पूछा।

"किन्तु यह तो नहीं बता सकता, महाराज।"

"तब यह तुमने कैसे जाना कि जो युद्ध की सामग्री आयी है, वह जावली से ही आयी है?"

"साथ में मावलियो की एक छोटी सेना भी थी, जिसके कई प्रमुख सैनिकों को मै अच्छी तरह जानता हूँ।"

शिवाजी को वास्तविक स्थिति का अब ज्ञान हुआ। उनका माथा ठनका। उन्होंने गुप्तचर से कहा, "शाबाश तुम्हारी योग्यता से बहुत बड़ा लाभ हुआ। यदि हो सके तो आज का भी समाचार सन्ध्या तक लेते आओ।"

"बहुत अच्छा" गुप्तचर मस्तक झुका आज्ञा पालन के लिते चला गया।

सन्ध्या होने के कुछ पहले ही शिवाजी ने अपने कुछ साथियो को बुलाया और सारी परिस्थिति से अवगत कराकर कहा "यदि श्यामराजे मैत्री के लिये आया होता, तो इतनी बड़ी सेना की क्या आवश्यकता थी...और उसने जावली से भी सैन्य सहायता ली है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि वह अविलम्ब हमे धोखा देकर हम पर आक्रमण करेगा।"

"क्या हरज है हम भी उससे आक्रमण का मुँह तोड़ जबाब देंगे।" "किन्तु जबाब देने से सवाल पूछना अच्छा है।" शिवाजी ने मुस्कराते हुए कहना जारी रखा "किसी की उठी तलवार को रोकने में योग्यता नहीं है। योग्यता है उसकी तलवार उठने के पहले ही अपनी तलवार उठा देने में।"

"इसका मतलब है कि पूर्ण रूप से आप इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके है कि वह सचमुच हमें धोखा देने आया है।" साथियो में से एक ने कहा।

"परिस्थिति को देखते हुए तो इसके अतिरिक्त कोई दूसरा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।" शिवाजी की वाणी में विश्वास और आँखो में अनुभव की गहराई स्पष्ट दिखायी पड़ी। विवाद का निष्कर्ष शिवाजी के ही पक्ष में था।

ऐसी ही बातें चल रही थी। सूर्य पश्चिम में डूबने लगा। सह्याद्रि पहाड़ों की चोटियाँ सिन्दूर-सी लाल दिखायी पड़ने लगी। किन्तु अभी तक कोई समाचार नही मिला। प्रातःकाल जो गुप्तचर आया था तथा जिससे सन्ध्या को भी समाचार लाने को था, उसका अभी तक पता नहीं है। शिवाजी आतुर हैं। आज का समाचार किसी विशेष महत्व का होगा। उन्हें विश्वास है। धीरे-धीरे कुछ समय और बीता। सूर्य बिल्कुल डूब गया। सन्ध्या का रंगीन अञ्चल देखते-देखते ही अदृश्य हो गया। अन्त में परेशान प्रातःकाल वाला गुप्तचर पुनः आया।

वह कुछ आज व्यस्त दिखायी दे रहा था। चेहरे से थकावट साफ मालूम पड़ रही थी। आते ही वह शिवाजी से मिला और उसने कहा "महाराज, आज जो कुछ मालूम हुआ है, उससे यह स्पष्ट है कि वह सन्धि करने नहीं आया है। वह तो आक्रमण का कार्यक्रम बना रहा है। आज श्यामराजे अपने कुछ सरदारो के साथ बैठकर मध्याह्न में ऐसी ही योजना बना रहा था।"

शिवाजी ने मुस्कराते हुए अपने उन साथियो की ओर देखा जिन्हें शत्रु की नीयत का ठीक अनुमान नहीं था, पुनः गुप्तचर से बोले "जाओ आराम करो। मध्यरात्रि के पहले ही एक बार फिर यहाँ आने का कष्ट करना।"

"अच्छी बात है।" गुप्तचर चला गया।

"अब तो आप शत्रु की नीयत समझ गये होंगे। ऐसी स्थिति में हमें पहले ही उस पर आक्रमण करना चाहिए, जिससे उसकी शक्ति संगठित न हो सके।" लोगों को चुप देखकर शिवाजी ने पुनः पूछा "आपकी क्या राय है?"

"हाँ-हाँ, बिल्कुल ठीक है, कल ही किसी समय आक्रमण कर देना चाहिए" कई ने एक साथ कहा। बीच ही में वे बोल उठे "कल ही नहीं, आज ही। जब आक्रमण करना ही है, तो शत्रु को बिल्कुल सँभलने अवसर मत दीजिए।"

"बिल्कुल ठीक, समय निश्चित कीजिए।"

"मध्य रात्रि के ही बाद हमें फारघाट पहुँच जाना चाहिए और चुपचाप आक्रमण करना चाहिए क्योकि उसकी शक्ति हमलोगो से अत्यन्त अधिक है।"

"...किन्तु छिपकर आक्रमण करने से हमारे सम्मान में धब्बा लगता है।" एक ने सकुचाते हुए कहा।

शिवाजी जोर से हँस पड़े, बोले "सम्मान में धब्बा छिपकर आक्रमण करने से नहीं लगता, पराजित होने से लगता है।...और यह तो युद्ध नीति है कि जो जिस प्रकार लड़ना चाहे, उसका उत्तर वैसा ही देना चाहिए। यदि श्यामराजे हमें धोखा देना चाहता है, तो हम भी उसके धोखे का जबाब धोखे से देंगे। शिवाजी ने पुनः हँसते हुए कहा "और राम ने भी तो बालि को छिपकर मारा था।" सभी हँसने लगे। भवानी का नाम ले अपनी-अपनी सेना तैयार करने चले गये। योजना गुप्त रखी गयी।

समय बीतने लगा। सबको किसी युद्ध की आशंका होने लगी। क्योंकि सेना की तैयारी बड़े धूमधाम से हो रही थी, किन्तु दो-चार को छोड़कर किसी को भी इस नयी योजना का पता नहीं था।

रात का दो पहर बीत गया। शान्ति की चादर ओढ़ धरती सो गयी। किन्तु शिवाजी के सैनिक अब भी सोये नहीं थे। अचानक युद्ध का बिगुल बजा। सेना एकत्र हुई। घोड़ो के हिनहिनाने तथा आपसी बातचीत की ध्वनि से एक विचित्र किन्तु हलका कोलाहल हो गया।

शिवाजी भी अपने घोड़े पर सवार सेना के आगे आये। भगवती के जय-जयकार से आकाश गूँज गया। शिवाजी ने आज की योजना की ओर सैनिकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा "मेरे वीर साथियो, हमें इसी समय फारघाट चलना है। वहाँ सुलतान के टुकडो पर जीने वाले बाजी श्यामराजे का पड़ाव पड़ा है। वह हमें धोखा देकर हराने की चेष्टा में है। इसके पहले कि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का प्रयास करे, हमें चाहिए कि हम उसकी कमर तोड़ दें।" वे बड़े आवेश में थे।

"मातृभूमि की जय,.. भवानी की जय" सेना चिल्ला उठी।

"...इस प्रयाण में हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारी आहट जरा भी शत्रु को न लगे। घोड़ों की लगाम आप इतनी कसी रखें कि उनके टापों की ध्वनि तेज न सुनायी पड़े। तंग घाटियों से जाते समय इसका भी ख्याल

रखिए कि पेड के पत्ते भी न खड़के। नही तो वृक्षो पर सोने वाले पक्षी जाग जायँगे। इससे भी हमारे आने की आहट लग सकती है। अच्छा अब हमे चलना चाहिए। भवानी हमारी रक्षा करें।"

सेना चल पडी, हवा से बाते करती हुई। महर गाँव की धरती ने उन्हें बिदा किया—जाओ मेरे वीर सफलता तुम्हारे चरण चूमे। निस्तब्ध शात सो रहे गभीर आकाश ने जागकर कहा—बढ़े चलो बहादुरो! मातृभूमि की सेवा में गिरे तुम्हारे रक्त के धरती पर लगे धब्बे हमारे तारो से भी अधिक चमकदार हो।

देखते ही देखते कुछ ही घटो में सेना फारघाट के निकट पहुँच गयी। सभी सैनिको को एक स्थान पर रोक लिया गया और चुपचाप आस-पास छिप जाने की आज्ञा हुई।

कुछ ही लोग कैम्प की ओर बढे। इनकी संख्या चार छह से अधिक नही थी, इनमें शिवाजी भी थे। कदाचित बाजी श्यामराजे की स्थिति से अवगत होने ही ये लोग जा रहे थे।

इस समय कैम्प में सैनिक सो रहे थे। पहरे के भी सिपाही नीद मे चूर थे बाजी श्यामराजे मस्ती से सपनों की दुनिया मे खोया पड़ा था। कैम्प के लोगो की बेफिक्री बता रही थी कि इन्हे आक्रमण की जरा भी आशंका नही है।

जाने वाले लोग लौट रहे है, छिपे हुए सैनिको ने देखा। वे बहुत धीरे-धीरे आ रहे है। आधा आने के बाद वे जमीन पर लेट गये और रेंगते हुए आगे बढ़े। कदाचित् उन्हे भय है कि पहरे के सैनिक उन्हें देख न ले।

निकट आते ही शिवाजी ने अविलम्ब आक्रमण करने की आज्ञा दी। मावली योद्धाओं की सेना आगे बढ़ी और टूट पड़ी। बाजी के भी सैनिक हडबड़ा कर उठे। प्रतिरोध हुआ। तलवारे गिरने लगीं। मावले बाजी की सेना का सर्व-नाश करने लगे। विकट चीत्कार से वातावरण गूँज उठा। शिवाजी के सामने श्यामराजे का टिकना असम्भव था। चुपचाप वह प्राण लेकर भागा।

अभी कुछ समय पहले जो स्वप्नों मे खोया देख रहा था कि मै शिवाजी

का सिर लिये सुलतान के सामने जा रहा हूँ, वह सिर पर पैर रखकर लड़ाई के मैदान से भागता चला जा रहा था।

कुछ सैनिको ने उसका पीछा किया। शिवाजी ने उन्हें रोकते हुए कहा "भागते हुए पर कभी बहादुर आक्रमण नही करते। मुरदो को मारने से क्या लाभ? सैनिक एक कदम भी आगे न बढ़े।

जान बची लाखों पाया। बाजी को यही प्रसन्नता थी। किसी प्रकार जंगलों में छिपता अपना-सा मुँह लेकर वह बीजापुर पहुँचा। सुलतान ने जब यह समाचार सुना तब वह जल भुनकर रह गया मानो उसके घाव पर किसी ने नमक छिड़क दिया हो।

शिवाजी की यह शानदार विजय थी। मावली योद्धाओ के उत्साह को इस विजय ने दूना कर दिया था।

oooooo

इस समय शिवाजी के मार्ग में केवल एक ही कंटक था। वह था जावली के जागीरदार 'चन्द्रराव'। आज से तीन वर्ष पहले श्रीकृष्णजी मोरे नामक व्यक्ति ने 'चन्द्रराव' की उपाधि धारण की थी। इस व्यक्ति की बाजी श्यामराजे को सहायता देने की कहानी तो आप जानते है। यह व्यक्ति स्वयं भी शिवाजी से जलता था। किन्तु अपने को चाणक्य का बाप समझता था। मुँह पर तो वह उनकी तारीफ करता। मुँह पीछे सदा उनके विनाश का उपाय सोचता। शिवाजी इसे अच्छी तरह जानते थे, फिर भी वे लड़ना पसन्द नहीं करते थे। किसी प्रकार समझाने-बुझाने से यदि काम चल जाये तो अच्छा।

राज बढ़ाने तथा अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिये उन्हे जावली पर अधिकार करना भी अत्यन्त आवश्यक था। अतएव श्री कृष्णजी मोरे को समझाने के लिये किसी उचित आदमी की खोज होने लगी।

शिवाजी ने इसके लिये उपयुक्त व्यक्ति रघुनाथ बल्लाल कोरडे को चुना। रघुनाथ जाति का ब्राह्मण था और उसके गम्भीर व्यक्तित्व एवं पराक्रम

६

के कारण लोग उसे मानते थे। शिवाजी ने उसे बुलाया और कहा, "अब तक जावली का प्रान्त हमारे अधिकार के बाहर है। जब तक वह अधिकार में नहीं आता तब तक हमारे राज की सीमा सुरक्षित नही होती।"

"इसके लिये अच्छा हो कि हम शीघ्र ही अपनी पूरी शक्ति के साथ जावली पर आक्रमण करें।" रघुनाथ ने एक वीरोचित प्रस्ताव किया।

"किन्तु मैं आक्रमण कर व्यर्थ में अपनी शक्ति नष्ट नही करना चाहता। श्री कृष्णजी मोरे पर आक्रमण करने का मतलब है अपने एक भाई पर ही आक्रमण करना। मैंने शक्ति एकत्र की है देश गऊ और ब्राह्मण की रक्षा के लिये आपस में लड़कर बरबाद होने के लिए नही।"

"तो आप ही बताइए, क्या करना चाहिए?"

"मेरा तो विचार है कि आप शीघ्र ही श्री कृष्णजी मोरे से मिलें और उसे समझायें कि आपस में न लड़कर तुम्हें एक हो जाना चाहिए। इस समय जननी जन्म-भूमि पराधीन है। उसके हाथ और पैरो मे बेड़ियाँ है। यवन हम पर शासन करते हैं। यह हमारे लिये लज्जा की बात है। ऐसी स्थिति में शीघ्र ही हमें मिलकर यवनों का सामना करना चाहिए।" जन्मभूमि का नाम लेते ही शिवाजी की आँखो में ललाई उतर आई।

आप के विचार मैं उसके सामने रख दूँगा। किन्तु उसका स्वभाव कुत्ते की दुम के समान है, जो कभी सीधी नहीं होती।" सत्य बड़े स्पष्ट रूप में सामने आया। "किन्तु हमें प्रयत्न तो करना ही चाहिए।" शिवाजी ने मुस्कराते हुए कहा।

"अच्छी बात है। आपकी आज्ञा पालन करने मैं कल ही जाऊँगा, अच्छा होता कुछ सैनिक भी साथ रहते। कैसा पड़े, कैसा न पड़े।"

"हा, पच्चीस तीस चुने हुए सिपाही ले लीजिए।"

शिवाजी हर व्यक्ति की बात सुनते थे। यही कारण था कि प्रत्येक बिना भय के उनसे वाद विवाद करता था। इससे उन्हें प्रसन्नता ही होती थी। रघुनाथ ने विवाद तो किया, किन्तु आज्ञा पालन में वह शीघ्र तत्पर हुआ।

दूसरे ही दिन उसने पच्चीस चुने सैनिकों को लेकर जावली की ओर प्रस्थान किया। अधिक लोगों की क्या आवश्यकता। सन्धि की तो बात करनी थी।

जब वह जावली पहुँचा, तब चन्द्रराव अपने दुर्ग में नहीं था। दुर्ग से दूर इन लोगो को कैम्प बनाना पड़ा। दिन यो ही बीत गया। रात को समाचार मिला कि चन्द्ररावजी आगये हैं। किन्तु, रात्रि में क्या मिलना, प्रातःकाल ही मिला जायगा, रघुनाथ ने सोचा। उसने एक पत्र चन्द्रराव को लिखा जिसमें शिवाजी की सद्भावना का जिक्र था और मिलने के लिये समय मांगा गया था।

दूसरे दिन निश्चित समय पर रघुनाथ तथा श्री कृष्ण मोरे का मिलन हुआ। आवश्यक बातें हुईं। पहले दिन की आवभगत अच्छी थी। बाद में चन्द्रराव ने सोचा कि शिवाजी इस समय अवश्य किसी परेशानी में होंगे। नहीं तो वे कभी सन्धि का प्रस्ताव न भेजते। इससे उसने दूसरे दिन से ही रघुनाथ की उपेक्षा करनी आरम्भ कर दी।

शरण में आये शक्तिहीन की भी व्यक्ति जितनी उपेक्षा नहीं करता चन्द्रराव द्वार पर आये एक शक्तिशाली की उससे अधिक उपेक्षा करने लगा।

रघुनाथ बल्लाल बड़े शान का आदमी था। वह उपेक्षा क्यों सहन करता। क्या पराजित था या अपमानित। 'आपको न चाहे ताके बाप को न चाहिए'—इसी विचार का था वह। इसीसे उसने भी कड़ा रुख किया।

एक दिन सन्ध्या को चन्द्रराव से रघुनाथ ने पुनः मिलना चाहा। चन्द्रराव ने पहले तो बुरी तरह से मिलने का प्रस्ताव अस्वीकार किया। बाद में जब उसने कहलाया कि आज मै महर लौटने वाला हूँ, इसलिये यदि समय हो और आप किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न करें, तो मिल लिया जाय। तब किसी प्रकार मिलना निश्चित हुआ।

इस अपमान से रघुनाथ का दिल जल गया था, किन्तु कर्त्तव्य के बन्धन में वह बँधा था। करता क्या?

यह मिलन एकान्त स्थान में हुआ। श्रीकृष्ण मोरे और रघुनाथ वल्लाल के अतिरिक्त श्रीकृष्ण का छोटा भाई भी वहाँ था। और कोई दूसरा वहाँ नहीं था।

कहते है कि बातचीत के सिलसिले में भी 'चन्द्रराव' ने उसका अपमान किया। वह अपने को रोक न सका। आखिर था तो शिवाजी के साथ ही रहने वाला। उसने तलवार के दो ही वार से दोनो भाइयो का अन्त कर दिया और महल से घोड़े पर सवार होकर निकल भागा। उसकी निर्भीकता और क्षिप्रता ने द्वारपालो को भी आश्चर्य में डाल दिया। बाद मे कुछ सैनिकों ने उसका पीछा किया, किन्तु व्यर्थ।

यहाँ से भाग रघुनाथ महाबलेश्वर पहुँचा। उसने इसकी सूचना शिवाजी को भी दी। उन्हें रघुनाथ का यह कार्य अच्छा न लगा। वह दूत बनाकर भेजा गया था। किसी की हत्या करने के लिये नही। यह कार्य उसके दूत कर्म के विरुद्ध था। उन्होने उसे खूब धिक्कारा।

श्रीकृष्ण मोरे के मरने के बाद ही जावली बिना केवट की नौका के समान हो गयी। मौका अच्छा था। अधिकार करने के लिये शिवाजी ने आक्रमण किया क्योंकि कम ही शक्ति लगाने से बड़ा काम निकलने वाला था।

जावली मंत्री हिम्मतराव और मोरो के पुत्रो ने शिवाजी का डटकर सामना किया। हिम्मतराव के हिम्मत की प्रशंसा शत्रुओ ने भी की, किन्तु वह टिक कब तक सकता था, शिवा का सामना करना सरल नहीं। लड़ते-लड़ते वह जिन्दगी को ठुकराकर मृत्यु की शरण में चला गया। "जाने वाले तुम्हें हमारा नमस्कार है।" इस पराक्रमी के महाप्रयाण पर शिवाजी की आत्मा बोल उठी होगी।

हिम्मतराव के मरते ही श्रीकृष्ण मोरे के पुत्र भी बन्दी हो गये। अब लड़ाई में कोई दम नहीं था। फिर भी वसोता के दुर्गाध्यक्ष की तलवार चमक रही थी। उसे पराजित करने के बाद पूर्ण जावली अधिकार में आ जायगा, यह सोच सेना एक दम उस पर टूट पड़ी। वह भी घिर गया और फिर अधिक समय तक खड़ा न रह सका। शीघ्र ही हिम्मतराव से मिलने स्वर्ग की ओर चल पड़ा।

अब जावली पर शिवाजी का पूरा अधिकार हो गया। इस प्रान्त की देखभाल वह स्वयं करने लगे। अब जावलीवासियों के हृदय के सिंहासन पर वे विराजमान थे। जनता पर तो उनका पूरा अधिकार हो गया। अब भी कुछ ऐसे छोटे जागीरदार और अधिकारी थे, जिनकी सहानुभूति श्रीकृष्ण मोरे के ही प्रति बनी रही।

शिवाजी उनका भी ध्यान रखते थे। एक दिन उन्होने अपने सहयोगियो के बीच बात छेड़ ही दी।

"जावली तो अधिकार में आ गयी, किन्तु आसपास के जागीरदारों और सेना नायकों के मरने पर भी मैं अधिकार न पा सका।" शिवाजी का स्वर गम्भीर था, जैसे उन्होंने कोई बहुत बड़ी समस्या सामने रखी।

"इससे क्या, कुछ दिन बाद आप ही आप सब ठीक हो जायगा।" एक ने कहा।

"जी महाराज जिसके पास शक्ति होती है, जागीरदार और सेनानायक तो उसी की शरण में आ ही जाते है।"

शिवाजी मुस्कराये। उन्होने कहा, "यदि यह सिद्धान्त ठीक है, तो मुझे भी बीजापुर की शरण में चले जाना चाहिये क्योंकि वह शक्तिशाली है न।" शिवाजी के इस तर्क में बड़ी शक्ति थी। सब चुप हो गये। उन्होंने पुनः कहा, "शक्ति का प्रभाव कायरो पर पड़ता है, बहादुरों पर नहीं...और शत्रु को कभी कायर नहीं समझना चाहिए। उनमें भी हम लोग जैसे व्यक्ति हो सकते हैं।"

बातचीत चल रही थी। इसी बीच द्वारपाल ने सूचित किया कि एक गुप्तचर आपसे मिलना चाहता है। शिवाजी ने उसी समय उसे मिलने की अनुमति दे दी।

उचित अभिवादन के बाद गुप्तचर ने कहा, "महाराज आज का महत्व पूर्ण समाचार यह है कि श्रीकृष्ण मोरे के जिन पुत्रों को आपने बन्दी करके मुक्त कर दिया है, उन्होने बीजापुर को सहायता के लिये पत्र भेजा है। पत्र का विषय अभीतक ज्ञात न हो सका।"

"कोई बात नहीं।" जैसे शिवाजी ने सब कुछ समझ लिया हो। नमस्कार कर गुप्तचर चला गया। पास बैठे लोगो से पुनः बातचीत का सिलसिला शुरू करते हुए उन्होंने कहा, "देखा आपने चन्द्रराव के पुत्रो ने भी विद्रोह की योजना की है।"

"विद्रोही को तो प्राणदंड देना चाहिए, चाणक्य ने ऐसा कहा है।"

"चाणक्य ने चाहे कहा हो या न कहा हो, किंतु आपने तो अवश्य कहा।"

लोग जोर से हँस पड़े। "शिवाजी ने पुनः मजाक करते हुए कहा,...और आपका कहना भला मैं न मानूँगा।" एक बार फिर ठहाका मचा। बातचीत समाप्त हुई।

००००००

विद्रोही मोरे के पुत्रों को प्राणदंड मिला और निकट के रोहिरा के दुर्ग पर अधिकार करने की योजना बनायी गयी। इस दुर्ग का अधिकारी था बन्दल, बड़ा बहादुर और कृतज्ञ। 'चंद्रराव' का उसने नमक खाया था, वह भला शिवाजी की अधीनता स्वीकार करता?

मावलियों की एक छोटी सेना ले शिवाजी ने इस किले को भी घेर लिया। दुर्गवासियो ने अपने अपरिमित शौर्य का परिचय दिया। प्राणपण से वे दुर्ग की रक्षा में लगे रहे, किन्तु कुछ ही समय बाद दुर्गाध्यक्ष का सिर धड़ से अलग होकर गिर गया। रोहिरा की सेना में खलबली मच गयी। किन्तु,..."डटे रहो बहादुरों" एक तेज पराक्रम से भरी आवाज सुनायी पड़ी। यह आवाज बाजी-प्रभु देशपाण्डे की थी। वह रोहिरा दुर्ग का एक सेनानायक था। वह बड़ा ही पराक्रमी था। उसे एक पग भी पीछे हटाना हिमालय को गिराना था। महाकाली खप्पर वाली को याद करता वह अपने स्थान पर डटा रहा। उसका तन क्षत विक्षत हो गया। इतनी चोटें लगने पर भी खड़ा रहना सचमुच किसी दैत्य का कार्य है। वार पर वार सहता रहा। किन्तु बाजी एक पग भी पीछे न हटा। किला बचाना तो कठिन है, किन्तु किसी शक्ति की हिम्मत नहीं जो बाजी के जीते जी किले पर अधिकार कर ले।

शिवाजी दूर खड़े इस वीर का पराक्रम देख रहे थे। उसके धैर्य्य और शौर्य की प्रशंसा करते वे अपने मित्रों से अघाते न थे। "क्या ही अच्छा होता यह व्यक्ति हमारे साथ होता।" उस क्षण की शिवाजी की सबसे बड़ी कदाचित् यही आकांक्षा थी। उन्होने देखा कि बाजी अब गिरने ही वाला है। उनकी आत्मा चीख उठी। "जय भवानी वह है तो हमारे शत्रु के पक्ष का, किन्तु तू उसकी रक्षा कर। ऐसे वीरों की भारत को बड़ी आवश्यकता है।" शिवाजी का

मन बोल उठा। किन्तु, युद्ध के रहते बाजी का प्राण बचना कठिन है—उन्होंने अविलम्ब युद्ध रोकने की आज्ञा दी।

युद्ध बंद हुआ। तलवारें म्यान में चली गयी। शिवाजी दौड़े हुए बाजी के सामने आये। उन्होंने कहा "शाबाश, तुम्हारा पराक्रम देखकर मै गद्गद् हो गया।" बाजी बीच ही में बोल उठा, "महाराज आपके व्यवहार से मै प्रसन्न अवश्य हूँ, किन्तु मै एहसान लेकर जीना नहीं चाहता। यदि आप मुझे जीवित रखकर एहसान दिखाना चाहते है तो निकालिए तलवार..." बाजी का हाथ तलवार की मुठिया पर गया। युद्ध से वह थक गया था। उसकी साँस तेज चल रही थी मानों अग्नि बुझने के पहले धुँआ छोड़ रही हो।

बाजी की वीरोचित वाणी से शिवाजी का हृदय भर आया। उन्होंने भरे गले से कहा, "बाजी महाप्रभु, तुम पर मेरा एहसान नहीं। यह एक बहादुर का बहादुर द्वारा बहादुर के प्रति किया गया सम्मान है।" बाजी यह सुनकर प्रसन्न हो गया। शिवाजी ने गले लगाया। सेना में तालियां बज उठी।

इस मित्रता के बाद पूरा जावली का प्रांत शिवाजी के अधिकार में आ गया, फिर भी मोरे वंश के कुछ लोग पकड़े नही जा सके थे।

इतने बड़े क्षेत्र की रक्षा के लिये एक विशाल दुर्ग की आवश्यकता थी। कृष्णा तट के उतुंग पर्वत श्रृंग पर एक विशाल दुर्ग-निर्माण की योजना बनायी गयी। निर्माण का भार मोरो त्र्यम्बक पिगले नामक एक सुयोग्य ब्राह्मण कुमार को दिया गया तथा देश का शासन भार श्यामराजेपंत को सौंपा गया। ये शिवाजी की सेना के एक वीर सेनानी थे। इन्हें सन् १६५६ में पेशवा कीर उपाधि से सुशोभित किया गया था।

इस नव-निर्मित दुर्ग का नाम प्रतापगढ़ रखा गया। इस दुर्ग के भीत भवानी का एक विशाल मन्दिर भी बनाया गया। प्रतापगढ़ की यही भवानी शिवाजी की इष्टदेवी हुईं। उन्हीं के आशीर्वाद का बल शिवाजी का बल था।

कहते है कि २४ सितम्बर १६५६ में शिवाजी ने अपने मामा श्रीशम्भूजी मोहिते को दशहरे की भेट के बहाने मिलकर कैद किया और शाहजी के पास

भेज दिया। शम्भू जी शाहजी की आज्ञा से सूपा परगने की व्यवस्था करते थे। यह परगना भी शिवाजी के अधिकार में आ गया।

४ नवम्बर १६५६ ई० को बीजापुर का सुलतान मुहम्मद आदिलशाह मर गया। इसके मरने पर गड़बड़ी मची। इसका भी शिवाजी ने लाभ उठाया।

इस प्रकार अब शिवाजी के राज्य की सीमा प्रतापगढ़ के दक्षिणी भाग से लेकर पनहाला तक हो गयी थी। एक हिन्दू राज का यह सुदृढ़ क्षेत्र बना।

---

५

# बीजापुर और मुगल राज्य

"अली आदिलशाह मृत सुलतान का पुत्र नही है।...यह बनावटी है, नकली है, ढोंगी है।" यह अफवाह मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु के पश्चात् बीजापुर मे फैल गई। इसका कारण मुगलो की कूटनीति थी। वे मुहम्मद आदिलशाह के मरने के बाद बीजापुर को अपने अधिकार में करना चाहते थे। उन्होने वास्तविक उत्तराधिकारी को अवैध घोषित किया। औरंगजेब ने बीजापुर के नये शासक के पास लिख भेजा कि मुगल शाहशाह को आपको मुहम्मद आदिलशाह का पुत्र होने में संदेह है। आप सिहासन के उचित उत्तराधिकारी नही है, अतएव अविलाम्ब सिंहासन खाली कीजिए या दिल्लीशाह से सिहासन पर आरूढ़ होने की आज्ञा मागिए।"

यह बात अली आदिलशाह को बहुत बुरी लगी। हाथ मे आया राज्य और बनी इज्जत लोग शीघ्र नहीं खोना चाहते। उसने सहयोगियो को बुलाया और वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हुए कहा, "सहयोगियो, बीजापुर पर अब अपत्ति के बादल मँडरा रहे हैं। कुचक्रो की योजना हो रही है। मुगलो का दक्षिणी सूबेदार औरंगजेब बीजापुर को हड़पना चाहता है। बीजापुर हमारा है, आपका है। आपको इसके भविष्य के सम्बन्ध मे सोचना होगा। मै कुछ सोच नही पा रहा हूँ कि क्या करूँ। इस समय आप सभी उपस्थित है, श्रीजी घाटे, बाजी घोरपड़े, निम्बालकर ऐसे वफादार सेनानायक तथा जागीरदारो पर बीजापुर को सदा गर्व रहा है। आप ही बतायें क्या किया जाय?"

श्रीजी घाटे ने कहा—हमने तो बीजापुर का नमक खाया है। हम कभी भी उसे मुगलों के हाथों में जाने देना नहीं चाहते।

"बिल्कुल ठीक है हम भी जिस वृक्ष पर पक्षी की भाँति रहे हैं, उसे कभी कटते नहीं देख सकते"—बाजी घोरपड़े बोला।

"हुजूर, हमारी तलवार और हमारा सिर आपके कदमों में हाजिर है।" यह वाणी निम्बालकर की थी।

अंत में निश्चय यही हुआ कि मुगलों का जमकर सामना किया जाय। युद्ध की घोषणा हुई। मुगल सेना टिड्डीदल के समान बीजापुर की ओर चल पडी। घोर संग्राम हुआ। अपने वचनों के अनुसार घाटे, निम्बालकर और घोरपड़े ने जी जान से सहायता की। किन्तु बीजापुर की सेना में भी विभीषण के वंशजों की कमी न थी। उनकी सहायता से विजय औरंगजेब के ही पक्ष में थी। लाचार आदिलशाह ने नम्र होकर सन्धि का प्रार्थना पत्र औरंगजेब के पास भेजा और एक करोड़ मुद्रा देने का भी आश्वासन दिया।

इसी बीच औरंगजेब को एक पत्र मिला। यह दिल्ली से आया था और उसी के किसी विश्वासपात्र दरबारी ने इसे लिखा था। पत्र में लिखा था कि शाहजहाँ का कहीं पता नहीं। उनकी बीमारी का हाल बहुत दिनो से सुनता हूँ। ऐसा लगता है कि दारा ने उन्हें विष दे दिया। यदि आप अविलम्ब दिल्ली नहीं आते तो गद्दी का मालिक दारा ही होगा। वह हिन्दू धर्म में विश्वास करता है। ऐसे काफिर को बादशाह बनने से इस्लाम पर खतरा बढ़ेगा। आशा है आप इस्लाम तथा कुरान का अवश्य ख्याल करेंगे।

औरङ्गजेब की स्थिति अब विचित्र हो गयी। यदि वह दिल्ली जाता है, तो हाथ में आया बीजापुर भी निकल जाता है और यदि नही जाता तो दिल्ली का सिंहासन हाथ से चला जाता है। उसे यह भी सूचना मिली थी कि सिहासन के ही लिये बंगाल से शुजाअ तथा गुजरात से मुरादबख्श भी सेना लेकर आ रहे हैं।

अब उसको बीजापुर से सन्धि करनी ही पड़ी, साथ ही साथ उसने शिवाजी को भी लिखा कि कुछ ही वर्षों पूर्व (जब शाहजी बीजापुर में बंदी थे) हुई

सन्धि के अनुसार आप हमारे मित्र हैं। अतएव अपनी की गयी प्रतिज्ञा के अनुसार आपको हमारी सहायता करनी चाहिए। नर्बदा का दक्षिणी भाग मैं आपकी रक्षा में छोड़े जा रहा हूँ, ध्यान रखियेगा।

औरङ्गजेब ऐसा लिखे—शिवाजी के लिये? आश्चर्य की बात थी ही। उन्होंने थाह लगानी शुरू की। शीघ्र ही वह औरङ्गजेब की स्थिति से अवगत हो गये। उन्होने सोचा इस समय उसे दबाने का अच्छा मौका है। इसलिये उन्होने लिख भेजा, "मेरी सेना भातृद्रोह करनेवालो की सहायता नहीं करती।"

औरङ्गजेब इस उत्तर से कुढ़कर रह गया, किन्तु कुछ बोल न सका, चुपचाप दिल्ली की ओर चला गया। उसका मौन ही शिवाजी से बहुत कुछ कह गया। वे अब नयी योजना बनाने के प्रयत्न में लगे।

कार्य के अंत में उन्होने सोनदेव को सलाह के लिये बुलाया। मीनाजी भोसले तथा काशी भी ऐसे मौके पर उपस्थित थे, दो तीन और सज्जन थे जिनका उल्लेख करना बेकार है। यह मिलन गुप्त रखा गया।

शिवाजी ने देश की स्थिति से पहले सबको परिचित कराया, पुनः कहा, "स्थिति को देखते हुए हमलोगो को अब और अधिक सेना तथा धन की आवश्यकता है, क्योकि किसी भी दिन अब हमें मुगलो का सामना करना पड़ेगा। इसी समस्या को हल करने के लिये मैंने आप लोगो को यहाँ बुलाया है।"

"हम समस्या ओमस्या नहीं जानते। आप योजना बनायिए, हमें आज्ञा दीजिए—बन्दा हाजिर है।" काशी मस्ती से बोल उठा।

"हाँ-हाँ, बिल्कुल ठीक, योजना बनाने के ही लिये तो हम यहाँ एकत्र हुए हैं।" यह कहकर शिवाजी ने सोनदेव की ओर प्रश्नवाचक मुद्रा में देखा।

"मेरा तो विचार है कि अब हमें बीजापुर के क्षेत्र पर आक्रमण न करके मुगलो के ही क्षेत्र में धावा बोलना चाहिए क्योकि इस समय शाहजहाँ के पुत्रों में दिल्ली की गद्दी के लिए झगड़ा हो रहा है। वे खाली नहीं है। इधर का भी शासन सूत्र ढीला है। दूसरी बात यह है कि बीजापुर भी मुगलो के विरोध में है। ऐसा करने से उसकी सहानुभूति हमें मिलेगी।" सोनदेव ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए बड़ी व्यावहारिक बात कही।

"बिल्कुल ठीक, मेरी भी ऐसी ही धारणा है।...तो हमें अब आक्रमण का क्षेत्र निश्चित करना चाहिए। इसका ध्यान रखिए कि हमारा यह आक्रमण अपने राज्य की सीमा के विस्तार के लिये नही होगा, केवल सम्पत्ति के लिये होगा।...हमें धन एकत्र करना है और सेना बढ़ानी है।"

"तब तो चमारगुण्डा तथा रायसीन निकट के धनाढ्य परगने हैं। यहाँ का इस समय प्रबन्ध ठीक नहीं है।...और यदि अधिक सम्पत्ति की आवश्यकता है तो जूनार नगर को भी लूटना चाहिए।" सोनदेव ने प्रस्ताव किया।

"चलिये ठीक रहा। मीनाजी आप चमारगुण्डा की खबर लीजिए। काशी तुम्हारे हिस्से मे रायसीन का परगना पड़ता है और मै स्वयं जूनार नगर की ओर बढूँगा।" शिवाजी ने काम बाट दिया पुनः चेतावनी देते हुए बोले, "इतना अवश्य ध्यान रखिएगा कि हमारा उद्देश्य इस समय केवल लूटना है, अधिकार करना नही। इसलिये समय और शत्रु की दशा का सदा ध्यान रखिए। ऐसे समय पहुँचिए जब लोग बिल्कुल बेफिक्र हों, शक्ति कम लगे और लाभ अधिक हो।...अच्छा अब जायिए और अपने प्रयाण की स्वयं योजना बना लीजिए कि कब किधर और कैसे जाना है।"

मीनाजी भोसले तथा काशी के साथ सभी लोग उचित अभिवादन कर चले गये। शिवाजी ने खड़े होकर सबको विदा किया, केवल सोनदेव रुके रहे। कदाचित जूनार नगर को लूटने की कोई विशेष योजना इन्हें बनानी होगी, क्योंकि नगर के चारो ओर बहुत ऊँची दीवार है और प्रवेश द्वारो पर सदा पहरा रहता है। किन्तु है बड़ी सम्पत्ति इस नगर में।

oooooo

"जय माता गंगे" भीमा नदी के जल को मस्तक पर लगाते हुए मीनाजी भोसले बोल उठे। प्रत्येक हिन्दू जब किसी भी नदी का जल स्पर्श करता है तब उसे पवित्र गंगा की ही अनायास याद आ जाती है। भीमा के जल को छूकर, गंगा मैया को मस्तक झुकाकर उन्होने अपने सैनिकों से कहा, "नावें कम हैं इसलिये काशी को अपनी सेना लेकर पहले चले जाने दो।"

"लेकिन महाराज नाव के जाने और आने में तो घंटों का समय लग जायगा। रात आधी से अधिक जा चुकी है।...क्या हम सभी अपना सामान नाव पर रख दे और कूद पड़े भीमा में, चार हाथ में तो पार हो जायँगे।"

"शक्ति का विस्फोट भयंकर होता है, युवक। तैरकर शक्ति नष्ट करने से कुछ बिलम्ब से ही चलना हितकर है।" मीनाजी उसके कन्धे पर हाथ रखते हुए मस्ती से बोले।

काशी अपने सैनिको को नाव पर बैठाकर अपने साथी को नमस्कार कर चल पड़ा। 'भगवती त्राहिमाम' से बातावरण गूँज उठा। नावें आगे बढ़ी। कुछ दूरी तक पतवार चलने की आवाज साफ सुनायी पड रही थी, बाद में वह धीरे-धीरे मरणासन्न की अंतिम साँसो के समान समाप्त हो गयी, फिर भी नावें दिखायी पड़ रही थीं, तेज थी उनकी गति, क्योंकि जल्दी पहुँचना था और पुनः लौट आना था। देखते ही देखते तिमिराच्छन्न क्षितिज में नावें छोटी-छोटी काली लकीरों के समान समाप्त हो गयी। इस पार खड़े सैनिको ने सोचा, नावें अब पहुँच गयी, शीघ्र ही लौटेंगी—प्रतीक्षा वह हवा है जो समय के गुब्बारे को बहुत बढ़ा देती है।

कविता के जन्म के पहले कल्पना को जितनी आतुरता होती है उससे भी अधिक आतुरता मीनाजी भोसले के सैनिकों को नावे आते न देखकर हो रही थी। अभी चारगुण्डा जाना है। समय कम है।"—वे सोच रहे थे।

"वोऽऽ वोऽऽ नाव आरही है।" एक तेजी से चिल्लाया। सब तैयार हो गये, यद्यपि अब भी नाव के इस पार आने मे १५, २० मिनट की देर थी। जीने के लिये कभी आपने इतनी व्याकुलता न देखी होगी जितनी इन सैनिको में मरने के लिये थी।

नावे के आते ही सब चढ़ने लगे। "देखिए किसी नाव पर अधिक बोझा मत कीजिए। सभी पर बराबर बैठिए" एक तेज आवाज सुनायी पड़ी। कुछ सैनिक इस नाव से उस नाव पर गये और नावे आगे बढ़ी, उन्होने इस तट को वैसे ही छोड़ दिया जैसे जीर्ण शीर्ण शरीर को आत्मा छोड़ देती है।

नावे तेजी से चली जारही थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। जल में

उनका प्रतिविम्ब सोया पड़ा था, कभी-कभी हिल उठता था। मानो कोई चमकीला सपना मस्तिष्क में सोता सोता जाग उठता हो ।

००००००

"दीवार पार करना कठिन है, महाराज। इतनी ऊँचाई पर सभी चढ़ भी नही सकते।"

"सभी के चढ़ने की कोई जरूरत भी नहीं है। और तुम इतने ही से घबरा गये।" शिवाजी ने मुस्कराते हुए कहा। पहले उन्होंने स्वयं साधारण रूप से चढ़ने की कोशिश की, किन्तु व्यर्थ हुइे। दीवार एक दम सीधी और चिकनी थी। कही पैर रुकना कठिन था। कुछ क्षण तक वे समझ नहीं पाये। पुनः अधिकाश सैनिको को नगर द्वार की ओर भेजा और कहा, "नगर द्वार की कुछ दूरी पर आप लोग छिपे रहिएगा। मैं इधर रस्सियो की सीढ़ी (इसका मराठी नाम 'माला') लगता हूँ। इसमें कुछ समय लगेगा, फिर ज्योही मै इन चार छह लोगों को लेकर दीवार के उस पार कूद पड़ूँगा तो फिर जरा भी विलम्ब नहीं होगा। पहुँचते ही हमारी तलवार द्वारपालो का सफाया कर देगी। आप देखते रहियेगा ज्योंही द्वारपाल गिरें, चुपचाप बेधड़क नगर में घुस आयिएगा। शिवाजी ने योजना बताते हुए कहा। "महाराज आप रस्सियो के सहारे चढ़ तो जायेंगे पर कूदेगे कैसे ?" एक ने कहा। उसकी आँखो से आश्चर्य टपक रहा था।

"जैसे मै आपत्ति और संघर्ष में कूदा" हँसते हुए शिवाजी बोले। "इस दीवार से धरती पर ही नहीं आग में भी कूद सकता हूँ, और ऐसी दुनिया में कोई आग नही जिसमें मैं कूदूँ और वह बुझ न जाये। शिवाजी की वाणी ने वीरों के हृदय में नयी आग जला दी। कुछ को छोडकर लोग नगर के प्रवेश द्वार की ओर बढ़े।

रस्सी की सीढ़ी के सहारे पहले शिवाजी दीवार के पार हुए और भीतर एक पेड़ के पीछे छिप गये। इसके बाद, एक, दो तीन और फिर कई नगर के भीतर कूद पड़े। सब के हाथ में नगी तलवारे थी, जों भी जागता या ऊँघता दिखायी दिया उसका सिर धड़ से क्षण में अलग हुआ। चुपचाप वे उस प्रवेश

द्वार की ओर बढ़े, जहाँ पहुँचने की पहले से योजना थी। पहुँचते ही एक द्वार-पाल पर लपका। शिवाजी ने इशारे से उसे रोका और धीरे से कान में कहा, "यदि बाहर अभी हमारे सैनिक पहुँचे न होंगे तो द्वारपालो को मारने से भयंकर खतरा उत्पन्न हो जायगा। इस समय हम चारो ओर से घिरे हैं।"

"किन्तु महाराज सैनिक पहले से आगये हैं। बीस कदम पीछे दीवार के पास उनकी आहट सुनायी पड़ रही है।"

"तो फिर क्या देखते हो।" अचानक चार तलवारे साथ ही चार द्वारपालों पर गिरीं और फिर खेल समाप्त हो गया। बाहर के सैनिक मातृभूमि और भवानी के जय घोष के साथ तुमुल कोलाहल करते हुए नगर में घुसे।

अप्रेल की अघेरी रात थी। नगरवासी छत पर सो रहे थे। अचानक कोला-हल का लोग रहस्य तक न समझ सके। केवल भवानी और मातृभूमि की जय से इतना अनुभव सके कि शिवाजी आया है।

नगर में जलने वाली बत्तियां पहले मराठो ने बुझायी। इस घने अन्धकार में एक दूसरे को पहचानना भी कठिन था। खूब लुटाई हुई। हत्याएँ भी जितनी सोची गयी थी उससे अधिक हुई। जूनार नगर की सम्पत्ति ही नही पूरा नगर शिवाजी के अधिकार में आ गया, यद्यपि उनका यह उद्देश्य नहीं था।

इस घटना के दो दिन बाद, काशी भी शिवाजी से मिला। उसके आते ही वे उठकर खड़े हुए और बोले, "जीते रहो मेरे साथी, तुम्हारी योग्यता और पराक्रम की मै सराहना करता हूँ। तुम्हारे ऐसे वीर सैनिक पर हमें गर्व है। देश का इतिहास भी गर्व करेगा।"

"किन्तु सम्पत्ति अधिक नहीं मिली।"

"इससे क्या होता है, जो मिली वही बहुत है" शिवाजी ने उत्साह बढ़ाते हुए कहा। पुनः वे जिज्ञासु स्वर में बोले "मीनाजी भोसले का कुछ पता नहीं चला।" "वह तो महाराज चमारगुण्डा में आपका झंडा गाड़े बैठा है।"

"शाबाश, हमारे यहाँ भी एक से एक लोग है" शिवाजी हँस रहे थे, उनका मन हँस रहा था।

"इस नगर में क्या मिला ?" काशी ने जिज्ञासा व्यक्त की। "यही करीब

तीन लाख होण ( बारह लाख रूपये ) दो सौ घोड़े, बहुत से कीमती गहने तथा कपड़े ।"

"तब तो बहुत मिला महाराज ।" काशी ने प्रसन्न होकर कहा । "यह सब भवानी की कृपा है मित्र ।"

०००००००

लूट का समाचार औरंगजेब को मिला । वह तिलमिला उठा । आपसी संघर्ष में पड़ा था, फिर भी उसने एक बड़ी सेना भेजी तथा उस प्रदेश के अधिकारियों को कडी चेतावनी दी । अहमदनगर के किलेदार मुल्तफताखाँ ने कई छोटी मोटी लडाइयाँ लड़ी और अन्त में मीनाजी भोसले को चमारगुण्डा से भगा दिया । इधर राव कर्ण और शाइस्ताखाँ के आने से शिवाजी ने अपने को भी जुनार परगने में निरापद न समझा । भाई के अन्त से वे अहमदनगर जिले में चले आये । यहाँ भी मुगल सेना ने पीछा किया और शिवाजी को चारो ओर से घेर लिया । इस युद्ध में अनेक मराठे मारे गये । मुगलों ने दक्षिण पश्चिम की सरहद पर स्थान स्थान पर गारद बैठवा दी । ये सैनिक टुकड़ियाँ बहुधा मराठों के ग्रामो में घुस जाती थी । मनमाना लूट होती थी । गाँव का गाँव जला दिया जाता था । रियाया और गाय बछड़ो को ये पकड़ ले जाते थे । सिह घेरे में था, जंगल जल रहा था ।

औरंगजेब के अविम्बिल शासन तथा मजबूत बन्दोबस्त से शिवाजी को हानि हुई ।

एक दिन शिवाजी ने सोचा कि इस समय मुगलो से सन्धि करने में ही योग्यता है । उन्होने सन्धि का प्रस्ताव लेकर एक दूत को नासिरीखाँ के पास भेजा । नासिरीखाँ ने उस प्रार्थना पत्र को औरंगजेब के पास भेज दिया, फिर भी उसका कुछ उचित जबाब नहीं मिला । किन्तु लड़ाई बन्द हो गयी । सैनिक एक दूसरे की सीमा में आने जाने लगे ।

इस संधि प्रस्ताव में भी शिवाजी की चाल थी । मुगलों और मराठों के आक्रमण से बीजापुर जीर्ण हो गया था । अधिकाश किले टूट गये थे । स्थिति

अच्छी न थी। उसने भी मुगलों से सन्धि कर ली थी। अतएव उसे हड़पने तथा अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिये संधि आवश्यक थी। जब शिवाजी के प्रार्थना पत्र का कोई उत्तर नहीं आया तब उन्होने रधुनाथ बल्लाल कोरडे को औरङ्गजेब के पास भेजा।

औरङ्गजेब भी सन्धि करना ही चाहता था, क्योकि स्थिति अनुकूल करने के लिए यह आवश्यक थी। शिवाजी को मिला लेने से दक्षिण में कोई उसका विरोधी नहीं रह जाता। उसने जनवरी सन् १६५७ को शिवाजी के विद्रोह को क्षमा करते हुए सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार किया। मराठा प्रदेश पर शिवाजी का अधिकार स्वीकार किया गया। इधर शिवाजी ने प्रतिज्ञा की कि वे सदा मुगल राज्य की सीमा की रक्षा करेंगे, युद्ध के समय अपने पाँच सौ अश्वारोही औरंगजेब की अध्यक्षता में भेजेंगे तथा सोनाजी पण्डित को अपना दूत बनाकर सदा मुगल दरबार में रखेंगे।

सन्धि तो हो गयी, पर दोनों ने एक दूसरे पर कभी विश्वास नहीं किया। औरंगजेब की सदा कड़ी नजर शिवाजी पर थी। उसने मीरजुमला को सितम्बर १६५७ को एक पत्र लिखा। जिसकी प्रमुख पंक्ति थी, "नासिरीखाँ के चले आने से यह प्रान्त खाली हो गया है। खबरदार रहना, वह कुत्ते का बच्चा मौके की तलाश में है।"

औरंगजेब ने आदिलशाह को भी लिखा। "इस देश की रक्षा करना। शिवजी ने इस देश के कितने ही किलों पर चोरी से दखल कर लिया है। उसको उन सबसे हटा दो, अगर शिवाजी को नौकर रखना चाहो, तो उसे कर्नाटक में जागीर दो, ताकि वह बादशाही राज्य से अलग रहे और उपद्रव न कर सके।

इसी बीच की एक और घटना है। फतहखाँ सीदी बीजापुर का जागीरदार था। कोकण प्रदेश में उसकी जागीर थी। अपने पराक्रम का उसे गुमान था। अपने आगे वह शिवाजी को तृणवत समझता था। मराठो का सामना करने की उसकी बड़ी इच्छा थी। सयोगवश श्यामराजे पंत के नेतृत्व में एक सेना सीदी पर चढ़ ही आयी। बड़े वेग से आगे बढ़ता श्यामराजे पंत जागीर के मध्य भाग में चला गया। फतहखाँ ने मराठो के पृष्ठ भाग पर बड़े जोर का हमला

किया। अचानक पीछे के आक्रमण से मराठे तिलमिला उठे। कुछ समय तक कुछ करते धरते न बना। लाचार वे पीछे हटे। सीदी का आक्रमण प्रबल था। मराठे किटकिटा रहे थे, किन्तु सेनापति की आज्ञा थी पीछे हटने की। कई सैनिकों ने विरोध भी किया, "मराठे पीछे नही हटते हैं।" "बको मत, यह सेनापति की आज्ञा है।" श्यामराजे पत तड़पा।

निराश सेना पीछे हटती चली गयी। कुछ लोगो का तो यहाँ तक कहना है कि सेना सीदी के दुर्ग तक चली गयी। यहाँ वह पहले से ही तैयार था। भयकर लड़ाई के बाद मराठे हारे।

०००००००

इस हार का समाचार जब शिवाजी को मिला तो वे बडे ही चिन्तित हुए। पहले उन्होने सोचा कि मेरी सेना की शक्ति कम थी, किन्तु जब उन्हे यह मालूम हुआ कि पेशवा की मूर्खता के कारण हार हुई, तो उन्हे बडा पश्चाताप हुआ। पेशवा के कुबुद्धि की उन्होने घोर भर्त्सना की और मोरो त्रिमुल और रघुनाथ पत को अविलम्ब बुलवाया।

आज्ञा पाते ही दोनो उपस्थित हुए। शिवाजी ने कहा "आपने पराजय की कहानी तो सुनी ही होगी, हमारी यह पहली पराजय है। जिसमे हम बुरी तरह हारे। आप यह भी जानते है कि हार का कारण हमारी निर्बलता नही, किन्तु मूर्खता है।" शिवाजी की आवाज पश्चाताप से भरी, गम्भीर थी। दोनो सिर नीचे किये चुपचाप सुन रहे थे। जीभ का काम आँखे कर रही थी, मानो वह पूछ रही थीं कि अब क्या करना चाहिये। शिवाजी ने पुनः कहा, "मै इस पराजय को सह नहीं सकता। इस हार का बदला आपको लेना होगा।...मोरो त्रिमुलजी श्यामराजे के पद पर मै आपकी नियुक्ति करता हूँ। क्या यह काम आप कर सकते हैं?"

"बड़ी आसानी से।" मोरो त्रिमुल बोले।

"और रघुनाथ पंत जी आपकी अधीनता मे सेना सीदी का दमन करने जायेगी। आपको यह स्वीकार तो होगा ही।"

"अवश्य महाराज, इससे बढ़कर मेरे लिये और क्या हो सकता है।" मस्तक झुकाते हुए रघुनाथ पंत बोले। "अच्छी बात है। जितनी सेना लेनी हो ले लीजिए और युद्ध की व्यवस्था कीजिए।"

दोनों नमस्कार कर चले गये। इसके बाद एक द्वारपाल आया और शिवा जी से बोला, "महाराज कुछ मुसलमान सैनिक आपसे मिलना चाहते हैं।"

"सबको सम्मान पूर्वक रुकने को कहो,मैं अभी आता हूँ।" मुसलमान सैनिक और वह भी अचानक क्यो आये ?

शिवाजी मुस्कराते हुए सबके सामने उपस्थित हुए। मुसलमान सैनिकों का सरदार आगे बढ़ा और मस्तक झुकाकर बोला, "महाराज हम सब आपके यहाँ नौकरी करना चाहते है।"

"अब तक आप किस राज की सेवा कर रहे थे ?" बड़ी मिठास थी शिवा-जी की बोली में।

"अब तक हम बीजापुर के सेवक थे। अब उनकी हालत अच्छी नहीं है। अली आदिलशाह के व्यवहार ने लोगों में असन्तोष पैदा कर दिया है। दरबार में भी विरोध है, कुछ लोग सुलतान को गद्दी से हटाना चाहते है तथा कुछ उनका समर्थन करते है। सरदार कहता जा रहा था कि शिवाजी ने बीच ही में पूछा, "आप उनमें किस दल के है ?"

"मै तो सिपाही हूँ। जिसका नमक खाता हूँ, उसी की सेवा करता हूँ। मुझसे किसी दल विशेष से मतलब नहीं। जब तक सुलतान का नमक खाता था, उसकी सेवा में सदा सिर हाजिर रखता था। अब उसने हम लोगों को निकाल दिया।"

"क्यों ?" शिवाजी ने कुछ विशेष जानने की इच्छा से पूछा।

"अब उसका खजाना खाली हो चला है। सेना में छटनी हुई और हम निकाल दिये गये। बड़ी उम्मीद लेकर आपके पास आये हैं।"

"कोई हरज नहीं, आप सभी हमारे यहाँ कार्य कीजिये। आपको जो सहू-लियत बीजापुर में मिलती थी, वही हमारे यहाँ भी मिलेगी।" शिवाजी की वाणी में अपनत्व साफ दिखायी दिया।

"शिवाजी राजा...जिन्दाबाद" मुसलमान सैनिक मारे खुशी के चिल्ला उठे। शिवाजी मुस्करा रहे थे। वे बोले "और क्या समाचार है बीजापुर का ?"

"बहुत खराब है महाराज, वजीर खाँमुहम्मद को सुलतान ने विद्रोहियों का नेता समझा। उसे धोखा देकर कैद किया और हाथी से कुचलवाकर मरवा डाला। तब से उसका पुत्र खवासखाँ बदला लेने की कोशिश कर रहा है। षड्यंत्र रचा जा रहा है। मुहम्मद आदिलशाह के जमाने की बात अब कहाँ रही ?" सरदार को बीजापुर के परिवर्तन पर क्षोभ नहीं, तो आश्चर्य अवश्य था।

"सभी दिन समान नहीं होते। आज हम राजा हैं। कल तुम राजा हो सकते हो। परिवर्तन तो है ही...और याद रखो वह जमाने में जी नहीं सकता, जिसमें जीने की ताकत नहीं है। अच्छा, आप सभी श्री रघुनाथ बल्लाल कोरडे से मिलिए, वे ही आपकी सेना के अध्यक्ष है। जायिए, खुदा हाफिज़।"

'खुदा हाफिज' मुसलमान सैनिक चले गये। शिवाजी भी उस स्थान से हटने को हुए कि एक आदमी ने कुछ कहने की आज्ञा माँगी। इस व्यक्ति को लोग गोमाजी नायक कहते हैं। तरुण और हिम्मती हैं यह। इसने शिवाजी से कहा कि मुसलमानों को सेना में भरती करना घातक है। ये कभी हमारा साथ नहीं देंगे।"

"व्यक्ति घातक नहीं, उसके विचार घातक होते है। इसलिये व्यक्ति को भरती करना घातक नही होगा, यदि उसके विचारो पर अंकुश रखा जाय।... और मेरी नीति तो 'कण्टकेनैव कण्टकम्' की है, लोहा से लोहा काटनेवाली।

युवक चुप था।

००००००

जिस समय रघुनाथ पंत तथा मोरो त्रिमुल सीदी से बदला लेने पहुँचे। उस समय वह विजय के उल्लास में मौज ले रहा था। मामूली कार्य तो उसने किया नहीं था। उसने मरठों के हराया था। शेर के दाँत खट्टे किये थे। इतने पराक्रम पर खुशियाँ मनाना बुरा क्या ?

किन्तु इन दोनों रणपुंगवों के अचानक आक्रमण ने उसके होश दुरुस्त

कर दिये। फिर भी उसने डटकर सामना किया। रघुनाथ पंत के घातक से घातक आक्रमण का उसने अच्छा जबाब दिया। किन्तु पल्ला इस बार मराठो का ही भारी था।

युद्ध चलता जा रहा था। इसी बीच वर्षा ऋतु आ गयी। घटाएँ आकाश में उमड़े लगीं। घनघोर वर्षा होने लगी। इस पहाड़ी प्रदेश में वर्षा इतनी होती है, कि युद्ध क्या साधारण कार्य करना असम्भव हो जाता है। विवश हो युद्ध बन्द कर देना पड़ा। सीदी की पराजय कुछ काल के लिये टल गयी। आकाश के पानी ने रघुनाथ पंत की कामनाओं पर पानी फेर दिया।

——— ——

६

# शिवाजी और अफजलखां

सन् १६५८ के आरंभ में ही 'औरंगजेब के दक्षिण से चले जाने के बाद बीजापुर में कुछ दिनों तक शांति थी। यों तो शक्ति अब पहले से बहुत कम हो गयी थी, फिर भी मंत्री खवासखाँ की योग्यता से राजकार्य सुचारुरूप से चलता था। राजमाता बड़ी साहिबा भी अत्यन्त तेज एवं बुद्धिमती स्त्री थी। राजकाज बड़ी होशियारी से चलाती थीं। खवासखाँ की सहायता से उन्होंने अपने आस पास के छोटे छोटे सामन्त राजाओं को दबाने की योजना बनायी थी। कहते हैं कि उन्होंने कई स्थानों पर ऐसा करने के लिये सेनाएँ भी भेजी थी। किन्तु उनका सबसे बड़ा शत्रु शिवाजी था, जिसने उनके अनेक किले अपने अधिकार में कर लिये थे। उसकी निरन्तर बढ़ती शक्ति राजमाता के चिन्ता का कारण थी।

एक दिन राजमाता बड़ी साहिबा ने खवासखाँ से गम्भीर मंत्रणा की। "शिवाजी को दबाने का क्या उपाय है?" वार्ता का बस एक ही विषय था। खवास खाँ ने कहा, "शिवाजी के दबाने के लिये छल तथा बल सबका उपयोग करना चाहिए।

"बल का उपयोग करना तो ठीक नहीं है क्योंकि हमारी शक्ति इस समय कमजोर है। औरंगजेब भी मौका पाते ही हमें दबाने दक्षिण आयेगा। उस के लिये हमें शक्ति संगठित रखनी चाहिए। शिवाजी पर आक्रमण करने से हमारी शक्ति का ह्रास होगा।" मालिका ने कहा।

"अब तो उस पर काबू पाना नामुमकिन।" खाँ बोला।

"तो मुझे इसी नामुमकिन को मुमकिन बनाना है।"

"लेकिन, मलिके आलम! शिवाजी बड़ा खतरनाक आदमी है। बिना परास्त हुए वह कभी चंगुल में आनेवाला नहीं है।"

"क्या शाहजी पर दबाव डालने से काम नही बनेगा?"

"इस तरीके से तो जहाँपनाह (अली आदिलशाह) को भी कामयाबी हासिल नहीं हुई।" खाँ ने लाचारी प्रकट करते हुए कहा। बड़ी साहिबा बड़े असमंजस में पड़ीं। क्या सचमुच उस पर आक्रमण करना पड़ेगा? पर ऐसा ठीक नहीं। एक बार पुनः शाहजी को बुलाकर समझाना चाहिए। हो सकता है, काम बन जाय। मालिका को अब भी आशा थी। किन्तु खवासखाँ शाहजी के सम्बन्ध को अच्छी तरह जानता था।

राजमाता की आज्ञा से दूसरे दिन शाहजी को बुलाया गया। इस बुलाहट के कारण की ओर उनका ध्यान नही गया। सोचा किसी प्रान्त के शासन के सम्बन्ध में कोई विशेष बात होगी। पर यहाँ तो वही पुरानी बात थी, पुरानी शिकायत थी। शाहजी को संबोधित कर बड़ी साहिबा बोलीं—"शाहजी तुम्हारे लड़के ने राज में बगावत शुरू कर दी है और तुम चुप हो।"

"क्या करूँ, मलिकेआलम! उस लड़के पर अब मेरा कोई अधिकार नही। मैंने कई बार उसे समझाया, पर उसने मेरी एक न सुनी।" अपनी विवसता व्यक्त करते हुए शाहजी ने कहा। उनकी आकृति से लाचारी साफ जाहिर हो रही थी।

"अजीब बात है। तुम्हारा लड़का और तुम्हारे कहने मे नही। मैं तो समझती हूँ कि तुम उस पर दबाव डालो, तो वह अवश्य तुम्हारी बात मान जायगा। उसे समझाओ कि जिस थाली में खाया जाता है, उसमें छेद नही किया जाता। जिसके पैसों से जिन्दगी पलती है, उसके विरुद्ध तलवार नही उठायी जाती। बीजापुर ने तुम लोगों के साथ जो भलाई की है, क्या यह बगावत उसी का बदला है? अपने स्वार्थ के लिये दूसरो के किये उपकार को भुला देना आदमी की निगाह में ही नहीं, ईश्वर की निगाह में भी गुनाह है, और इस गुनाह की

सजा जानते हो क्या है ?" बड़ी साहिबा ने एक छोटा सा प्रभाव शाली भाषण दे डाला। अन्तिम वाक्य कहते समय उनकी प्रश्न वाचक मुद्रा और वाणी की गम्भीरता मन के भावो को व्यक्त करने मे अधिक समर्थ थी।

शाहजी समझ नही पा रहे थे कि वह मलिका को अपनी लाचारी का अनुभव कैसे कराएँ। उन्होने विनम्र होकर कहा—"इस गुनाह की सजा एक ही है, और मै उसे जानता हूँ। मेरा ख्याल है शिवाजी भी जानता होगा। इतना होने पर भी मै कुछ कर नही सकता। लाचार हूँ। मुझे क्षमा कीजिए मलिके आलम।"

शाहजी की विवसता देखकर बड़ी साहिबा कुछ समय तक चुप सोचती रहीं, फिर बोलीं—"अच्छा जाओ, यदि तुम कुछ नहीं कर सकते, तो मै ही करूँगी।" शाहजी चुपचाप चले गये। बड़ी साहिबा ने वजीर खवासखाँ से बातचीत पुनः आरम्भ की। "शाहजी ने तो अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। अब लगता है शिवाजी को गिरफ्तार करके ही मंगवाना होगा।"

"यह तो मैने कह ही दिया था मलिकेआलम, बिना परास्त हुए वह काबू में आने वाला नहीं।" खवासखाँ ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा।

"तब अपने दरबार में कौन ऐसा बहादुर है, जिसे यह कार्य सौपा जाय ?"

"यों तो कई हैं, लेकिन उन्हें कामयाबी हासिल होगी या नहीं! नहीं कहा जा सकता। अच्छा हो किसी दिन दरबार बुलाया जाय और उसी में इसका निर्णय कर लिया जाय।"

दो दिन बाद दरबार बुलाया गया।

सन्ध्या के कुछ पहले ही लोग जमा होने लगे। दरबार किसलिये बुलाया गया है, इसकी सूचना लोगों को नहीं थी। कुछ लोग उड़ती खबर जानते थे। फिर भी लोगो में जिज्ञासा थी, कुतूहल था। जो सुनता था, वह चला आ रहा था। सरदार उमराव जागीदार सभी उपस्थित हुए। दरबार आरम्भ हुआ। बड़ी साहिबा रेशमी परदे के भीतर सिहासन पर विराजीं। खवासखाँ बाहर ऊँची कुर्सी पर बैठा था और मलिका से आज्ञा लेकर कार्य संचालन करता था।

दरबार प्रारम्भ होते ही मलिका परदे के भीतर से बोली। उनकी आवाज

लोगों को साफ सुनायी पड़ती थी। लोग बिल्कुल शान्त थे। मल्लिका बो ल रही थीं, "मेरे नेक दरबारियों आप जानते हैं कि शाहजी के पुत्र शिवाजी ने हमारे राज में बगावत कर दी है। हमारे बहुत से किले अपने अधिकार में कर लिये है। हमने कई बार उसे समझाने और दबाने की कोशिश की, किन्तु सब बेकार गयी। इस प्रकार की बगावत कभी भी बीजापुर सरकार स्वीकार नही कर सकती। उसकी इस गुस्ताकी के लिये हम कड़ी से कड़ी सजा देंगे। क्या आप में से कोई ऐसा बहादुर है, जो उस दग़ा और फरेब के पुतले को जिन्दा या मुर्दा लाकर हमारे सामने हाजिर करे?"

सभा में सन्नटा छा गया। लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे। किसी में आगे बढ़ने का भी साहस नहीं था। आज उनके हिम्मत की परीक्षा थी, किन्तु किसी के मुँह से बोली न निकली। अन्त में बाजी घोरपड़े ने कहा, "मलिके आलम, हम सब आपका अन्न खाते है। आपकी जो आज्ञा होगी हमें स्वीकार है। लेकिन शिवाजी बहुत ही धोखेबाज आदमी है। उसे लड़ाई लड़कर परास्त करना बहुत कठिन है।"

घोरपड़े अपनी बात पूरी कर नही पाया था कि एक उमराव बोला, "मेरी गुस्ताकी माफ करे, वह अपने पहाड़ी इलाके का जर्रा जर्रा जानता है। उससे खुली लड़ाई लेना खतरे से खाली नहीं है।" सभा ने सिर हिलाकर इस उमराव का समर्थन किया। इन लोगो की भीरुता और कायरता पर खवासखाँ खीझा उठा। वह तड़पा, "व्यर्थ की बकवास बन्द करो। अपनी बुजदिली पर पद डालने से कोई फायदा नहीं। आज बीजापुर सरकार को मालूम हो गया कि अब उसके यहाँ कोई ऐसा बहादुर सरदार नहीं रहा, जिसके खून में उबाल हो, जिसकी तलवार पर पानी हो, जो अपनी जान और शान को जिन्दगी से ज्यादा कीमती समझता हो।" वह दरबारियों को सम्बोधित करके कहता गया, "लानत है आपकी जिन्दगी पर। कभी जिनके हमले का नाम सुनकर दुश्मन पनाह माँगता था। अब वे मुँह लटकाये सबके सब बैठे हैं और एक मामूली जगीरदार का जंगलों में घूमने वाला छोकड़ा बगावत करे। उसकी ऐसी हिम्मत? एक बार आप अच्छी तरह सोच लीजिए। अपनी कूबत आजमा लीजिए। सामने पान

का बीडा रखा है। जिस किसी में शिवाजी को गिरफ्तार करने की हिम्मत हो वह पान का बीड़ा उठा ले। यदि आप ऐसा न कर सकें, तो अपनी अपनी तलवार यहाँ रख दें और बुरका ओढ़ कर घर मे जा बैठें।"

खवासखाँ की यह तडपती आवाज सुनकर दरबारियो के होश गुम हो गये। सब चेहरा नीचे किये बैठे रहे, जैसे हरी भरी खेती पर पाला मार गया हो। इसी बीच एक लम्बा तगडा आदमी अपने स्थान से उठा और आगे बढकर उसने पान का बीडा उठा लिया। उसका तन बलिष्ठ था। भुजाएँ लम्बी थी। तन के आबनूसी रग मे बडी बडी खौफनाक आँखे आकृति को जैसे क्रूरता प्रदान कर रही थी। यह अब्दुला भटियारा है? भोजन बनाने वालो के खानदान का। दरबारी सम्मान इसे अफजलखाँ के नाम से पुकारता है। पिछली मुगलो की लडाई मे उसने अच्छा पराक्रम दिखाया है। मैसूर विजय के समय भी लोगो ने उसका लोहा माना था। फिर उसे प्रसिद्धि मिली। इस प्रसिद्धि मे उसके बहादुरी की मात्रा उसकी खैरख्वाही से अधिक नही थी।

वह पान का बीडा खाते हुए जोर से हँसा और बादलो सा गरजते हुए हुए बोला, "मलिकेआलम की कदमों मे हमारा सिर हाजिर है। जब तक बीजापुर मे यह खिजमतगार जिन्दा है, तब तक किसी की सिर उठाने तक की हिम्मत नही। और...वह छोकडा? उसे तो अच्छी तरह मजा चखाऊँगा। जीते जी घोड़े पर बैठे ही बैठे उसे बाँध कर खिजमत मे हाजिर करूँगा।"

"शाबाश, अफजलखाँ। शाबाश! तुम्हारी बहादुरी का कौन नही लोहा मानता? बीजापुर को भी तुम्हारे ऐसे उमराव पर नाज है।" बडी साहिबा बोलीं।

अफजलखाँ भरी सभा मे शेर सा खडा था। जैसे उसने कोई लडाई जीत ली हो। इसके अतिरिक्त सभी दरबारियों का मुँह उतरा था, चेहरा नीचा था। सिहासन से उतर कर मलिका के भीतर जाते ही वजीर के द्वारा दरबार समाप्त होने की घोषणा हुई। लोग चुपचाप चलते बने। आज कोई किसी से बोल नहीं रहा था। लोगों के जाने के बाद भी खवाशखाँ के अतिरिक्त दो व्यक्ति अन्त तक थे—अफजलखाँ और शाहजी।

००००००

शिवाजी पर चढ़ाई की योजना होने लगी। बड़ी साहिबा १० हजार से अधिक घुड़सवार अफ़जलखाँ को देने के लिये तैयार न थी। किन्तु इतने से क्या काम चलेगा? शिवाजी की सेना इससे बहुत अधिक है। दस हजार से अधिक तो उसके अपने घुड़सवार हैं। जावली विजय के बाद साठ हजार पैदल मावलों की सेना भी अब उसके अधिकार में है। बड़ी साहिबा को अपनी शक्ति जैसे बहुत कम लग रही थी। वह असमंजस मे थी। इसी बीच खवाशखाँ एक भूली बात याद दिलाते हुए बोला—"इसके अलावा यहाँ से निकाले लड़ाकू पठानों की भी एक फौज शिवाजी के पास है।" रानी की चिन्ता और बढ़ी। उन्होने अफ़जलखाँ को बुलवाकर बड़े प्रेम से समझाते हुए कहा—"बीजापुर की हालत तुमसे छिपी नहीं। इस समय हम तुम्हें १० हजार से अधिक घुड़-सवार नही दे सकते। इसीसे तुम्हें कामयाबी हासिल करनी है...। लेकिन...।" अभी बडी साहिबा कह ही रही थी कि अफ़जल खाँ ने बड़ी शान से कहा—इतनी सेना तो काफी है, मलिकेआलम। मुझे तो आपके आशीर्वाद की शक्ति चाहिए, और वह मिल चुकी। अल्लाह ने चाहा तो चुटकी बजाते हुए उस पहाड़ी कुत्ते को पकड़ लाऊँगा।" उत्साह से उसका सीना फूला था। मूँछें बिना ऐंठे ही तनी थी।

"तुम्हारी हिम्मत तथा बहादुरी की मैं तारीफ करती हूँ, लेकिन शिवाजी को जैसा तुमने समझ रखा है, वह उससे कही अधिक है। उसे कमजोर मत समझो। मेरी राय से तो उससे लड़ने से अच्छा दोस्ती के बहाने भुलावा देकर कैद करो। क्यो क्या ख्याल है।"[1]

"जैसा हुक्म होगा मलिके जहाँ का, वैसा ही करूँगा। उसने मस्तक झुकाते हुए स्वीकार किया।

---

**१. बड़ी साहिबा ने शिवाजी को धोखा देकर पकडने के लिये अफ़जलखाँ को सलाह दी थी, जिसका जिक्र उस समय के अंग्रेज कोठी वालों की चिट्ठियों में साफ तौर पर है—य० स०**

आज दूसरा दिन है—प्रयाण का दिन। वसंत ऋतु की सुनहली धूप से दिन नहा उठा है। आज अफजलखाँ की सेना शिवाजी का दमन करने जा रही है—बीजापुर में बस एक यही चर्चा है। उमराव सरदार और जमीदारो में विशेष हलचल है। सभी अफजल को अच्छी तरह जानते है। उसकी क्रूरता का स्मरण आते ही लोगो के रोगटे खड़े हो जाते है। "शम्भाजी को इसी ने गोली मारी थी। उस बेचारे निरपराध वजीर खान मुहम्मद की इसी ने हत्या की थी। यह आदमी नहीं है। पशु है पशु।" लोग आपस में कहते है। पूरे नगर में ऐसा वातावरण बन गया हैं, जो अफजल से भी अधिक डरावना है। शाहजी का भी हृदय रह-रहकर कॉप उठता है। उन्हें लगता है कि मृत्यु कराल जिह्वा फैलाये मेरे पुत्र को निगल जाने के लिये जैसे आगे बढ़ने को तैयार है। किन्तु वे कर क्या सकते है? इस समय उन पर बीजापुर सरकार की कड़ी नजर है।

अचानक नगर में एक समाचार फैल गया। ज्यों ही सेना महल से निकली, पताका टूटकर गिर पड़ी। बड़ा हाथी आगे बढ़ने के बजाय पीछे लौट आया। गजब हो गया। ऐसा अपशकुन! या अल्लाह क्या होने वाला है। सैनिकों का मन भविष्य की अमांगलिक कल्पना से काँपने लगा। सरदारो ने मिलकर खाँ से विनती की, "परवरदिगार, शकुन अच्छा नहीं है। इस समय चलने के लिये अल्लाह की मंशा नहीं।" अफजलखाँ भी डरा। प्रस्थान स्थगित कर दिया गया। लोग अपने-अपने निवास स्थान पर लौट गये।

धीरे-धीरे संध्या की शांत चादर ओढ़ नगर का कोलाहल सोने लगा। रात आयी। तारे जागे। निस्तब्धता सचेत हुई। अपशकुन की धारणा भयंकर रूप ले अफजलखाँ के मस्तिष्क में घूमती रही। उसकी गति में विराम नहीं था। भविष्य की अशुभ कल्पना उसे रह-रह व्याकुल कर देती थी। महल में वह आज अत्यधिक व्यग्र एवं उदास दिखाई देता था। दासियां की क्या रानियों की भी मजाल नही जो इस समय खाँ साहब से कुछ बोले। वह बिना कुछ खाये-पीये ही बिस्तर पर पड़ गया। समय अपनी चाल से चलता रहा। घंटों बीत गये, पर उसे नीद नहीं आयी। वह सोचता—क्या सचमुच मेरी पराजय

होगी ? मैं क्या जिन्दा नहीं लौटूँगा ? यह महल, वैभव, विलास सब कुछ यहीं रह जायगा और मै चला जाऊँगा ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। अल्लाह अवश्य मेरी मदद करेगा। ऐसा ही सोचते उसने आधी रात बिता दी। अन्त में थक कर वह सो गया, मानो उसकी व्याकुलता उसके मस्तिष्क में बेहोश हो गयी हो।

पिछली रात उसने स्वप्न देखा कि वह मस्जिद में दुआ माँगने गया है। वह इबादत कर रहा है। पीछे उसके सैनिक खड़े है। सब चुप हैं। फिर जब वह मजार पर अपना मस्तक झुकाना चाहता है तब देखता है कि मेरा सिर ही नहीं है। वह जोर से चीखने की चेष्टा करता है। पीछे खड़े सैनिकों में होहल्ला मच जाता है। सब भाग जाते हैं।

घबराकर अफ़जलखाँ की नीद खुल गयी। अभी एक घड़ी रात बाकी है। उसने सामने बड़ी खिड़की की ओर देखा। आकाश में तारे मुस्करा रहे थे। हलकी हवा बह रही थी। प्रकृति की इस बेहोश शांति में भी उसके चित्त की अशांति ने उसे चैन नही लेने दिया। वह करवटें बदलता रहा। सोचता रहा—क्या होगा ? मृत्यु की आशंका मृत्यु से कम दुखदायी नहीं होती। उसकी चिन्ता बढ़ती गयी। कंठ सूखने लगा। वह अत्यन्त व्यग्र हो बोला—'पानी।' दासियाँ पानी लेकर दौड़ी। कई बेगमो की भी नीद खुल गयी। सबने आकर विस्तर घेर लिया। दो घूँट जल पीने के बाद वह कुछ समय तक शात रहा। फिर अचानक कडकते हुए बोला—"दूर हटो मेरी आँखो के सामने से।" ऐसा क्यों ? किसी को पूछने की हिम्मत नहीं। खाँ साहब का चित्त कुछ खिन्न है, यह सोचकर सब चुपचाप हट गयीं। दूर से अजान की आवाज सुनायी पड़ी।

सूर्य की पहली किरण के साथ ही हृदय में अपरिमित ज्वाला लेकर खाँ उठा। अल्लाह से इबादत की और सभी बेगमों को महल के मैदान में एक पंक्ति में खड़े होने का हुक्म दिया। सब थर्रा उठीं। या खुदा क्या होने वाला है ! फिर भी खाँ का हुक्म था। सब खड़ी हुईं।

सभी किसी और आज्ञा की प्रतीक्षा में थी। इतने में खाँ मैदान मे आया।

उसके पीछे सरदार और प्रमुख सैनिक भी थे। आते ही उसने बर्बर स्वर में कहा—तुम सबके सिर अब धड़ से अलग होने वाले है। इसके पहले यदि तुम चाहो, तो अल्लाह से अपनी जिन्दगी की आखिरी दुआ कर लो।"

खाँ की आवाज सुनते ही सबके रोंगटे खड़े हो गये। सब सन्न हो गयीं। बेगमें थर-थर काँपने लगीं। आज क्या हो गया है खाँ को? वे सब अत्यन्त कातर दृष्टि से उसकी ओर देखती रहीं। अफजलखाँ इस समय दानव से भी दुर्दम, पशु से भी बर्बर, पत्थर से भी कठोर दिखायी दे रहा था। किसी को कुछ पूछने की हिम्मत नही हो रही थी। फिर भी बेगमों की पंक्ति से "एक ने आगे आकर अत्यन्त नम्र स्वर में पूछा—मेरे दिल के शाहन्शाह, आखिर इसमें मेरा कसूर क्या है?"

'कसूर' वह जोर से हँसा। "कसूर तुम्हारी उस मुहब्बत का है, जो तुम्हारे खूबसूरती के प्याली से सदा शराब की तरह छलकती रही और जिसे मैं पीता रहा। आज भी मुझपर उसका नशा है। क्या मैं इस नशे में शिवाजी भोसले को गिरफ्तार कर सकूँगा? क्या मेरी तलवार पूरी आजादी से चल सकेगी? मैं सोचता हूँ—कभी नहीं। इसीलिये बाबर ने जिस प्रकार साँगा पर चढ़ाई करने के पहले अपने शराब के प्यालो को तोड़ डाला था, वैसे ही मैं भी मुहब्बत की शराब की इन खूबसूरत प्यालियों को तोड़ डालूँगा।...तुम सब अपनी गर्दन झुकाओ।" उसकी वाणी में हृदय की भावुकता भी जैसे क्रूर बनकर आयी थी।

सब ने अपनी गरदन झुका ली। जो बेगम पहले बोली थी वह पुनः बोली—"लेकिन प्याला टूटने के बाद भी शराब धरती पर पड़ी रह जायगी।" "किन्तु वह शराब मैं पी नहीं सकूँगा।" उसकी खूँख्वार आँखे जैसे जघन्य पाप के दर्शन के लिये प्रस्तुत थीं। उसके हाथ में चमकती तलवार रह-रहकर काँप उठती थी। अन्त में अल्लाह को स्मरण करते हुए पाशविता की बलिवेदी पर बलिदान आरम्भ किया। एक, दो, तीन—और बारी-बारी से तिरसठ तक सिर धड़ से अलग हो गये। अपनी तिरसठ प्रिय बेगमों की हत्या अफजलखाँ ने केवल

इसलिये की कि किसी के मोह एवं ममता के बन्धन से वह बँध न सके चन्ता से मुक्त होकर वह शिवाजी का सामना करे[1]।

००००००

सितम्बर सन् १६५६ में अफजलखाँ बीजापुर से चल पड़ा। वर्षा समाप्त हो चली थी। मौसम सूखा था। उसके सामने पहली समस्या अन्न सेना के खर्च की थी। १० हजार सैनिको पर करीब २½ लाख रुपया मासिक का खर्चा था। इसी से उसने कुछ लूट करने की योजना बनायी। हिन्दुओं के तीर्थ स्थान धन से भरे थे। प्रत्येक बड़े मन्दिर में करोड़ो की सम्पत्ति रहती थी। इसके अतिरिक्त इन तीर्थ स्थानों में अनेक धनी व्यापारी तथा महाजन भी रहते थे। धन एकत्र करने के लिये ऐसे ही स्थान अधिक उपयुक्त थे।

प्रथम वह बीजापुर के उत्तर की ओर बढ़ा। ६५ मील चलकर पण्ढरपुर नामक तीर्थ स्थान पर पहुँचा। मन्दिर लूटा। प्रतिमा तोड़ डाली। फिर वह भीमा एवं नीरा नदी के दक्षिणी किनारे पर फलटन जिले में पहुँचा। मालवड़ी ग्राम पूरा का पूरा जला दिया गया। हाहाकार मचा। अत्याचार और उत्पीड़न से जन साधारण का जीवन त्रस्त हो उठा। जिधर अफजलखाँ की सेना पहुँचती उधर प्रलय मचा देती। यहाँ वह कुछ दिनो तक युद्ध का अगला कार्यक्रम बनाने के लिये ठहरा। इन दिनो फलटन के देशमुख बाजाजी नायक निम्बालकर थे। उन्हें कैद कर अफजलखाँ ने अपने सामने बुलाया और कड़कते हुए उनसे बोला—"क्यो निम्बालकर, तुम अपनी हरकत से बाज नही आओगे?" निम्बा-

---

१. अफजल खाँ के मृत्यु के १४ वर्ष बाद फ्रेंच यात्री अबेकरे ( Abbe carré ) ने इस स्थान पर जाकर देखा था कि कारीगर अब भी अफजलखाँ की समाधि के पत्थरों पर खुदाई करते थे। एक पत्थर के ऊपर खुदा था कि खाँ ने अपनी महल की दो सौ औरतों का गला काटकर फेंक दिया था। सन् १६१६ के अक्टूबर मास में जब सर यदुनाथ सरकार अफजल पुरा ( बीजापुर से कुछ दूर ) गये तब वहाँ ६२ कब्रें ही दिखायी पड़ीं, जो एक ही समय की तथा एक ही ढांचे की बनी दिखायी पड़ती थीं।

लकर चुप था। उसने कुछ बोलना अच्छा नहीं समझा। खाँ ने पुनः गरजते हुए कहा—"जब तुम जानते हो कि हमारी हर इच्छा तुम्हारे लिये कयामत या जन्नत का पैगाम ला सकती है, तब तुम खुरापात में क्यों सामिल हुए।"

"कैसा खुरापात ? परवरदिगार।" अत्यन्त दीन भाव से निम्बालकर बोला।

"कैसा खुरापात ? क्या तुमने शिवाजी से गठ बन्धन नहीं किया ? क्या तुमने उसे मदद नही दी ?" उसकी आवाज क्या थी, आग थी।

"मैंने तो ऐसा नहीं किया।" जमीन देखते हुए उसने बड़ी धीरे से कहा।

"तो तुम्हें हिन्दू किसने बनाया ? जानते हो मैं जानता नहीं।"

"मुझे भला हिन्दू कौन बना सकता है, गरीबपरवर। मै स्वयं हिन्दू पैदा हुआ हूँ, हिन्दू मरूँगा। आप लोगों की कृपा से मुझे इस्लाम धर्म कबूल करना पड़ा था, किन्तु जिसे दिल ने नहीं माना, उसे तलवार मनवा नहीं सकती।"

निम्बालकर कुछ कहना ही चाहता था कि खाँ दाँत पीसते हुए बोला—"चुप रह काफिर! कमीने!! पाक इस्लाम की ऐसी तौहीनी ?

तेरा गुनाह तुझे जीते जी कुत्तों से नुचवा देगा। सरदार! इसे सिक्कड़ से बाँधकर बन्द कर दो। कल सबेरे इसे हाथी से कुचलवा दिया जायगा। "सिपाही निम्बालकर को पकड़कर ले चले। खाँ कहता गया, "यह सब शिवाजी की ही करतूत है। नहीं तो भला इसकी क्या हिम्मत थी जो इस्लाम कबूल करने के बाद हिन्दू होता[1]।

निम्बालकर कालकोठरी में डाल दिया गया। कल उसे मृत्यु मिलेगी। कितनी यातना! कितने कष्ट से उसका प्राण निकलेगा। मरने के पहले वह स्वजन स्नेहियों से भी न मिल सकेगा। रात के डरावने अँधेरे में उसे मृत्यु की यातना और भी सताने लगी। साहस ने उसका अब भी साथ नहीं छोड़ा था। प्राण बचाने की वह तरकीब सोचता रहा। आखिर उपाय निकल ही आया। उसने सोचा इस समय खाँ को धन की आवश्यकता है। यदि उसे प्रलोभन दे

---

१. बाजाजी नायक निम्बालकर मुसलमान बना लिया गया था। सन् १६५७ में शिवाजी ने उसे पुनः हिन्दू बनाया।

तो काम बन सकता है। प्रभात की पहली किरण के आगमन के पहले ही उसने पहरेदार से खाँ साहब के पास कहला भेजा कि यदि मुझे छोड़ दिया जाये तो मैं ६० हजार होण ( करीब २ लाख रुपया ) दूंगा।

अफजलखाँ ने बात मान ली। वह छोड़ दिया गया। उसने अपनी देश-मुखी दो महाजनों के यहाँ गिरवी रखकर खाँ को धन दे दिया। महाजनो का रुपया उसने सन् १६५७ तक चुका दिया।

यहाँ से खाँ की सेना तुलजापुर पहुँची। इस प्रसिद्ध तीर्थ स्थान की बड़ी महत्ता थी। जनपद लूटने के बाद मुसलमान सैनिकों ने भवानी का मन्दिर घेर लिया। खाँ को विश्वास था कि इस मंदिर में अतुल सम्पत्ति होगी। माता के भक्तों में इतनी शक्ति नहीं कि वे इस शक्तिशाली सेना का सामना कर सके। लाचार मंदिर के द्वार पर आ उन्होने खाँ से कहा—"मेरी पवित्र देवी को अपवित्र मत करो। यदि तुम्हे खून की प्यास हो, तो मेरी गर्दन उतार लो।" खाँ जोर से हँसा और ऐठते हुए बोला, "चल हट सामने से। बड़ी बनी हैं तेरी पवितर देवी!" भगवती के भक्त फिर भी नहीं हटे। वे बोले, "हमारी तुम्हारी दुश्मनी हो सकती है। तुम मुझसे अदा कर लो। किन्तु, किसी के धर्म से किसी की दुश्मनी क्या? धर्म तो ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग है। मार्ग अलग-अलग हो सकता है, पर मञ्जिल तो एक ही। फिर धर्म से धर्म का विरोध कैसा?" उनकी वाणी में विनय तथा साहस का अद्भुत मिश्रण था।

"बन्द करो अपना बकवास। चले हो मजहब की तालीम देने। मुझे तालीम नहीं चाहिए। मुझे धन चाहिए, धन।" उसकी बिजली की भाँति कड़कती आवाज थी।

"इसके लिये तुम मेरा घर लूट लो। मेरी बहू बेटियो के तन पर से जेवर उतार लो, किन्तु मंदिर में पैर मत रखो। यहाँ तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।"

"कुछ नहीं मिलेगा? पत्थर की पूजा करने वालों बुतपरस्तो, तुम्हारे झूठे बहकावे में मैं नहीं आ सकता। हट जाओ सामने से वर्ना मौत के घाट उतारे जाओगे।"

"तुम्हारी तलवार मुझे नहीं हटा सकती। हमारी लाश हटा सकती है।"

इतना सुनना था कि अफजलखाँ जोर से तड़पा और सेना को टूट पड़ने का हुक्म दिया। देखते ही देखते भक्तो का भग्न शरीर धरती पर ढुलक गया। मंदिर का फाटक तोड़ा गया। सम्पत्ति लूटी गयी। भगवती की प्रतिमा को धरती पर कई बार पटका गया। अन्त में उसे उठाकर खाँ ले आया और उसे चक्की में पीसकर, उस मूर्ति की धूल बनाकर तुलजापुर में बिखेर दी गयी।[1] अब भगवती का मूर्तरूप नष्ट हो गया और वह अनन्त में व्याप्त हो गयीं।

इसके बाद मणिपुर, पण्ढरपुर, महादेव पर्वत आदि के मंदिरो को तोडा गया। इन नगरों की सम्पत्ति लूटी गयी। धर्म के नाम पर अनेक अत्याचार एव घिनौने पाप किये गये। जिस इस्लाम में मनुष्य मात्र को बन्धु समझा गया है। उसी के अन्धे अनुयायियों ने मनुष्य के साथ पशुओं से भी गया गुजरा व्यवहार किया। कुछ ही दिनों में शिवाजी के जीते हुए बहुत से ग्राम तथा नगर अफजलखाँ के अधिकार में आ गये। अब वह 'वाई' नामक ग्राम में पहुँचा। यह कसबा उसकी जागीर का मुख्य स्थान था।

सन् १६५६ के अप्रैल का महीना था। गर्मी आ चुकी थी। शिवाजी पहाड़ी इलाके में थे। अफजलखाँ ने सोचा जहाँ तक हो जल्दी ही इसे मैदान में लाना चाहिए। कई महीने तक उसने प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। शिवाजी जहाँ थे, वही रहे। इसी बीच बीजापुर सरकार ने भी अपने अधीनस्थ सभी मावले देखमुखो को अपनी सेनाएँ लेकर अफजलखाँ की सहायता करने के लिये हुक्म दिया। पत्र पाते ही सबने मिलकर एक बार फिर जोर लगाया, किन्तु इसका कुछ असर न हुआ।

क्या शिवाजी के उस पहाड़ी इलाके पर साथ ही आक्रमण किया जाय? यह एक ऐसा सवाल था, जिस पर खाँ कुछ ठीक समझ नहीं पा रहा था। उसने मावले सरदारो एवं देशमुखों से राय ली। वे इस प्रदेश के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी रखते थे। खाँ ने अपनी नयी योजना प्रस्तुत की—"यदि हम

---

**१. इस घटना को यदुनाथ सरकार ने सही माना है, किन्तु श्रीयुत विनायक लक्ष्मण भावे इसे सत्य नहीं मानते।**

लोग उत्तर की ओर बढ़कर पूना की तरफ से शिवाजी पर हमला करें, तो क्या कामयाबी हासिल हो सकेगी ?"

"लेकिन परवरदिगार, शिवाजी अब वहाँ है कहाँ ! उसने वह प्रदेश छोड़ दिया और पीछे हटकर जावली में आ गया है। आपके आगमन की सूचना पाकर उसने जावली के प्रतापगढ़ में अपनी सारी शक्ति केन्द्रित की है।"

"जावली यहाँ से करीब २० मील पड़ेगा। तुम लोगो को इस इलाके की तो अच्छी जानकारी होगी ?"

"इलाका तो जानाबूझा है, किंतु उस पहाड़ी और जंगली स्थान में हमें सफलता नहीं मिल सकती।" उस देशमुख के कथन की सत्यता को अफजलखाँ ने स्वीकार किया। निश्चित हुआ कि शिवाजी को किसी तरह प्रतापगढ़ किले से बाहर मैदान में लाया जाय या प्रत्यक्ष युद्ध करने का विचार ही छोड़ दिया जाय। प्रयत्न किया जाने लगा। दिन बीतने लगा। बरसात आ गयी। सह्याद्रि पर्वत पर अरब सागर के बादल उमड-घुमड़कर बरसने लगे। सारा कार्यक्रम ठप हो गया।

इन दिनों गुप्तचर भी शिवाजी का कोई विशेष समाचार न दे सके। खाँ परेशान सा था। एक दिन एक विशेष घटना घटी। उसे मालूम हुआ कि खण्डोजी खोपड़े नामक एक आदमी उससे मिलना चाहता है। उसने अविलम्ब उसे बुलाया। आते ही हाथ जोड़कर खाँ के चरणो वह पर गिर पड़ा। "गरीब-परवर, मेरी सहायता कीजिए। मेरा अधिकार छिना जा रहा है।" खोपड़े बोला।

पहले तो खाँ ने अपनी स्वाभाविक ऐंठ में उसे ठुकराते हुए कहा—"चल हट यहाँ से, क्या मैं तेरा नौकर हूँ ? ऐसी ही सहायता करता फिरूँ तो काम बन चुका।" फिर उसने सोचा कि इस समय विरोध करना ठीक नहीं है। अतएव रुककर थोड़ी नम्रता से बोला, "बोल क्या चाहता है ?"

"हुजूर, रोहिड़खेरे की देशमुखी का अधिकारी मैं हूँ, किन्तु कान्होजी ने अपने को यहाँ का देशमुख घोषित कर दिया है।" वह गिड़गिड़ाते हुए बोला।

"कहाँ है कान्होजी जेधे ?"

"वह शिवाजी के पास है। उन्हीं के बल पर तो वह इतना कूदता है।"

"कोई बात नहीं। मैं उसे अच्छी तरह मजा चखाऊँगा।...अच्छा, यदि तुम्हें रोहिड़खेरे की देशमुखी दिला दूँ, तो तुम हमारे लिये क्या करोगे?"

"जो आज्ञा होगी, गरीबपरवर।" उसने हाथ जोड़ते हुए कहा। "तो तुम्हें किसी भी तरह—धोखा देकर दगा करके, जिन्दा या मुर्दा शिवाजी को हमारे सामने लागा होगा।...क्यों स्वीकार है?" उसने सिर हिलाकर स्वीकार किया और लिखित प्रतिज्ञा भी की। इसके बदले में अफजलखाँ ने उसे और उसके साथियों को अपनी सेना के अगले भाग का मुखिया बना दिया।

धीरे-धीरे अक्टूबर का महीना आया। वर्षा बीत गयी। अब तक कुछ हो न सका। खाँ की चिन्ता बढ़ती गयी। उसने एक दिन अपने दीवान कृष्णाजी भास्कर को बुलाया। अब युद्ध का क्या कार्यक्रम होगा? बात इसी पर होनी थी। उसने दीवान से कहा—अब तक कुछ हो न सका, यह बड़े शर्म की बात है। खण्डोजी खोपड़े क्या कर रहा है?

"महाराज उसने कई कोशिशे कीं, किन्तु लाचार है। शिवाजी को धोखा देना सरल नहीं।"

"क्या कहते हो भास्कर? तुम सबके सब कायर तो हो ही, पर मूर्ख भी हो। मैं एक तरकीब बताता हूँ। क्या तुम कर सकोगे?" खाँ ने सोचते हुए कहा।

"अवश्य करूंगा, जहाँपनाह! मैं तो आपका गुलाम हूँ। जो भी कहिएगा, जान देकर करूँगा।"

"जान देने की जरूरत नहीं है। बुद्धि लगाने का काम है। तुम शिवाजी के पास जाओ उससे दोस्ती करने का बहाना करो। उससे कहो कि खाँ ने कहा है—तुम्हारे पिता हमारे पुराने साथी है, इसलिये तुम हमारे लिये अपरिचित नहीं हो। आओ और मुझसे मिलो। मैं बीजापुर के सुलतान से मिलूँगा और उन्हें राजीकर लूँगा कि वे कोंकण प्रदेश तथा दूसरे किले तुम्हारे अधिकार मे रहने दें। मै तुम्हें दरबार से और भी सामान तथा फौजी शक्ति दिलाऊँगा। यदि तुम स्वयं दरबार में उपस्थित होना चाहो, तो तुम्हारा स्वागत् है। यदि तुम वहाँ न रहना चाहो, तो भी दरबार से तुम्हें अनुमति मिल जायगी।"

---

1.New history of marathas by G S. Sardesai page 127

खाँ ने अपने को शाहजी का मित्र कहा था पर वह सदा उनका शत्रु रहा। आदिलशाही कोर्ट में शाहजी खानमुहम्मद की पार्टी में थे। शत्रुता के कारण इसी खानमुहम्मद की अफ़जलखाँ ने हत्या कर डाली थी।

भास्कर शान्त होकर कुछ समय तक सोचता रहा, फिर नमस्कार कर चला गया।

००००००

गुप्तचरों एवं देशभक्तों द्वारा नित्य का समाचार शिवाजी को मिलता जाता था। बाई के बाद खाँ की सेना अब सीधे प्रतापगढ पर ही आयेगी। मराठों को चिन्ता बढ़ी। शिवाजी भी चिन्तित हुए। यह उनके लिये पहला मौका था, जब दस हजार लड़ाकू घुड़सवारों की ऐसी सुसज्जित सेना का उन्हें सामना करना था। अब तक तो वे जागीरदारों के मामूली विरोधों का सामना करते रहे हैं। अब बीजापुर की शाही सेना एक अनुभवी एवं बहादुर सेनापति के नेतृत्व में आ रही थी। शिवाजी के साथियों का भी दिल दहल उठा। वे लड़ना नहीं चाहते थे। अफ़जल की क्रूरता की कहानी उन तक पहुँच चुकी थी। वे अपने नेता से मिले और लड़ाई न करने की उन्हें सलाह दी।

"तो क्या आप सबने यह समझ लिया है कि अफ़जलखाँ को किसी प्रकार भगाया नहीं जा सकता।"

"नही महाराज, लड़ना व्यर्थ है। पराजय निश्चित है। यदि सन्धि...!" अत्यन्त भयभीत होकर वह कह रहा था।

'सन्धि!' शिवाजी सोचने लगे। तब तक दूसरा बोला, "कोई जरूरी नहीं है कि सन्धि करने से हमारी रक्षा हो ही जाय। अफ़जलखाँ पिशाच है। उसकी पशुता की कहानी आप सब जानते है। सेरा के राजा कस्तूरी जंग को फौज के शिविर में आत्म-समर्पण के बहाने बुलाकर उसने मार डाला। वजीर खानमुहम्मद की नाहक हत्या की। उसने इन दिनों जैसी निर्मम हत्याएँ तथा जघन्य पाप किये हैं, उसकी कहानी कभी आँसुओं से लिखी जायगी।"

इस व्यक्ति की बातें सुनते ही सब शान्त हो गये। कोई मार्ग न सूझा।

उन्होंने अपने साथियो से कहा—अच्छा जायिए। मैं विचार करूँगा। साथी चुपचाप चले गये। सन्ध्या आयी। अँधेरा बढ़ा। शिवाजी की घबड़ाहट बढ़ी। क्या मेरा सपना सपना रह जायगा? माता की आज्ञा पूरी न हो सकेगी? धरती चीखती रहेगी, आकाश जुल्म ढाहता रहेगा? क्या अब मुझे अपनी जिन्दगी बीजापुर की जेल में ही बितानी पड़ेगी या मामूली जागीरदार की भाँति नौकरी करनी पड़ेगी—गुलाम होकर?

शिवाजी बड़ी मुश्किल में पड़े थे। कुछ सोच नही पा रहे थे। घबराहट के बीच-बीच में भी उनका मन बोल उठता—नहीं शिवा, ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम अपनी तलवार पर विश्वास रखो, अपने बाहुबल पर विश्वास रखो, माता के आशीर्वाद पर विश्वास रखो। इतना होने पर भी शिवाजी की घबराहट कम नहीं होती थी। बिना खाये पीये ही वह उस दिन बिस्तर पर पड़े। चिन्ता से थककर चूर थे। किसी प्रकार नींद आ गयी। कहते है उन्होंने स्वप्न में देखा कि भवानी कह रही है—बेटा तू डर मत, तेरी रक्षा मैं करूँगी। तू पूरे उत्साह से अफजल पर चढ़ाई कर। तेरी ही जय होगी।

भगवती का ऐसा आश्वासन पाते ही शिवाजी की नींद खुल गयी। मारे खुशी में वे अपने को रोक न सके। तत्काल बिस्तर छोड़ दिया। पक्षियों ने भी घोसले छोड़ दिये थे। सबेरा हो गया था।

सूरज निकलते ही पुनः मंत्रणा-सभा बैठी। शिवाजी ने सबसे स्वप्न की चर्चा करते हुए कहा "लगता है अफजल को पागल बनाकर यहाँ तक लाने में भी भगवती की प्रेरणा है। हमें अवश्य लड़ना चाहिए। हम सब तो निमित्त मात्र है। सब अम्बिके स्वयं करेगी।" शिवाजी ने मुस्कराते हुए कहा, जैसे उनका बोझ अब हल्का हो गया था।

"हाँ हाँ हम सब लड़ेंगे। अवश्य लड़ेंगे, जब भगवती हमारी ओर हैं तब जरूर लड़ेंगे। "उत्साह जाग उठा। नसो में बिजली कौंध गयी।

"लेकिन एक बात का ध्यान रखना। यदि मैं लड़ाई में मारा गया या कैद..." शिवाजी बोल रहे थे कि सब एक स्वर से चिल्ला उठे, "ऐसा मत कहिए महाराज।" शिवाजी ने पुनः कहा, "मुझे इस समय भावुक नहीं बनना

है। भविष्य को हर पहलू से देखना है। क्योकि आज की अदूरदर्शिता कल हमारे देश और जाति के लिये घातक हो जायगी। मेरे न रहने पर उद्देश्य की पूर्ति का भार आप सब पर होगा। इसे मत भूलिएगा। जिस किसी को भी नेता चुनिएगा, उसकी आज्ञा का पालन वैसे ही कीजिएगा जैसे आप मेरी आज्ञाओं का पालन करते रहे हैं।"[1]

अपने नेता की जय बोलकर सब युद्ध की तैयारी करने चले गये। इधर शिवाजी माता जीजाबाई के पास पहुँचे। उनसे उन्होंने स्वप्न की बात कही। अपनी योजना बतायी। जीजाबाई अत्यन्त प्रसन्न हुईं। वह आशीर्वाद देते हुए बोलीं—'तेरी ही जय होगी।' इसके बाद शिवाजी ने मोरो त्र्यम्बक पिंगले तथा नेताजी पालकर को क्रम से कोंकण एवं घाट से बुलाया और उनसे कहा कि अपनी अपनी सेना लेकर प्रतापगढ़ के जंगलों में छिपकर अचानक आक्रमण करने के लिये तैयार रहें।

इसी बीच उन्हें सूचना मिली कि अफजलखाँ के दीवान कृष्णाजी भास्कर मुझसे मिलना चाहते है। उसका अचानक आना लोगो के रहस्य का कारण बना। लोग तरह तरह का अनुमान लगाने लगे। क्या भास्कर भी अफजल के अत्याचार से त्रस्त होकर हमारी सहायता करने आया है या इसमें कोई जाल-साजी है? सब अपने मन के अनुसार अनुमान लगाने लगे। किन्तु शिवाजी का विश्वास था अच्छे व्यवहार से शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है, फिर भास्कर हो सकता है कि हमारा मित्र ही हो। उन्होने उसकी बड़ी आवभगत की। खूब स्वागत् किया और ससम्मान उससे मिले। उसने मिलते ही खाँ का सन्देश सुना दिया और शिवाजी को उनसे भेंट करने के लिये कहा। शिवाजी अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ बोले, "यदि खाँ की आज्ञा है, तो अवश्य मिलूँगा। किन्तु, इसमें जल्दी क्या है? आप आये हैं तो दो एक दिन रहिए। हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए।"

---

१. यदुनाथ सरकार का तो कहना है कि अपनी मृत्यु की आशंका से शिवाजी ने लड़ाई जारी रखने के लिये एक सरकार तक का निर्माण कर दिया था।

ऐसे भले व्यवहार से भास्कर गद्‌गद् हो गया। उसके रहने का राजसी प्रबन्ध किया गया। कई खिदमतगार रखे गये। इनको चेतावनी दी गयी कि कोई भी हमारा रहस्य जान न सके।

अफजलखाँ के सन्धि के प्रस्ताव की चर्चा मराठों में जोरो से होने लगी, किन्तु इसके प्रति शिवाजी के क्या विचार है। इसे अभी तक किसी ने नहीं जाना है।

०००००० 

रात आधी जा चुकी है। सन्नाटा छाया है। सैनिक सो रहे है। दूर से भेड़िये और कुत्तो की आवाज सुनायी पड़ रही है। शिवाजी चुपचाप बिस्तर से उठे और उस कक्ष में गये जहाँ भास्कर सोया था। उनके पहुँचते ही खिदमतगार चुपचाप वहाँ से हट गये, जैसे उनसे पहले से ही ऐसा करने के लिये कह दिया गया हो। शिवाजी ने देखा भास्कर सो रहा है। सामने शीशे में दीप-शिखा लपलपा रही है। चुपचाप जाकर उन्होने भास्कर को जगाया। जागते ही वह डर गया। उसने सोचा कही यह मेरी हत्या करने तो नहीं आये है। किन्तु शिवाजी मुस्कराते हुए बोले—भास्कर जी, इतनी रात को मैने आपको कष्ट दिया, क्षमा करे। मै इस समय बड़े आवश्यक कार्य से आया हूँ, क्या आप हमारी मदद करेंगे?"

"भला कौन सा ऐसा कार्य है? यदि हो सका तो अवश्य करूँगा।"

"क्या आप बता सकेंगे कि इस सन्धि के प्रस्ताव के पीछे अफजलखाँ की नीयत क्या है?" शिवाजी की वाणी में बड़ी गम्भीरता थी। भास्कर पहले कुछ नहीं बोला, बाद में उसने सोचते हुए कहा—"नीयत क्या अच्छी ही होगी। भला सन्धि की बात खाँ खराब नीयत से कर सकते है?"

शिवाजी ने देखा भास्कर शीघ्र पिघलने वाला नहीं है। उन्होंने मधुर-शब्दों में समझाना शुरू किया, "भास्करजी, मैं जानता हूँ कि आप अफजलखाँ के एक विश्वासपात्र दीवान हैं। अपने स्वामी की भलाई की बात सोचना ही आपका कर्त्तव्य है। किन्तु, एक सवाल का जबाब जरा अपने मन से पूछिए।

क्या खाँ कभी आपकी भलाई कर सकता है? मेरा ख्याल है, कभी नहीं। जब तक आप से उसका स्वार्थ है, उसकी सेवा में जब तक आप अपनी हड्डियाँ गला सकते हैं, तब तक आप उसके कृपापात्र बने हुए हैं और वह थोड़े से चाँदी और सोने के टुकडों से आपकी बहुमूल्य सेवाओं को खरीदता रहेगा। किन्तु, जब आप उसकी सेवा करने में असमर्थ होंगे, तब आप उसके लिये वैसे ही होंगे जैसा आज मैं हूँ...'' शिवाजी बोल रहे थे। भास्कर बीच में ही बोल उठा—
''आखिर आप के कहने का तात्पर्य क्या है?''

''मेरा तात्पर्य केवल यही है कि हम दोनों हिन्दू हैं। आप हमारी जाति के पुरोहित हैं। खाँ हमारे धर्म का द्रोही है। उसने मूतियां तोड़ी हैं मन्दिर भ्रष्ट किये हैं। अनेक हत्याएँ की है, वह जैसा हमारा शत्रु है वैसा आपका। अन्तर इतना ही है कि हमसे वह आज बदला देना चाहता है आप से कल लेगा। उसके लिये हम और आप दोनो समान है।...भास्कर, यदि उसने धोखा देकर मुझे कैद किया और मै मारा गया, तो इसमे मेरी व्यक्तिगत कोई हानि नहीं होगी। मेरी आत्मा शरीर का बन्धन तोड़कर मुक्त हो जायगी। किन्तु सुलतान की तलवार आप सबको आजीवन गुलामी की जंजीर में जकड़े रहेगी, और मेरा उद्देश्य है इस जंजीर को टुकड़े-टुकड़े कर देना।...भास्कर, इस उद्देश्य की पूर्ति मे क्या आप मेरा साथ देंगे।'' भास्कर चुप था। कुछ सोचता रहा। शिवाजी ने पुनः कहा, ''अच्छी तरह सोच लीजिए। यह आपके जाति और धर्म की परीक्षा है। इस समय आपका एक क्षण का निश्चय यह बता देगा कि अपनी माँ के दूध का आपको स्मरण है या नही।''

भास्कर सोचते हुए बड़ी धीरे से बोला, ''तो बतायिए मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ। ''शिवाजी के चेहरे पर मुस्कराहट आयीं, वे बोले— तो बता दो खाँ की मंशा क्या है?''

''खाँ की मंशा अच्छी नहीं है।'' भास्कर ने काँपते स्वर में कहा। उसे लगा, जैसे वह अपने कर्त्तव्य से च्युत हो रहा है, फिर एक अपराधी की भाति वह बोला, ''देखिए इस बात का जरा भी संकेत खाँ को न मिले।'' शिवाजी ने इसे गुप्त रखने का अश्वासन दिया।

रहस्य का उद्घाटन हो गया। शिवाजी ने इसके लिये भास्कर को धन्यवाद दिया। उसकी खूब प्रशंसा की। इसके बाद दोनो अलग हो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल शिवाजी ने पन्ताजी गोपीनाथ को बुलाया। अफ़जल खाँ की मशा से उन्हे अवगत कराया और कहा, "मै आपको खॉ के पास अपना दूत बनाकर कृष्णाजी भास्कर के ही साथ भेजना चाहता हूँ। आप वहाँ जाकर मेरी ओर से सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिजिएगा और जहाँ तक हो भेट का स्थान प्रतापगढ के आसपास ही निश्चय कीजिएगा।"

"अच्छी बात है।" अभिवादन कर पन्ताजी जाने लगे। शिवाजी ने रोकते हुए कहा, "देखिए हमे अभी तक खाँ की शक्ति का ठीक विवरण प्राप्त नहीं हुआ। आप किसी न किसी प्रकार इसे प्राप्त कीजिएगा। इसके लिये हो सकता है किसी को घूस देना पडे। जितना धन चाहिए, खजाने से ले लीजिए। हमारी बातों का ख्याल रखते हुए आपकी बुद्धि जिस अवसर पर जैसा कहे वैसा कीजिएगा।"

पताजी गोपीनाथ ने अवश्यकतानुसार अपनी तैयारी कर ली। भास्कर को बिदा करने के पहले शिवाजी एक बार पुन उससे एकान्त में मिले और कहा, "आपका उपकार मै कभी नही भूलूँगा। आप के कारण हमारे हजारों व्यक्तियों की जाने अब बच जायँगी। उनकी शुभ कामनाएँ सदा आप के साथ रहेंगी। मेरा विश्वास है कि आपकी ऐसी कृपा आगे भी बनी रहेगी।" भास्कर ने भी आभार प्रदर्शित किया। उसी दिन वह गोपानाथ के साथ प्रतापगढ़ से बिदा हुआ।

oooooo

जब तक दीवान लौटकर नहीं आया, तब तक खॉ दुविधा में था। शिवाजी चंगुल में फंसता है या नही। है तो बडा चालक, देखो क्या होता है?—वह सोचता। भास्कर आते ही उससे मिला और बोला कि उसने आपका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अपना एक दूत भी हमारे साथ भेजा है। इस समाचार से खाँ बडा प्रसन्न हुआ। बोला, "दीवान, मैं तुमसे निहायत खुश हुआ। देखता

हूँ अब वह हमारे चंगुल से कैसे निकल भागता है। अच्छा उसके दूत को बुलाओ।" भास्करजी ने मन में ही कहा— "उसका निकल भागना तो दूर रहा अब तुम चंगुली में आने वाले हो।"

पन्ताजी बुलाये गये। आते ही झुक कर सलाम किया। खाँ बोला— "तुम्हारे मालिक ने क्या कहा है?"

"हुजूर, आपकी आज्ञा उन्हें स्वीकार है। किन्तु वे यहाँ आकर आपसे मिलने में डरते है। इतनी विशाल सेना और आप के भयंकर पराक्रम की कल्पना करके ही उनका मन काँप उठता है।" इतना बहादुर कहलाने वाला मुझसे ऐसा डरता है। सोचकर खाँ जोर से हँसा। पन्ताजी ने पुनः कहा, "यदि उनसे मिलने के लिये प्रतापगढ़ के आसपास ही कही बन्दोबस्त करें, तो बड़ी कृपा हो।"

"ऐसा ही होगा, बुलाओ अपने मालिक को।" खाँ ने मुस्कारते हुए कहा! "लेकिन हुजूर पहले आप इस बात का हमें विश्वास दिला दें कि आप उनके साथ किसी प्रकार का विश्वासघात नहीं करेंगे।" खाँ ने यह बात भी मान ली। इसके लिये उसने अपने धर्म की कसम भी खाई।

शिवाजी के कथानानुसार पन्ताजी ने बीजापुर के एक सरदार को बहुत सा धन देकर मिला लिया। उससे उन्हें पता चला कि खाँ मुलाकात के समय शिवाजी को कैद करने की व्यवस्था कर चुका है, क्योंकि उसे विश्वास हो चुका है कि उसके ऐसे चालाक व्यक्ति को लड़ाई में जीतना कठिन है।

भेट करने का दिन १० नवम्बर १६५६ ई० निश्चित किया गया। अफजल खाँ की सेना ने वाई से चलकर महाबलेश्वर की ऊपरी समथल भूमि को पार कर 'पार' नामक ग्राम में क्रयना नदी की गहरी घाटी में खेमा गाड़ दिया। भेट के लिये प्रतापगढ़ किले के नीचे एक पहाड़ी की समथल चोटी चुनी गयी। यहाँ शिवाजी ने आलिशान तम्बू गड़वाया। तम्बू की रेशमी झालर में मोती टके हुए थे। भीतरी भाग बहुमूल्य कालीन तथा गद्दों से खूब सजाया गया था।

अफजलखाँ ने पहले एक हजार[1] बहादुर बन्दूकधारियो को साथ ले

1. सर देसाई के विचार से इनकी संख्या १५०० थी।

मिलने जाने की व्यवस्था की। इसका पता पन्ताजी गोपीनाथ को लगा। उसने सोचा कि ये एक हजार सैनिक बहुत बड़ी गड़बड़ी कर सकते हैं। वह शीघ्र खाँ से मिला। उसने उनसे कहा—"इतनी बड़ी सेना देखकर शिवाजी मारे डर के मिलने नही आयेंगे। वह आप से बहुत डरते है। ऐसी सेना देखकर तो उनका किले से बाहर निकला भी असम्भव है।"

"शिवाजी के साथ सेना आयेगी कि नहीं।" खाँ ने पुछा।

"नही हजूर, बिल्कुल नहीं। वह चाहते हैं कि हम दोनों जब मिलें तब हमारे पास कोई हथियार भी न हो। जिससे कोई विश्वासघात न कर सकें। "खाँ को यह सब स्वीकार था। सैनिक रोक दिये गये। केवल दो सिपाहियो को लिया गया। प्रसिद्ध तलवार चलाने वाला वीर सैयद बन्दा को भी खाँ ने साथ में रखा। पता नहीं कैसा मौका पड़े। इनके अतिरिक्त दोनो ओर के ब्राह्मण दूत—कृष्णाजी तथा पंताजी भी अफजलखाँ के साथ थे। खाँ की पालकी टेढ़े मेढ़े साँप जैसे रास्ते से अभीष्ट स्थान की ओर चली।

इधर शिवाजी को बुलाने के लिये एक आदमी प्रतापगढ़ किले में पहुँचा। वे उस समय भवानी की पूजा पर थे। पूजा समाप्त होने के बाद उन्हें समाचार मिला। तब चलने की तैयारी करने लगे। पहले उन्होंने जालीदार कवच पहना और उसके ऊपर से अपना राजसी कामदानी वस्त्र धारण किया। बाहर से देखने में कवच का जरा भी भान नहीं होता। सिर पर भी साफा बाँधने के पहले उन्होने स्पात की मजबूत कडाही जैसी टोपी पहन ली थी। अब यदि धोखे से उनपर आक्रमण भी किया गया तो कोई परवाह नहीं। मिलना तो नंगे हाथ है। और यदि खाँ ने विश्वासघात किया तब क्या होगा? इस परिस्थिति के लिये कोई हथियार ले लेना चाहिए, किन्तु छिपाकर। उन्होने मुट्ठी में बघनखा लिया तथा अस्तीन में बिछुआ छिपाया। इससे बाद जीवमहला तथा शम्भूजी कावजी को बुलाया गया। दोनो तलवार के खिलाड़ी थे। जीव महला तो जाति का हज्जाम था, पर तलवार का कमाल दिखाने में उसकी समता न थी। शिवाजी ने इन दोनों को अपने साथ लिया। जीवमहला के कमर में दो तलवारें बँधी थीं।

पूरी तैयारी करने के बाद शिवाजी अपनी माता से मिलने गये। जीजाबाई

भी इस समय नित्य की पूजा पर से उठ चुकी थी। श्वेत वस्त्र धारण किये वे इस समय देवी की प्रतिमूर्ति लग रही थीं। जाते ही शिवाजी ने माता के चरण छूए और चलने की आज्ञा माँगी। उन्होंने पीठ ठोकते हुए आशीर्वाद दिया, "तेरी जय हो, शिवानी तेरी रक्षा करे।" शिवाजी मुस्कराते हुए वहाँ से हटे और किले के प्रमुख व्यक्तियों को बुलाकर कहा—साथियां, जैसा आप जानते है, मैं अफजलखाँ से मिलने जा रहा हूँ। किले की सारी व्यवस्था अब आपके हाथ में है। ऊपर की बड़ी बड़ी तोपों में गोले भर दीजिए, केवल पलीता लगाने पर की देरी रहे। यदि किसी प्रकार का विश्वासघात हुआ तो मैं वहाँ से सीधे किले में आऊँगा। मेरे आते ही तोपें छोड़ी जायँगी। त्र्यम्बक पिंगले तथा नेता जी पालकर के नेतृत्व में हमारी सेना जावली के चारों ओर जंगलो में छिपी है। तोप की आवाज सुनते ही वह अचानक शत्रु दल पर टूट पड़ेगी। हो सकता चारों ओर से करारी मार खाकर खाँ की सेना इस किले की ही ओर बढ़े। उस समय आपके तलवार का जौहर काम आयेगा। मैंने अपनी योजना बता दी। अब मैं जा रहा हूँ। माताजी और मेरे बेटें ( शम्भूजी ) का ख्याल रखिएगा" शिवाजी का यह संक्षिप्त भाषण बड़ा मार्मिक था। प्रत्येक चुप होकर सुन रहा था। भाषण समाप्त होते ही—शिवाजी की जय, धरती माता की जय, शिवानी की जय, हमारा सपना पूरा हो—के नारो से किला गूँज उठा।

००००००

पालकी से उतरते ही अफजलखाँ तम्बू की ओर बढ़ा। शामियाने की शान शौकत तथा सजावट देखकर वह दंग रह गया। क्रोध से दाँत पीसते हुए बोला "एक मामूली जागीरदार के लड़के की यह शान। ऐसा शामियाना तो हमारी बड़ी बड़ी महफिलों में भी नही लगाया जाता।"

पन्ताजी गोपीनाथ ने देखा कि आते ही खाँ की मुद्रा खराब हुई। यह बात अच्छी नहीं है। उन्होंने परिस्थिति सँभालते हुए कहा—"हुजूर ये सारी चीजें आपकी ही है। आज के इस अमर मिलन के चिह्न—स्वरूप ये सारी चीजें शिवाजी बीजापुर राज्य को भेट करना चाहते हैं।" अफजल का गुस्सा कुछ

शान्त हुआ वह भीतर जाकर ऊँची चौकी पर लगी गद्दी पर बैठा। अभीतक शिवाजी आये नहीं थे।

कुछ ही समय बाद शिवाजी अपने दोनों साथियों के साथ मिलन स्थान पर आ गये। उन्होंने दूर से देखा, शायमाने के भीतर खाँ विराजमान है। उसका लम्बा-चौड़ा व्यक्तित्व इस समय और भी खतरनाक लग रहा था। सैयद बन्दा भी बगल में खड़ा था। शिवाजी उसकी बहादुरी से परिचित थे। उन्होंने सोचा कि इस स्थान पर इसका रहना ठीक नहीं। जीवमहला से उन्होंने कहलाया कि इसे इस स्थान से हटा दिया जाय, नहीं तो शिवाजी यहाँ नहीं आयेंगे।

अफजलखाँ को अपनी शक्ति का हद से ज्यादा भरोसा था। जीवमहला की बात सुनकर वह जोर से हँसा, उसने सोचा शिवाजी हमसे डर रहा है। वीर बन्दा को उसने वहाँ से हटा दिया।

इसके बाद शिवाजी मिलने के लिये तम्बू के भीतर घुसे। घुसते ही उन्होंने अफजलखाँ को सलाम किया। खाँ उन्हें पहचानता नहीं था। उसने अपने दीवान कृष्णाजी से पूछा—"क्या यही शिवाजी हैं?" कृष्णाजी ने परिचय दिया, पुनः उसने शिवाजी से कहा—"क्यो, तुमने हमारे राज की जमीन और किलो पर कैसे अधिकार किया?"

शिवाजी ने कहा—इसके पहले आपके राज का यह भाग तथा किले डाकू और लूटेरों के हाथ में थे। मैंने उनके हाथ से इन्हें छीन लिया। इनकी व्यवस्था अच्छी न थी। परिश्रम और लगन से इनकी हालत सुधारी गयी। मुझे विश्वास है कि मेरी इन सेवाओं के बदले मुझे प्रशंसा मिलेगी, किसी प्रकार का दण्ड या विरोध नहीं।"

खाँ जोर से हँसा और बोला, "बहुत अच्छा। जो बीत गया, वह बीत गया। अब उन किलों को मेरे हवाले करो, जो तुम्हारे अधिकार में हैं, और मेरे साथ सुलतान के दरबार में चलो।"

शिवाजी ने बड़ी योग्यता से जबाब दिया, "यदि मेरे नाम सुलतान का ऐसा कोई फरमान हो तो मैं आज्ञापालन करने के लिये प्रस्तुत हूँ।"

खाँ चुप हो गया। फरमान के अभाव में वह कुछ कह न सका। किंतु

दीवान कृष्णाजी बोले—इस समय तुम परवरदिगार खाँ साहब की शरण में हो, पहले उनसे तुम्हें अपने आक्रमणों के लिये क्षमा मांगनी चाहिए और इसके बाद सुलतान के फरमान की आशा करनी चाहिए।" बड़े रोब से कृष्णा ने कहा था।

"यह तो ठीक है, किन्तु मैं और खाँ साहब दोनो सुलतान के नौकर हैं। इसलिये खाँ साहब मेरी गलतियो को क्षमा कैसे कर सकते हैं? नौकर को नौकर की गलती माफ करने का क्या अधिकार? इतना होने पर भी में आपकी राय ठुकरा नहीं सकता।" ऐसा कहते हुए वह आगे बढे। अफजल बोला—कुछ भी हो, पर आओ शिवाजी भोसले, आज हम लोग प्रेम से गले मिल लें।

शिवाजी नंगे हाथ दिखायी दे रहे थें, किन्तु अफजल की कमर से तलवार लटक रही थी। देखने में भी वह शिवाजी से लम्बा चौड़ा और तगड़ा था। दोनो गले मिले। शिवाजी लम्बाई में उसके कन्धे ही तक थे। पहले खाँ ने दोनों हाथों से गला पकड़ लिया। फिर बाये हाथ से बड़े जोर से उसे धर दबाया और दाहिने हाथ से कमर से बड़ा छूरा निकाल कर शिवाजी की बायी ओर चोट की, किन्तु जाली के कवच के कारण तन में छूरा घुस न सका। उसने फिर मारा, फिर वार बेकार गया।

शिवाजी की गर्दन अच्छी तरह दबी थी। सिर जमीन की ओर था। उनका दम घुट रहा था। अचानक किये गये छूरे के वार का भी उन्हें अनुभव हो रहा था। घबराहट में वह कुछ समझ नहीं पा रहे थे। शीघ्र ही उन्होंने अपने को संभाला और बुद्धि से काम लिया। अपने बाये हाथ का बघनखा खाँ के पेट में घुसाकर जोर से घुमाया। खाँ के पेट की अंतड़ियाँ बाहर निकल आयीं। वह चीख उठा। उसका हाथ ढीला पड़ा। शिवाजी की गर्दन छूटी। उन्होंने दाहिने हाथ से बाह में छिपाया बिछुआ निकाल कर खाँ के बगल में भोक दिया। अब वह रूक न सका। "मार डाला, मार डाला। मुझे धोखा देकर मार डाला।" अफजलखाँ चिल्लाता शामियाने से बाहर भागा। बाहर खड़े दोनों ओर के सहायक अपनी अपनी तलवार म्यान से निकाल कर भीतर घुसे। वीर बन्दा ने घुसते ही शिवाजी की गर्दन पर पट्टा मारा। उन्होंने झुककर अपनी गर्दन

बचायी, फिर भी वह पगड़ी पर लगा। नीचे की लोहे की टोपी कट गयी। कितना तेज वार था ? वीर बन्दा का सामना करना कठिन है। शिवाजी के पास तो कोई हथियार भी नहीं है। उन्होंने जीवमहला की ओर संकेत किया। उसने शीघ्र ही अपने पास की दो तलवारों में से एक शिवाजी की ओर फेंकी और स्वयं एक तलवार से भिड़ गया। जय महाकाली ! खटाखट तलवारें चलने लगीं। बन्दा ने तलवार का कमाल दिखाया। शिवाजी बन्दा की मार रोकते जाते थे। जीवमहला उस पर वार पर वार कर रहा था। उसने बड़ी खूबी से उसका दाहिना हाथ काट दिया। अब बेचारा लाचार था। भागने की चेष्टा करने लगा, किन्तु यह वार उसकी गर्दन पर था। वह न भाग सका। उसका प्राण अवश्य भागा।

इधर शम्भूजी कावजी अफजल के पीछे पड़े थे। खाँ शामियाने से निकल कर पालकी की ओर गया। उसके पीछे उसका एक सिपाही भी था। पालकी में बैठकर खाँ आगे बढ़ा और सिपाही कावजी का सामना करने लगा। किन्तु इस सिपाही की क्या हिम्मत जो कावजी ऐसे योद्धा को रोक सके। दो एक वार बचाने के बाद वह जमीन पर गिर गया। इसके बाद कावजी अफजल की पालकी की ओर बढ़े। कहार जी जानसे भागे जारहे थे। इन कहारों की हत्या करने से क्या लाभ ? इसी से पहुँचते ही उन्होंने कहारो के पैरों पर चोट की। वे पालकी छोड़कर भाग गये। अब क्या था, अफजल अकेला था, वह भी घायल। उसी का सिर काटकर वह मारे खुशी के उछल पड़ा। उसे लेकर वह शिवाजी से मिला।

शिवाजी जीवमहला के साथ प्रतापगढ़ किले की ओर दौड़े चले जा रहे थे। अपने सहयोगी के हाथ में अफजल का कटा सिर देखकर उनके भी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वे बोले—शाबाश बहादुर, इस समय शीघ्र किले में चलो।"

---

**१ अफजल खाँ और शिवाजी के मिलन की यह कहानी निजामुल्मुल्क के दरबार के प्रसिद्ध वजीर तथा इतिहासकार मीर आलम के कथनानुसार है। ग्रांट-**

किले में पहुँचते ही तोपे छूटी। जावली के जंगलों में छिपी मराठों की सेना बीजापुर के फौजी खेमें पर टूट पड़ी। केवल हजार डेढ़ हजार सैनिक जो पहले से तैयार थे, उन्होने मराठों का सामना किया। और सेनाएँ लड़ने के लिए बिल्कुल तैयार न थीं। उनमें भगदड़ मच गयी। "अफ़जलखाँ मारा गया। वीर बन्दा भी खेत रहा।" चारो ओर हल्ला मच गया। जब सेनापति ही नही तो लड़ाई कैसी ? जो सैनिक लड़ भी रहे थे, वे अब भागने लगे। किन्तु भाग कर जायँगे कहाँ ? जिधर जाते उधर ही उन्हें लड़ाकू मराठे दिखायी देते। प्रत्येक झाडी में उनके लिये मौत बैठी थी। लाचार उन्हें लड़ना ही पड़ा, मरना ही पडा। मराठो का शौर्य आज देखने लायक था। भवानी का स्मरण कर करके वह विरोधियो को घास की तरह काटने लगे। रह रह कर उन्हें त्र्यम्बक पिगले की आवाज सुनायी पड़ जाती थी—"याद रखना बहादुरो एक भी सैनिक यहाँ से जीवित लौटने न पाये, कयना की घाटी उनके रक्त से रंग दो।" पिंगले की विरुद्ध दिशा में नेताजी पालकर की भी आवाज सुनायी पड़ जाती थी, "आज देखना है कि तुम्हारी भुजाओं में कितनी शक्ति है ? अपना जातीय गौरव तुम्हें स्मरण है या नहीं। जीत हमारी निश्चित है, पर किसी को भी जिन्दा जाने मत दो।"

मावले अपूर्व उत्साह से लड़े। अनेक मारे गये। भागने वाले भाग न सके। चिंघाड़ते भागते हाथियों की पूँछ तक काटी गयी। अनेक घोड़े और ऊँट मारे गये। मराठों की महती विजय हुई। केवल तीन घन्टे की लड़ाई में वारा-न्यारा हो गया।

ooooo

---

डफ और काफीखाँ का कहना है कि मिलने के समय शिवाजी ने पहले आक्रमण करके धोखा दिया था। पर अन्य इतिहासकार ऐसा नहीं मानते। वर्क ने इसे 'रक्षात्मक हत्या' की संज्ञा दा है। विद्वान लेखक यदुनाथ सरकार, ने १९०७ ई के माडर्न रिव्यू में प्रकाशित अपने निबन्ध में इसे लोहा से लोहा काटना कहा है।

दूसरे दिन प्रतापगढ़ में शानदार दरबार हुआ। सभी नेता सैनिक तथा सरदार उपस्थित हुए। लोग विजय के उल्लास की मदिरा पीकर मस्त थे। गगन भेदी जय जयकार के बीच शिवाजी पधारे। मुस्कराते हुए उन्होने सबका अभिवादन किया। लोग अपने अपने स्थान पर बैठ गये।

शिवाजी उठे। पहले उन्होंने अम्बिका का स्मरण किया, फिर बोलना आरम्भ किया—"वीर साथियो, भवानी के आशीर्वाद और आपके पराक्रम से हमें विजय प्राप्त हुई। यह विजय अत्यन्त कठिन थी, किन्तु आपकी योग्यता ने इसे आसान बना दिया। आप सब धन्यवाद के पात्र हैं। हम इससे अधिक और क्या कह सकते हैं। इतिहास आपके इस शौर्य की प्रशंसा करते फूला नहीं समायेगा। जब तक कयना नदी की घाटी रहेगी, जब तक प्रतापगढ़ के इस किले की एक ईंट भी शेष रहेगी, तब तक लोग इस घटना को बड़ी श्रद्धा से स्मरण करेंगे। इस लड़ाई में हमारे बहुत से वीर मावले काम आये। मातृभूमि की बलिवेदी पर उनके एक एक बलिदान पर हजारों जीवन न्योछावर है। हमें आशा है। आपके पराक्रम की कहानी के भविष्य का अध्याय इससे भी अधिक रोमांचकारी होगा। आप सब जननी जन्म-भूमि की सेवा करते रहेंगे।"

इतना कह शिवाजी बैठ गये। तालियो की गड़गड़ाहट एवं जय जय कार से महल का कोना कोना गूँज उठा। पुनः उन्होंने पालकर और पिगले की ओर संकेत कर कहा—क्यो, आप लोगो ने लूट के सामानो तथा कैदियों का व्योरा तैयार कर लिया। 'जी महाराज' उन्होने कागज पढ़कर सुनाते हुए कहा, "लूट में हमें ६५ हाथी, ४००० घोड़े, १२०० ऊँट, कपड़े की दो हजार गाँठे, नकद जवाहिरात मिलाकर १० लाख रुपये मिले हैं। इसके अतिरिक्त खाँ की करीब करीब सभी तोपें तथा गोला बारूद भी प्राप्त हुआ है।" एक सांस में ही उसने कह सुनाया। एक बार फिर तालियाँ बजीं। शिवाजी ने पुनः पूछा, "और कैदियो का क्या हुआ ?"

"आपकी आज्ञानुसार सुलतानी खेमें में काम करने वाले ब्राह्मणों तथा स्त्रियों और बच्चों को उसी समय छोड़ दिया गया। इस समय कैद में सैनिकों के अतिरिक्त खाँ के दो सहायक मराठा सरदार—लम्बाजी भोसले तथा झुझरराव

घाटगे, दो अफ़जलखाँ के लड़के और एक बड़े ओहदे का सरदार है।" उसने कुछ रुककर पुनः बोलना जारी रखा। "अफ़जलखाँ की स्त्री और उसका बडा लडका फजलखाँ को हम पकड़ न सके। वे खण्डोजी खोपड़े और उसकी मावली सेना की सहायता से कयना नदी पार कर भाग गये।" शिवाजी ने मुस्कराते हुए कान्होजी को देखा और बोले, "कोई बात नहीं। मेरा ख्याल है कि जितने भी कैदी हो, उन्हें छोड़ देना चाहिए। उनसे हमारा क्या विरोध? वे बेचारे तो नौकर है। मालिक का हुक्म मानना उनका काम है। इसी का वे पैसा खाते हैं। हमारा विरोध तो उनके मालिक से है।...और देखिए प्रत्येक को इतना धन और सामान दे दीजिए, जिससे वह आसानी से अपने घर पहुँच जाय।"

शिवाजी की यह नीति कुछ लोगो को अच्छी न लगी, किन्तु जो समझदार थे, वे समझ गये कि इन कैदियों को व्यर्थ रखना तथा इनपर धन व्यय करना बुद्धिमानी नही है। साथ ही इन्हें मुक्त करने से ये हमारे सद्व्यहार से भी प्रभावित होंगे।

सभी कैदी छोड़ दिये गये। जो मराठे सैनिक मारे गये थे, उनकी विधवाओं को पेन्सन दी गयी। मरे पिता के तरुण पुत्रों को पिता की नौकरी मिली। घायल सैनिको को पुरस्कार दिया गया। यह पुरस्कार सौ रूपये से आठ सौ रुपये तक का था। सैनिक अफसरों को जवाहिरात, पोशाक, घोड़े और हाथी इनाम में दिये गये।

---

६

# सरजा शिवाजी जंग जीतना चलत हैं

अफजल खाँ की मृत्यु के १८ दिन बाद पनहाला जीत लिया गया।

"महाराज अन्नाजी-दत्तो ने बडी बहादुरी से पनहाल का किला ले लिया हैं। हमें सैनिको का अधिक बलिदान भी नहीं करना पडा और काम बन गया।" सैनिक ने उचित अभिवादन करने के बाद शिवाजी से कहा। वे मुस्कराते हुए बोले, "बलिदान!...बलिदान तो उसका होता है जो बलिदान से दूर भागता है। मौत उसके पास आती है जो उससे डरता है। मृत्यु को हँसकर गले लगाने वाला कभी नहीं मरता। जब तक हम मौत से नहीं डरेंगे, तब तक अमर रहेंगे, तब तक हमें बराबर सफलता मिलती रहेगी।...और बताओ क्या समाचार है?"

"ऐसी खबर है कि बीजापुर की आज्ञा से हाकिम रुस्तम-ए-जमाँ बदला लेने की तैयारी कर रहा है। उसकी सहायता के लिये अफजलखाँ का लड़का फजलखाँ भी उसके साथ है।" दो शब्दों में भविष्य की आशंका से परिचित कराकर वह चुप हो गया।

'रुस्तम और फजलखाँ' शिवाजी कुछ सोचने लगे। उन्होंने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा, "फजल जरूर खतरनाक सिद्ध होगा। अपने बाप का बदला लेने के लिए वह कुछ उठा नहीं रखेगा। अच्छा, कोई बात नहीं मैं स्वयं पनहाला चलता हूँ। भगवती की कृपा से सब ठीक हो जायगा।"

रुस्तम तथा फजल का सामना करने के लिए शिवाजी पनहाले पहुँचे।

क्या रुस्तम सचमुच हमारा विरोध करेगा ? उसकी हमारी दो पुस्त की पुरानी दोस्ती है,[1] और इस समय बीजापुर की बड़ी साहिबा का व्यवहार भी उसके प्रति अच्छा नहीं। तो वह किसलिए जान देगा ? यदि वह लड़ेगा भी, तो दिखावटी लड़ाई होगी। असली शत्रु तो फजलखॉं ही है, किन्तु वह भी साधारण नहीं। शिवाजी का अनुमान ठीक ही था।

एक दिन कुछ मावले दौड़े पनहाले की ओर आये और समाचार दिया कि एक लम्बी सुलतानी सेना इधर बड़े वेग से चली आ रही है। आस-पास के गाँव तहस नहस हो रहे है। समाचार से किले में खलबली मच गयी। प्रसिद्ध सैनिक अधिकारी नेताजी पालकर, अन्नाजी दत्तोजी आदि ने इस गम्भीर स्थिति की चर्चा शिवाजी से भी की। शिवाजी ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा—कोई हरज नहीं, आने दो। "लेकिन महाराज, वे बड़ी तेजी से चले आ रहे है।" दत्तोजी बोले। "और गाँव का गॉव बरबाद होता जा रहा है।" नेताजी ने कहा।

"तो इससे हमें घबराने की क्या जरूरत ? ये गाँव हमारे अधिकार क्षेत्र के नहीं, बीजापुर के हैं। यदि सुलतानी फौज इन्हें बरबाद करती है, तो वह अपने को तबाह करती है।" शिवाजी ने दूरदर्शिता की बात कही।

"और यदि उन्हे आगे बढ़कर रोका जाय तो कैसा हो ?" अन्नाजी दत्तो ने पूछा।

"बहुत बड़ी मूर्खता होगी। उन्हे तो बेरोक-टोक आने देना चाहिए[2]। जब वे इस पहाड़ी किले के निकट आ जायें, तब चारो ओर से उन पर टूट पड़ना चाहिए।"

"यह तरकीब है अच्छी। किसी प्रकार का विरोध न करने का कारण वे हमारी अकर्मण्यता समझेंगे। हमें उनके इस अज्ञान से लाभ उठाने का अच्छा मौका मिलेगा।" पालकर शिवाजी की बात समझ गयी। बड़े धैर्य से आक्रमण की प्रतीक्षा होने लगी।

००००००

---

१. यदुनाथ सरकार।

2. History of the maratha people by kincaid. Parasnis page 165

"क्या देखते हो। किले की पहाडी चारो ओर से देख लो। एक भी मराठा आज बचकर निकलने न पाये।" फजल का ललकारना था कि फौज ने पनहाले की पहाड़ी चारों ओर से घेर ली। फिर भी मराठो की ओर से किसी प्रकार का प्रतिरोध न हुआ। फजल शक्ति के मद मे चूर था। वह सोचता था कि शिवाजी में क्या शक्ति है जो इस समय मेरा सामना कर सके। घेरा पड जाने के बाद वह रुस्तम के पास आकर अभिमान भरे स्वर मे बोला, "देखो— तुम्हारा बहादुर बिल मे चूहे की तरह छिपा पड़ा है। उसमे है हिम्मत जो हमारा सामना कर सके?" रुस्तम मुस्कराया—-अपने अज्ञान पर या अपने मित्र फजल के अज्ञान पर? पुनः वह साश्चर्य बोला "फजल, दुश्मन को छोटा मत समझो। इसमें कुछ भेद है।" "हाँ हाँ भेद है। औरतो की तरह छिपकर जान बचाने का भेद है। मौत के खतरनाक पजे से डरकर कैदखाने मे दोज़क की जिन्दगी बिताने का भेद है।" ऐंठते हुए फजल बोला।

रुस्तम ने कुछ न कहकर उसके अभिमान की अग्नि में आहुति देने से चुप रहना ही अच्छा समझा। अकड़ता वह सेना की दूसरी टुकड़ी की ओर चला गया। पड़ाव पड़ा। सैनिक कुछ ढीले पड़े।

पनहाले के पहाड़ी क्षेत्र पर सन्ध्या के अधरों की लाली बिखर गयी। अचानक किले में जोर का कोलाहल हुआ। किले का फाटक खुला। मराठे सैनिक क्षिप्र गति से अपने इष्टदेव और नेता की जय बोलते हुए निकल पड़े। महल के ऊपरी भाग से निश्चित कोणों पर लगायी गयी तोपों ने आग उगलनी आरम्भ कर दी। सुलतानी सेना में खलबली मच गयी। चारों ओर से किये गये इस शक्तिशाली आक्रमण से उनके होश गुम हो गये। वे कुछ सोच न सके। भगदड़ के अतिरिक्त उनके सामने अब कोई रास्ता न था।

जैसा आप जानते हैं, रुस्तम लडना नहीं चाहता था। वह जान बचाकर मीराज की ओर भागा। इससे फजलखाँ के क्रोध का ठिकाना न रहा। पूरे सेना का नेतृत्व उसने अपने हाथ में लिया। आज उसके शान की बात थी। आज उसे अपने पिता का बदला लेना था। किन्तु, उसकी इच्छा पूरी न हो

सकी। मराठों की विकराल वाहिनी के सम्मुख शत्रु झुकने लगे। चारो ओर हो हल्ला मच गया। सेना के पैर उखड़ गये। घोड़े हाथी पैदल सभी भाग चले। इन भागने वालों पर भी गहरी मार पड़ी। दो हजार घोड़े और बारह हाथी पकड़ लिये गये, किन्तु फजलखाँ भाग निकला। उसका सपना आशा के घने मेघ खण्डों में बिजली की तरह चमक कर रह गया।

००००००

"अब मै समझता हूँ कि बीजापुर में कोई बहादुर नहीं रहा। उम्मीद के बिना जिन्दगी, ताकत के बिना सफर और बहादुरों के बिना सल्तनत बेकार है। अच्छा हो, हम बीजापुर छोड़कर जंगलों में कुत्तो की तरह अपनी जिन्दगी बिताये। हमारे लिये यह डूब मरने की बात है कि मामूली जागीरदार का लड़का शिवाजी भोसले रोज ही हमारे किले जीतता चला आ रहा है और हम कुछ कर नहीं पा रहे हैं। हमारे अनेक वीरो ने इसके लिये बीड़ा उठाया, लेकिन किसी को कामयाबी हासिल न हो सकी..." यह आवाज आदिलशाह की थी। सभी दरबारी चुप थे। शात लजित नेत्रो से जमीन की ओर देखते रहे। वह बोलता ही गया, ".. अब वह सह्याद्रि पार कर पश्चिम की ओर रतनगिरि में बढ़कर कोंकण के शहरों और बंदरगाहो को बेरोकटोक लूट रहा है। उसका दूसरा दल बीजापुर के शहर के पास तक आ गया है। अब क्या बाकी रह गया? याद रखो यह सल्तनत हमारी ही नहीं, तुम सबकी है। यदि हमारी हार होती है तो तुम सब पीसे जाओगे। अब हमारा एक ही रास्ता है कि हम उसका जी जान से मुकाबला करें। इसके लिये मै समझता हूँ कि मेरे दरबार का इस समय सबसे योग्य उमराव सिद्दी जौहर है। मैं आज उसकी बहादुरी के लिये 'सलावतखाँ' की पदवी देता हूँ और उसे शिवाजी को दबाने की जिम्मेदारी का काम सौंपता हूँ।" अत्यन्त पश्चाताप एवं ग्लानि के वातावरण में भी तालियाँ बज उठीं। सुलतान ने फजलखाँ को सम्बोधित कर बोलना जारी रखा, "याद रखो फजल, अब शिवाजी से तुम्हारी लड़ाई बीजापुर के लिए नहीं है। तुम्हें तो अपने बाप का बदला लेना है—और जब तक तुम यह बदला

ले न सकोगे, तब तक तुम्हारे बाप की रूह कब्रिस्तान में तड़पती पड़ी रहेगी। फजल की आँखें डबडबा आयीं। क्रोध से उसका चेहरा सिंदूर हो गया।

दूसरे दिन बड़े उत्साह से सिद्दीजौहर और फजलखाँ पन्द्रह हजार सैनिक लेकर चल पड़े। कोल्हापुर शहर में इन लोगों ने अपना अड्डा जमाया। २ मार्च १६६० ई० को पनहाला पुनः घेरा गया।

मराठों के सामने यह बड़ी आपत्ति आयी। किले के बाहर निकलने के सभी मार्ग अवरुद्ध थे। कब तक भीतर रहेंगे? आखिर रसद एक न एक दिन चुक जायगी। धीरे-धीरे दिन बीतते गये। पाँच महीना बीत गया। घेरा पड़ा रहा, पर सिद्दीजौहर ने किले पर आक्रमण नहीं किया। उसकी इच्छा तो कुछ और थी। वह सोचता था, कि मैं सुलतान के लिए अपनी शक्ति व्यर्थ क्यों खर्च करूँ। जब शिवाजी ऐसा आदमी स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर सकता है, तब मै भी अपने लिए क्यो नहीं एक स्वतंत्र राज्य बनाऊँ? उसके शांत पड़े रहने के इस कारण का शिवाजी को किसी प्रकार पता चल गया। मनुष्य की कमजोरियों से लाभ उठाना वे अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने एक दिन एक गुप्त पत्र जौहर के पास भेजा। जिसमें उसकी बहादुरी की प्रशंसा करते हुए शिवाजी ने मिलने के लिए अनुमति मांगी थी।

अपनी तारीफ पर वह फूला नहीं समाया। उसने मिलने की अनुमति दे दी। दूसरे दिन शिवाजी अपने दो-तीन साथियो के साथ आधी रात में किले से बाहर निकले और जौहर के शानदार खेमें की ओर बढ़े। मुसलमान सैनिक चुपचाप सो रहे थे। गहरी निस्तब्धता थी। पहरे वालो की भी पलकें मुँदी जा रही थीं, मानो उनमें सौ सौ मन के पत्थर बँधे हो। इन लोगो की आँखें बचा-कर वे जौहर के खेमें में घुसे। अपने प्रिय मित्रों के साथ वह बैठा शिवाजी की राह देख रहा था। नमस्कार बंदगी हुई और फिर राजनीतिक खेल आरम्भ हुआ। शिवाजी ने अत्यन्त प्रेम एवं सद्भावना दिखाते हुए कहा—जौहर, इतनी परेशानी उठाने तथा रात दिन लड़ाई के लिए तैयार पड़े रहने में तुम्हारा क्या लाभ है? ऐसा भी तो नही होगा कि तुम जिन प्रदेशों को जीत लोगे उसके राजा बन जाओगे। तब जान हथेली पर लेकर ऐसी बहादुरी एवं साहसिक

कार्य करने का क्या फल ? मरोगे तुम और मौज लेगा सुलतान ? कैसी बुद्धिमानी है ?

"...तुम्हारा मतलब ?" सिद्दी को ऐसा लगा, जैसे वह अपने मन की बात सुन रहा हो।

"हमारा मतलब है कि तुम बहादुर आदमी हो। अपने बल पर यदि चाहो तो स्वाधीन राज्य की स्थापना कर सकते हो। राजा कहाओगे। इतिहास में तुम्हारा नाम होगा। तुम्हारे इस काम में किसी प्रकार की भी सहायता के लिए मैं सदा तैयार रहूँगा।"

शिवाजी ने जो कुछ कहा, सिद्दी उसे पहले से ही सोचता था। अपने मन की बात सुनकर वह अत्यन्त खुश हुआ। दोनो ने एक दूसरे की सहायता करने की शपथ ली। और यह निश्चय हुआ कि घेरा इसी प्रकार पड़ा रहे, जिससे सुलतान को शंका न हो सके तथा ऐसा प्रबन्ध हो जिससे मराठों को भी आवश्यक सामग्री किले में मिलती रहे। बातचीत के बाद शिवाजी चुपचाप किले में चले आये।

०००००

"महाराज, पवनगढ़ खतरे में है। फजलखाँ ने ऊँची पहाड़ी पर तोपें लगाकर उस पर गोलाबारी करनी आरम्भ कर दी है। कई जगह से किले की दीवारें टूट चुकी हैं।" यह एक ऐसा समाचार था जिसे सुनते ही पनहाले किले में जैसे मातम छा गया। पवनगढ़ पनहाले के पास था। उसका पतन होते ही इसे भी बचाना कठिन था। फजल अपने पिता की मृत्यु का बदला लिए बिना शान्त नहीं हो सकता। कोई उपाय दिखायी नहीं देता। टेढ़ी खीर थी। सिद्दी तो शान्त था, पर वह फजल की आँखो में धूल कैसे झोके ? चारो ओर मराठे जकड़े थे। भागने के सभी रास्ते बन्द थे। अब किसी स्थान से घेरा तोड़ना जरूरी था।

आषाढ़ कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा की रात को किले में थोड़े से सिपाहियों को रखकर शिवाजी अपनी सारी सेना के साथ बाहर आये। चाँदनी रात थी।

आकाश में बादलों के टुकड़े दिखायी दे रहे थे। सैनिक रोज की भाँति आज भी निश्चिन्त थे। अचानक शिवाजी ने पनहाला और पवनगढ़ के बीच की बीजापुर की छावनी पर हमला किया। तहलका मच गया। जाग हो गयी। इसी गोलमाल में शिवाजी विशालगढ की ओर भागे।

नीचे ऊँचे ककरीले पथरीले मार्ग पर मराठे भागे जा रहे थे। किन्तु कुछ ही घंटों मे उनके भागने की दिशा का ज्ञान फजल को गया। रास्ता उसके लिए अनजान था। हजारों मशाले जलायी गयी। इनकी रोशनी मे बीजापुरी सेना फजल तथा सिद्दी हलाल के नेतृत्व में शिवाजी का पीछा करती चल पड़ी।

ऊपर से घाटी मे उतरती हुई सेना के मशालो की रोशनी मराठो को दिखायी दी। वे और तेजी से लक्ष्य की ओर बढे और रास्ता बराबर बदलते गये जिससे शत्रु को ठीक अनुमान न लगे। रातभर आकाश में मुस्कराता चद्रमा दोनों दलों की दौड़ देखता रहा।

रात की भी जिदगी की रात आयी। सबेरा हुआ। अब भी विशालगढ़ आठ मील दूर है। पीछा करती हुई सेना भी आ पहुँची है। अब भागने से काम नहीं बनेगा। सामना करना जरूरी है। शिवाजी ने सैनिको से कहा— बहादुरों शत्रु निकट आ चुका है। हमें अब उसका मुकाबला करना चाहिए जिंदगी और मौत का एकबार फिर सामना है। इस काया की माया छोड़ो। शत्रु दल पर भूखे सिह की भाँति टूट पडो।" शिवाजी की बात पूरी नहीं हुई थी बाजी महाप्रभु तड़पा—नहीं महाराज ऐसा न कीजिए। आप गजपुर की सकरी घाटी से भागिए। मैं शत्रु का सामना करता हूँ। उसे घाटी के इसी ओर रोकता हूँ। सकुशल पहुँचने पर विशालगढ़ से तोप छोड़िएगा।" बाजी महाप्रभु की आवाज मे स्वामिभक्ति तथा पराक्रम दोनों की झलक थी।

"मैं यह नहीं चाहता कि मै भाग जाऊँ और तुम सब मारे जाओ। इस बलिदान के पवित्र महायज्ञ मे मैं भी अपनी आहुति देकर भाग्यवान् बनना चाहता हूँ।" शिवाजी ने कहा। "ऐसा मत कहिए प्रभू! हम लोगों के मारे जाने पर भी यदि आप जीवित रहें, तो हमारे ऐसे लाखो तैयार हो जायँगे, किन्तु

आपको खोने पर हमें दूसरा शिवाजी नही मिलेगा। अपने जीवन की कदाचित् यह अन्तिम प्रार्थना कर रहा हूँ, महाराज ! स्वीकार कीजिए। आधी सेना को लेकर निकल जायिए। आधी मेरे लिये काफी है।"

"बाजी, मै तुम्हारी वीरता का कायल हूँ, लेकिन...।"

"लेकिन कुछ नहीं महाराज। दुश्मन पहुँच चुके हैं। अब चले जायिए मेरे प्रभो, मै हाथ जोडता हूँ।

बाजी का आग्रह तथा शत्रु को निकट पहुँचा देखकर शिवाजी सेना लेकर गजपुर की घाटी से चल पड़े। इधर बाजी महाप्रभु घाटी के प्रवेश स्थल पर अपने बहादुर साथियों के साथ शत्रु से जूझ पडने के लिये डट गया। घमासान लडाई हुई। बीजापुरी सेना घाटी में किसी भी शर्त पर घुसना चाहती थी। इधर मराठो को मर जाना कबूल था, पर एक इञ्च भी शत्रु को बढने देना कबूल नहीं।

बाजी महाप्रभु मे आज कहाँ की शक्ति आ गयी है? वह हिमालय की तरह मार्ग मे अडा है। चारो ओर से आक्रमण हो रहे हैं जैसे उनके लौह तन पर उसका कोई प्रभाव नही। उसक सारा शरीर छिद गया। फिर भी वह खड़ा है, आदमी है या दैत्य? अरे यह क्या हुआ? नोकीला भाला उसकी छाती मे लगा। वह सँभल न सका। गिर पड़ा। मराठे पीछे हटने लगे। अब भी बाजी के तन में प्राण शेष था। अभी तक तोप की आवाज सुनायी नहीं पड़ी! वह विचलित हो गया। एक बार वह अपनी सारी शक्ति लगाकर फिर उठा और लगा अचूक वार करने। मरते मरते उसने कई को मृत्यु के घाट उतारा। इसी बीच उसे तोप की आवाज सुनायी पड़ी। 'तोप' वह मारे खुशी में जोर से तडपा। उसका सकल्प पूरा हो चुका था। जीवन के इस अन्तिम प्रयत्न के बाद वह गिर पडा। अत्यन्त प्रसन्न हो उसके प्राण पखेरू उड़ गये। बाजी ने अपने प्राणों की बाजी हार कर भी बाजी जीत ली थी।

बीजापुर की सेना के बदूकचियों ने गोली वर्षा आरम्भ की और देखते ही देखते घाटी पर अधिकार कर लिया। ७०० मराठे मारे गये। बचे मावले अपने नेता का शव लेकर पहाड़ों में भाग गये। आज भी गजपुर की घाटी के प्रत्येक

पत्थर पर अपना प्रण पूरा करने वाले इस बहादुर की कहानी लिखी जान पड़ती है।

जीत जाने के बाद भी बीजापुर की सेना विशालगढ़ की ओर न बढ़ी। यह पहाड़ी इलाका उसके लिए बिल्कुल अनजान था। लोगो ने लौटना ही उचित समझा। इधर जब सिद्दी जौहर के विश्वासघात की कहानी सुलतान आदिलशाह को मालूम हुई, तब वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया और स्वयं उसे दंड देने के लिये पनहाला की ओर बढ़ा। जौहर अब क्या करता? उसने सोचा बहाना करना ठीक नहीं। उसने पनहाला पर खुद आक्रमण किया और उसे जीतकर सुलतान को समर्पित कर दिया। यह घटना २२ सितम्बर १६६० की है।

००००००

कहते है कि विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। जिस समय शिवाजी अपने राज्य के दक्षिणी भाग में हार रहे थे, उसी समय उत्तरी भाग में उन्हें गहरी पराजय मिली।

शायस्ताखाँ पूना में था। २५ फरवरी १६६० ई० को अहमदनगर से चलकर मार्ग में अपनी छावनियाँ बनवाता तथा मराठों को भगाता वह पूना पहुँचा था। अभी भी उसके मार्ग में कंटक था। निर्विघ्न पूने में मुगलों के लिए रसद नहीं पहुँच पाती थी। मार्ग में चाकन का दुर्ग पड़ता था, जो मराठों के अधीन था। शायस्ताखाँ ने उस पर अधिकार करना चाहा। उसने २१ जून को चाकन घेर लिया। किंतु, क्या चाकन आसानी से मिलने वाला था? कभी नहीं। किलाध्यक्ष फिरंगोजी नरसाला के जीते जी यह सम्भव नहीं था।

कई दिन हो गये, घेरा ज्यों का त्यों पड़ा था। मुगलों का यह अभेद्य घेरा पारकर भी मराठे मूल्यवान समाचार ले आते थे। दिन भर लड़ाई चलती थी, सन्ध्या को बंद हो जाती थी। दस पन्द्रह दिन इसी प्रकार बीत गये। दोनों दल अजेय थे। एक दिन रात्रि में मुगल सेना के अधिकारी अपने सेनापति शायस्ता-

खाँ से मिले और युद्ध की नीति पर प्रकाश डालते हुए बोले—"मराठों को इस प्रकार हराना कठिन है। अब बरसात का समय आया। पड़ाव कब तक पड़ा रहेगा? तम्बू तानकर तथा खेमा डालकर हम दुश्मन का सामना कर सकते हैं, पर बादलों का नहीं।"

शायस्ताखाँ बहादुर था। इस प्रकार की कायरतापूर्ण बात सुनना नहीं चाहता था, वह तड़पते हुए बोला—"तो तुम लोगों का मतलब है कि घेरा हटा लिया जाय और हम अपनी लाचारी से पस्त होकर अपना-सा मुँह लेकर लौट जायें।"

सब चुप थे। एक बड़ी धीरे से बोला—"...हमारे कहने का मतलब है कि मराठे किले में है? आँधी पानी का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, किंतु इस पहाड़ी इलाके में खेमा डाले बरसात से हम नही लड़ सकते। अच्छा होता यदि इन दिनो लडाई...बंद"

"बंद.. हो जाती? कायरो की तरह सोचते होते। बहादुरों की तरह सोचो, जैसा हिंदुस्तान ऐसे बड़े मुल्क पर शासन करनेवाला सोचता है। क्यो नहीं तुम लोग सुरंगे बनाकर उनमें बारूद भरकर किले की दीवार उडा देते। तब तो हमारे दुश्मन भी इस बरसात में वैसे ही हो जायँगे जैसे हम हैं।"

खाँ की बात सुनते ही सब सिर झुकाकर चुपचाप चले गये। उसी रात से सुरंग बनाने का काम जारी हो गया। महीनों के कठिन परिश्रम के बाद कई ओर से सुरंगे बनायी गयीं। यह कार्य अत्यन्त गुप्त रखा गया। मराठों को इसका जरा भी आभास नहीं था।

१४ अगस्त का दिन कितना खतरनाक था, जब तीन बजे सन्ध्या को अचानक कान फाड़ डालनेवाला जोर का धड़ाका हुआ। किले की दीवारें कई ओर से गिर गयीं। तुरंत फिरंगोजी नरसाला ने अपनी सेना इकट्ठी की, जिससे भगदड़ न मच सके और सबको सम्बोधित कर संक्षिप्त भाषण दिया। "मित्रों, पनहाला चला गया। कल्याण पर भी मुगल सेना का कब्जा हो गया। अब इस चाकन की ही बारी है। क़िले की दीवारें टूट चुकी हैं। पर कोई हरज नहीं हैं। हमारी आत्मा के लिए अभी शरीर की दीवार बाकी है। जब तक यह दीवार टूट नहीं

जाती, तब तक शत्रु हमारा कुछ नहीं कर सकता।" नरसालाजी बोल ही रहे थे कि मुगल टूटी हुई दीवार पर चढ़ आये और टूट पड़े। घमासान लड़ाई हुई। मुगलो ने बम और हथगोलों का भी प्रयोग किया। मराठे मरते गये पर उन्होंने शत्रु को बढ़ने नहीं दिया। रात में लड़ाई चलती रही। बादल बरसता रहा। तलवारें चमकती रहीं। धरती का पानी और कीचड़ मरनेवालों के खून से लाल हो गया था। आधी रात को तलवारों की गति कुछ कम हुई, इसके बाद युद्ध बन्द हो गया। फिर भी दोनो दलों के लोग शात नहीं थे। युद्ध का परिणाम भी निश्चित हो चुका था। एक के लिए यह पराजय भी शानदार थी। दूसरे के लिये विजय भी कम मँहगी नहीं थी।

दूसरे दिन प्रातःकाल फिर मुगल पूरी शक्ति के साथ चढ़ आये। अब मराठों का टिकना मुश्किल था। फिर भी हर मराठा कई को मारकर मर रहा था। किला धीरे-धीरे अधिकार में आ गया था, किंतु फिरंगोजी की तलवार अब भी चल रही थी। मुगलों की क्या हस्ती जो उस पर अधिकार कर ले। शायस्ताखाँ ने उसका यह शौर्यपूर्ण कार्य देखा। उसका वीर हृदय उछल पड़ा। उसने युद्ध अविलम्ब रोक देने की आज्ञा दी। लड़ाई बंद होते ही फिरंगोजी पास बुलाये गये। शायस्ताखाँ उनसे ससम्मान बोला—फिरंगोजी मैं आपको बहादुरी से निहायत खुश हूँ।

"और मैं आपकी इस खुशी से निहायत खुश हूँ।" फिरंगोजी ने छूटते ही जबाब दिया। दोनों मुस्करा उठे। फिर खाँ ने कहा—हम वीर ऐसे वीरों की सदा इज्जत करते हैं। मेरा ख्याल है कि यदि आप मुगलों की सेवा में रहते तो हमारी सेना के रत्न होते। आप ऐसे बुजुर्ग के प्रति हमारी बड़ी श्रद्धा है। हम आपको अपनी सेना में रखकर गौरव का अनुभव करेंगे।"

"मुझे दुख है कि आपको यह गौरव प्राप्त न हो सकेगा। जीवन भर जिसका नमक खाया है, मरण पर्यन्त उसकी ही सेवा करूँगा। मातृभूमि के लिए भूखे मरने में भी मुझे जो सुख है वह मुगलों के वैभव में नहीं।" शायस्ताखाँ इस वीरोचित उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने घायल फिरंगोजी

को मराठों के खेमे तक सुरक्षित पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया।

इस लड़ाई में करीब तीन सौ मुगल मारे गये और छह सौ घायल हुए।

००००००

"भागो, भागो। जान लेकर भागो। यदि जिन्दगी रहेगी, तो सारी चीजे फिर हो जायँगी।" छोटे-मोटे राजा, जागीरदार, जमींदार साधारण प्रजा सब में भगदड़ मची थी। हर जबान पर यही चर्चा थी, "उसमें अवश्य कोई दैवी शक्ति है। जिधर जाता है, उधर ही उसकी विजय होती है। अब तो मुगलों को भी मात खानी पड़ी। क्या मुगल भी हारे? हाँ-हाँ, सुना नहीं ३ फरवरी (१६६१ई०) को चार हजारी मनसबदार कारेतलबखाँ को भी हार माननी पडी। उसने उम्बरखिण्ड में बडी तोपे बंदूक और रसद के साथ खेमा डाला। उसका पता किसी प्रकार शिवाजी को लग गया। उसने उसे चारो तरफ से घेर लिया। पानी ले जानेवाले मार्ग को भी रोक लिया। सबके सब प्यास से मरने लगे। लाचार होकर कारेतलबखाँ ने आत्मसमर्पण कर दिया।" "तो क्या उसे शिवाजी ने मार डाला?"

"नहीं, उसे प्राणों की भीख देकर विदा किया। पनहाला, कल्याण, चाकन के चले जाने के बाद जैसे वह अधिक खूँख्वार हो गया है। मुगलों का सामना करने के लिये नेताजी पालकर को उत्तर की ओर भेज दिया है और स्वयं दक्षिण कोंकण में लूटता, जलाता, गाँव के गाँव उजाड़ता चला आ रहा है। रत्नगिरि जिला तबाह हो गया। लोग भागे चले आ रहे हैं। अब हम लोगों को भी भाग चलना चाहिए।"

"अरे डर क्या है, यार। अभी शृंगारपुर बहुत दूर है। फिर यहाँ के राजा सूर्यराव और मंत्री पिलाजी शिर्के शांत बैठे रहेंगे क्या?"

"हाँ भाई, हम लोगों से क्या मतलब? 'कोइ नृप होइ हमैं का हानी' फिर भी शिवाजी हमारे लिये सूर्यराव से अच्छा ही। सुना है वह ब्राह्मणों की बड़ी सेवा करता है। गरीब दुखियों को कभी नहीं सताता। उसने प्रसिद्ध तीर्थ परशुराम क्षेत्र में ब्राह्मणों को खूब दान दिया। टूटे-फूटे मंदिर बनवाये।

हाँ-हाँ, वह कुरान और फकीरों की भी इज्जत करता है। हम लोग क्यों भागें? भागें वे लोग जो गरीबों के शत्रु हैं और दूसरे के धर्म को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

शृङ्गारपुर में यही चर्चा चल रही थी। शिवाजी से सभी आतंकित थे। नगर में भगदड मच गयी थी। शिवाजी शृंगारपुर की ओर ही बडी तेजी से चले आ रहे थे क्योकि सूर्यराव को उन्हें दण्ड देना था। १६५६ मे उसने उनकी अधीनता स्वीकार की थी। किन्तु आदिलशाह के भडकाने पर उसने सगमेश्वर नामक स्थान में आधी रात के समय मराठो पर आक्रमण किया। तानाजी मालसरे की वीरता का श्रेष्ठ प्रदर्शन उस दिन दिखायी पडा। कुछ घंटों में सूर्यराव अपना सा मुँह लेकर संगमेश्वर से भागा। यह कहानी हाल की थी। शिवाजी का क्रोध ज्यो का त्यो बना था।

२६ अप्रैल को सूर्य छिपने से पहले सूर्यराव से बदला लेने शिवाजी ने नगर में प्रवेश किया। लोग घर-द्वार छोडकर भागने लगे। मराठों ने मनमानी लूट की, किन्तु भागने वालो पर हाथ नहीं उठाया। हत्या करना और जान लेना उनका उद्देश्य नहीं था। इसी भगदड में सूर्यराव भी अपनी जान लेकर भागा। उसके पास इतना समय नही रहा कि वह और कुछ ले जा सके। नगर पर बडी आसानी से अधिकार हो गया। पल्लीवन पहले ही अधिकार में आ गया था। शिवाजी ने दोनो स्थानो का गवर्नर श्री त्रिम्बक भास्कर को बनाया। नगर की रक्षा के लिये निकट का पहाडी किला—परिचितगढ की मरम्मत की गयी। शृङ्गारपुर के आन्तरिक शासन का भार पुराने मत्री दिलाजी शर्के को ही दिया गया। वह बुद्धिमान तथा योग्य शासक था।

अब जंजीरा से खारेपटन तक का पश्चिमी समुद्री किनारा शिवाजी के अधिकार में था। दाभोल संगमेश्वर राजापुर आदि बड़े नगर तथा बंदरगाह उनके हाथ में आ गये थे। इस प्रदेश से उन्होने चौथ वसूल किया। उनकी आमदनी बढ़ी।

इसके बाद उन्होंने अपने राज के उत्तर की खबर ली।

००००००

शिवाजी सिंहगढ़ किले में आये। मराठों और मुगलों का युद्ध इस बीच धीरे-धीरे चलता रहा है। कल्याण नौ वर्षों तक मुगलो के अधिकार में रहा। इस बीच मराठे आक्रमण करते रहे, किन्तु कोई नतीजा हाथ न आया। उलटे मराठो के ग्रामो पर मुगल बराबर धावा बोलते, लूटते तथा उसे तबाह करते रहे। शिवाजी के सामने अब केवल शायस्ताखाँ था। वह मई १६६० से पूना मे था। अब तक मराठे उसका बाल बाका भी न कर पाये थे।

युद्ध की गति पर विचार करना था। क्या शायस्ताखाँ को मिलाया जा सकता है? कभी नहीं वह बहादुर है। फिरगोजी नरसाला के साथ हुआ उसका व्यवहार उसकी बहादुरी का परिचायक है। फिर खुला सामना करना तो बडा कठिन है। इस मानसिक उधेड बुन में कई दिन बीत गये। एक दिन उन्हे शायस्ताखाँ का भेजा एक पत्र मिला। जिसमे फारसी भाषा की कविता का एक अंश लिखा था। जिसका आशय था, तुम बहादुर नहीं, बंदर हो। जंगल और मे ही छिपकर अपनी रक्षा कर सकते हो। बहादुर होते तो खुले मैदान में आते।

शिवाजी ने कविता का अनुवाद सुना। पत्रवाहक सामने ही खडा था सुनते ही उनके मस्तिष्क में बिजली कौंध गयी, फिर वे मुस्कराते हुए पत्रवाहक से बोले— अच्छी बात है। मेरा भी उत्तर लेते जाओ और खाँ को मेरी ओर से नमस्कार करके आदर पूर्वक उसे दे देना।

शिवाजी ने अपने पत्र में संस्कृत का पद्यांश लिखवाया था। जिसका तात्पर्य था कि मै केवल बन्दर ही नहीं, बन्दरो का राजा हनुमान हू, जिसने राम की सहायता कर रावण का विनाश किया था[1]।

इस पत्र व्यवहार के बाद ही शिवाजी ने अपने प्रमुख सेनापतियों, सरदारों एवं साथियों को बुलाया। इनमे नेताजी पालकर, तानाजी मालसरे ऐसाजी कंक आदि प्रमुख व्यक्ति थे। शिवाजी ने कहा—मेरे तथा शायस्ताखां के पत्र के बारे में तो आप सभी जानते होंगे। इस समय हमारे सबसे बड़े शत्रु मुगल हैं। अब उनका मुकाबला करने के लिये हमे कौन सी युद्धनीति ग्रहण करनी चाहिये?

---

**१. शिवदिग्विजय से।**

"महाराज उनकी शक्ति अपार है। हम उनसे लड़कर जीत नही सकते।" मालसरे ने कहा।

"पूना पहुँचने के मार्ग में पहली छावनी यशवन्त सिह की है। करीब दस हजार सैनिको के साथ बड़ी बड़ी तोपें उसके पास है। शायस्ताखाँ से वह कम खतरनाक नहीं है।"—ऐसाजी कंक बोले।

"मुझे यशवन्त को अवश्य मिला लेना चाहिए। तभी कोई सफलता मिल सकती है।" यह आवाज नेताजी की थी।

शिवाजी मौन सबकी बात सुन रहे थे। उन्होने देखा कि शायस्ता की शक्ति से सभी भयभीत हैं। ऐसी स्थिति में उन्होने कुछ कहना ठीक नहीं समझा। अन्त में वह इतना ही बोले—घबड़ाने की बात नही है। शिवानी सब ठीक कर देंगी। आप भी प्रयत्न करते रहिए। मै तो सोचूँगा ही।

दूसरे दिन उन्होने बाबाजी बापूजी और चिमनाजी बापूजी को गुप्त रूप से बुलाया और उन्हे चुपचाप रात होते ही पुनः आने को कहा। दोनो शिवाजी के अंगरक्षक थे। इतना तो दोनो को मालूम हो गया कि महाराज आज रात में सिंहगढ़ के बाहर जायँगे, पर कब ? कहा ? क्यो ? वे कुछ नहीं जानते थे।

बात अत्यन्त गुप्त रखी गयी। चुपचाप दोनो शिवाजी से मिले। वे वेश बदले पहले ही से तैयार थे। उन्हें वे साथ ले सिंहगढ़ से बाहर निकले। रात का प्रथम प्रहर था। मार्ग में सन्नाटा था। तीनो घोड़े पर चले जा रहे थे। आपस में किसी प्रकार की बात-चीत भी नही हो रही थी।

कुछ ही समय में वे यशवन्त सिह के खेमें के पास पहुँचे। शिवाजी ने अपने दोनों अंगरक्षको को बाहर रहने की आज्ञा दी और कहा कि यदि आपसे कोई कुछ पूछे, तो बता दीजियेगा कि शिवाजी के दूत यशवन्त महाराज से मिलने आये हैं। हम लोग उन्हीं के साथ है। अंगरक्षको को अब मालूम हुआ कि मामला क्या है।

इसके बाद शिवाजी खेमें के द्वार पर गये। पहरेदार उन्हें भीतर ले गया। उन्हें देखते ही अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में यशवन्त बोला, "कहिए इतनी रात्रि को आपने कैसे कष्ट किया ?" उसने शिवाजी को पहचाना नहीं।

दूत वेशधारी शिवाजी बोले—"आप ऐसे शक्ति शाली, क्षत्रिय कुल दीपक को औरंगजेब का दास देख मेरे प्रभु अत्यन्त चिन्तित हो उठे हैं।" यशवन्त जोर से हंसा। शिवाजी कहते गये—"...जिसकी धमनियों में राजपूती रक्त हो, जिसके पूर्वजों का शौर्य सम्पूर्ण भारत में विख्यात हो, जिसके पराक्रम को देखकर औरंगजेब ने भी दाँतों तले अंगुली दबायी हो, जो उस कुल तिलक के परिवार का हो, जिसने कभी मुगलों का दास होना स्वीकार नहीं किया—अब वह मुगलों का गुलाम हो गया, धन और चार दिन में नष्ट हो जाने वाले नश्वर सम्मान के लोभ में हिन्दू होकर उसने हिन्दू के विरुद्ध तलवार उठायी। आपको देखकर हमारे प्रभुको आश्चर्य है महाराज, आप राजपूत है। मराठों में राजपूती रक्त है। क्या अब भाई की ही तलवार भाई पर उठेगी। क्या सचमुच हम लोग आपस मे लड़ेंगे, और वह भी विदेशियो की कीर्ति फैलाने के लिए, उनके राज का विस्तार करने के लिए। महाराज, इतिहास भला हम लोगो के सम्बन्ध में क्या कहेगा?" शिवाजी चुप हो गये और एक टक यशवन्त के चेहरे की ओर देखते हुए खड़े रहे। अब तक उनकी वाणी बोल रही थी। अब आँखो ने मूक भाषा में बोलना शुरू किया।

कुछ देर बाद यशवन्त ने अत्यन्त गम्भीर स्वर में कहा—"तुम्हारे प्रभु को मुझपर आश्चर्य तो है, किन्तु वह चाहते क्या है?"

"वे चाहते है, कि यदि आप जैसे वीर शिरोमणि हमारी सहायता न कर सकें, तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु कभी हमारे मार्ग में बाधा भी न पहुँचायें।"

"अच्छी बात है। अपने महाराज को मेरी ओर से आश्वस्त कर दो कि मुझसे उनकी किसी प्रकार की हानि न होगी।" पूर्ण अश्वासन पाकर जब देखा कि अब खतरा नही है, तब शिवाजी ने अत्यन्त गर्व से बोले, "यशवन्त, तुम शिवाजी के दूत से नहीं, स्वयं शिवाजी से बात कर रहे हो।"

यशवन्त सिंह बड़े आश्चर्य मे पड़े। मन मे उनकी योग्यता तथा बातचीत के ढंग की प्रशंसा की। शिवाजी का वहाँ सम्मान हुआ। आधी रात के पहले वे वहा से चले आये। इस घटना को और किसी ने नही जाना।

ooooo

५ अप्रैल १६६३ई. का दिन शिवाजी के जीवन का एक महत्वपूर्ण दिन था। अभी तक उनके गुप्तचर पूना से नहीं लौटे थे। उन्होने दो ब्राह्मण गुप्तचर पूना भेजे थे[1]। इसीसे उनमें कुछ घबराहट थी। यो तो पूना के जिस लाल महल में शायस्ताखाँ था, शिवाजी का बचपन उसी महल में बीता था। वह उसका कोना कोना जानते थे, फिर भी वे कुछ विशेष समाचार से परिचित होना चाहते थे। आज रात पूना में कोई विशेष उत्सव तो नहीं है? रात्रि शान्त रहेगी या कोलाहलपूर्ण? इसी सूचना पर उनका पूरा कार्य-क्रम अवलम्बित था।

सूर्य अस्ताचलगामी हो चला। जिनकी प्रतीक्षा थी, वे आये। अनुकूल परिस्थिति का समाचार मिला। रात में पूना चलने के लिये कार्यक्रम बना।

एक हजार बहादुर सिपाहियो तथा पैदल मावलो और घोड़ सवारो को दो दल में विभक्त किया गया। एक दल के नेता नेताजी पालकर तथा दूसरे दल के नेता मोरो पंत हुए। इन लोगो को अपनी अपनी सेना लेकर मुगल शिविर के दाहिनी और बॉयी ओर एक एक मील की दूरी पर छिपकर रहने की आज्ञा हुई। फिर उन्होने चार सौ बहादुर सिपाहियो को अपने साथ लिया। इसमें दो सौ चिमनाजी बापूजी के और दो सौ बाबाजी बापूजी की अध्यक्षता में थे। सभी सैनिको ने मुगल सैनिको का वेश बनाया।

शिवाजी चुपचाप सिंहगढ़ से निकले। रात का एक पहर बीत चुका था। चारो ओर शान्ति थी। कुछ ही घंटे में लोग पूना नगर के मुख्य द्वार पर पहुँचे। नगर में कड़ा पहरा पड़ रहा था। कोई भी बाहरी आदमी बिना प्रवेश पत्र के अन्दर आ नहीं सकता था। शिवाजी बिना हिचकिचाये बड़े धड़ल्ले से भीतर घुसे। चौकी के सिपाहियों ने रोका और पूछा—आप लोग कहाँ जा रहे है?

"हमलोग बादशाह की दक्षिणी सेना के सैनिक हैं। अपने स्थान पर ठहरने के लिये जा रहे हैं।" शिवाजी ने अत्यन्त निर्भीक होकर कहा। पहरेदारो में से किसी को उन पर सन्देह नहीं हुआ। वे सामने से हट गये। शिवाजी अपने

1. New history of marathas by G. S Sardesai page 143

साथियों के साथ चुपचाप नगर में चले गये। मनमें सभी प्रसन्न थे। एक स्थान पर तो खूब चकमा दिया गया।

मध्य रात्रि थी और रमजान का महीना। मुसलमान दिन भर रोजा रहकर रात में सुख की नीद सो रहे थे। पहरेदारों की आवाज कुछ अन्तर से बराबर सुनायी पड़ रही थी। आकाश में चन्द्रमा भी नहीं था। अत्यन्त डरावनी अँधेरी रात थी। दीपक का टिमटिमाता प्रकाश भी शिवाजी के मार्ग में बाधक हो सकता था। वे अँधेरे में लुकते छिपते पहले राजमहल के मुख्य द्वार की ओर गये। इस समय उनके पास कुछ ही लोग थे। बाकी आदमियों को उन्होंने महल के निकट ही छिपा दिया। अत्यन्त क्षिप्र गति और दबे पाँव से सारा कार्य हो रहा था।

महल के प्रमुख फाटक पर तेज रोशनी जल रही थी, पहरेदार भी सजग थे[1]। शिवाजी प्रकाश देखते ही रुक गये। ऐसाजी कंक ने सोचा, कदाचित् महाराज के मन में किसी प्रकार का भय उत्पन्न हो गया है। वे बोले, "कोई हरज नहीं, महाराज। आगे बढ़िए। एक ही वार में सब ठंडे हो जायँगे, मुँह से चीख तक नही निकलेगी।" "जल्दी मत करो। धैर्य से काम लो। चलो महल के पीछे से चलता हूँ। अच्छा पड़ेगा।" शिवाजी महल के पिछले भाग में आये। छिपे लोग भी साथ हो गये।

महल के पिछले भाग से लोग धीरे धीरे ऊपर चढ़े। सबके हाथ में नंगी तलवारें थीं। सबसे पहले शिवाजी और उनके अंगरक्षक चिमनाजी भीतर आये और उसके बाद अन्य लोग। जो भी जागता, ऊँघता या सोता दिखायी दिया, इन लोगों ने उस पर अचूक वार किया। उन्हें मरने के पहले सिसकने तक का भी मौका नहीं दिया।

इसके बाद लोग भोजन बनाने वाले कमरे की ओर बढ़े। रमजान के धार्मिक महीने में रोजा रहने वाले मुसलमान सूर्य निकलने के पहले ही भोजन

---

१. शिवदिग्विजय

कर लेते हैं। इसीलिये इस कमरे में खटपट शुरू हो गयी थी। बावर्ची आग जला चुके थे। बिना किसी आहट के ये कमरे में घुसे और एक क्षण में भोजन बनाने वाले बावर्चियों का सिर धड़ से अलग कर दिया। फिर एक नयी आफत आयी। इस कमरे से महल के नौकरो के रहने के स्थान की ओर द्वार था। शिवाजी इसे जानते थे और इसीसे उन्होने यह मार्ग चुना था। जिस समय चिमनाजी ने देखा कि द्वार ईंटों से चुन दिया गया, वह पीछे लौटे। किन्तु शिवाजी ने संकेत किया कि अभी इन ईंटो की जुड़ायी नयी है। लम्बे छूरे से ईंटे आसानी से हटाओ। चिमनाजी धीरे-धीरे दीवार खोदने लगे। कहीं रहस्य खुल न जाय, लोग अत्यन्त कुतूहल में थे।

रात की खौफनाक शान्ति की छाती दीवार खोदने की खट-खट से जैसे काप उठी। नौकर दौड़े हुए खाँ के पास पहुँचे। वह गहरी नींद में सो रहा था। नौकरों के जगाते ही झल्ला उठा—बदतमीज़ कमीने कही के, रात को सोने भी नहीं देते। नौकर काँपते हुए बोला—परवरदिगार, रहम में चोर घुस रहे हैं। सेंध लगाने की आवाज़ हो रही है।"

"चोर नहीं तुम्हारा सिर है। तुम सब लोगो का दिमाग खराब हो गया है। चारो ओर पहरा पड़ रहा है। चोर कहाँ से आयेंगे?" दाँत पीसता खाँ करवट बदल कर फिर सो गया। नौकर अपना सा मुँह लेकर रह गये।

तब तक ईंटे धीरे-धीरे हटाकर आदमी के घुसने योग्य जगह हो गयी। पहले शिवाजी घुसे और बाद में चिमनाजी। इसके पीछे दो सौ वीर सैनिक[1]। बाबाजी बापूजी अपने सैनिको के साथ बाहर ही खड़े रहे। अन्दर कनात के भीतर कनात लगी थी। तलवार तथा छूरे से रस्सियाँ काटकर शिवाजी ने मार्ग बनाया। तम्बू के बाद तम्बू पार कर लोग शायस्ताखाँ के सोने के कमरे में पहुँचे। अब भी वह सो रहा था। किन्तु, औरतें नौकरो के हल्ला मचाने के समय ही जाग उठी थी। शिवाजी और उनके साथियो को देखकर वे काँप उठी। बोली मुँह से न निकली। फिर भी घबरायी हुई उन्होने खाँ को जगाया। आँख खोलते ही खाँ ने

---

1. Sarkar's shivaji page 89.

शिवाजी को सामने देखा। अचानक मृत्यु को सामने देखकर भी वह नहीं घबराया। अपनी तलवार उठाने के लिये लपका। इसके पहले ही शिवाजी की तलवार उस पर गिरी। उसकी अँगुलियाँ कट गयीं। अल्लाह क्या होगा ? दासियों का हृदय आँधी में समुद्र की लहरों की भाँति काँपने लगा। घबराहट में भी बुद्धि ने साथ दिया। उनमें से एक उठी और उसने दीपक बुझा दिया। खाँ को अब भागने में सरलता हो गयी।

इधर बाबाजी बापूजी अपने दो सौ सैनिकों को लेकर पहरेदारों के रहने के स्थान की ओर चले। जागते सोते और ऊँघते पहरेदारों को भवानी का नाम ले लेकर साफ करना शुरू किया। इन सैनिकों की हँसी कितनी भयानक होती थीं, जब घायल तड़पते पहरेदारों को मुँह चिढ़ाते हुए ये कहते थे—"इसी तरह पहरा दिया जाता है ? इनकी नृशंस हत्याएँ रोंगटे खड़ी कर देने वाली थीं। इसके बाद बाबाजी नौबतखाने में घुसे। इन लोगों का वेश मुगल सैनिक जैसा था ही। नौबतखाने के कर्मचारियों ने सोचा खाँ के सिपाही किसी काम से आये हैं। उन्होंने अत्यन्त सम्मान से उनका स्वागत किया। बाबाजी ने अनुकूल परिस्थिति देखकर कहा—खाँ की आज्ञा है कि खूब जोर से नौबत बजाओ। रमजान के पाक महीने का भोर ऐसा मनहूस नहीं होना चाहिए।" उनके लिए तो नवाब की आज्ञा थी। नगाड़ा, तुरही, करताल आदि बजना शुरू हो गया। कदाचित् मराठों की यह पूर्व निश्चित योजना थी, तभी तो नगाड़ा बजते ही वे जोर से चिल्ला उठे। विचित्र दृश्य था। रहम में दासियों के करुण क्रन्दन का स्वर, मराठों की हुँकार और नगाड़े की गरज की मिली जुली ध्वनि प्रलयकाल के बादलों जैसी लग रही थी।

खाँ के भागते ही उसका पुत्र अबुल फ़तह सामने आया। मेरे रहते अब्बा की अँगुली नहीं, हमारी नाक कटी। वह वजनी लम्बी तलवार लेकर कूद पड़ा, किन्तु क्या करता ? अकेला था। मारा गया। जैसा आप जानते हैं रहम में इस समय बिल्कुल प्रकाश नहीं था। कोई भी किसी को देख नहीं सकता था। इसी बीच दो बार—झम झम पानी में किसी के गिरने की आवाज हुई। हौज़ में कौन गिरा ? इतना समय कहाँ कि लोग देखे ? चारों ओर 'भागो भागो' की

आवाज सुनायी पड़ने लगी। मुगलों ने सोचा हमारा सेनापति शत्रु से घेर लिया गया है। भगदड़ मच गयी।

इधर बाबाजी एक मुगल अफसर के डेरे की ओर चले। डेरा महल के बगल में था। दरवाजा भीतर से बन्द था। बाहर से आदमियो के जागने की आहट साफ सुनायी पड़ रही थी, फिर भी वे बाहर नहीं निकले थे। डर ने उन्हें मरने के पहले ही मार दिया था। बाबाजी ने सोचा इनका भी सफाया कर ही देना चाहिए। तुरन्त बाहर से रस्सी लगायी, भीतर ऑंगन में कूद पड़े और दरवाजा खोल दिया। भीतर अफसर के अतिरिक्त कुछ ही सैनिक थे। जिसमें से अधिकांश जख्मी हुए।

भगदड़ मचते ही शिवाजी अपने सैनिकों के साथ बाहर आये। अब रुकना ठीक नहीं। जंगलों और पहाड़ो में छिपकर रहने वाला बन्दर आज हनुमान बनकर छाती पर चढ़ आया था। शिवाजी का काम खतम था, वे सिंहगढ़ की ओर लौट पड़े।

इस युद्ध में केवल छह मराठे मरे। करीब एक दर्जन घायल हुए। हत्याएँ तो कम हुए, किन्तु इस युद्ध का बड़ा महत्व था। शिवाजी का भूत लोगो के सिर पर सवार हो गया।

००००००

पूना में रात्रि के कोलाहल पर प्रातःकालीन शान्ति का मनहूस पर्दा पड़ गया। लज्जा, पराजय, घृणा और पश्चाताप के इस अप्रिय वातावरण में लोग आज एक दूसरे से मिले भी नहीं। "विचित्र जादूगर है वह भी। अभी यहाँ अभी वहाँ, जरूर उसमें कोई अलौकिक शक्ति है।" बस यही चर्चा पूरे नगर में थी। खाँ की ग्लानि की सीमा न रही। इस पराजय से उसके मुख पर कालिख लग गयी थी। लोग उसे ढाढ़स देने तथा सहानुभूति प्रदर्शित करने प्रातःकाल से ही आने लगे, किन्तु किसी को मुख दिखाने की उसकी इच्छा नहीं थी। प्रत्येक मिलने वाले से वह यही कहता—"वही होता है, जो खुदा को मंजूर होता

है। इस सृष्टि में आदमी की हस्ती क्या ? अल्लाह को यही दिन दिखाना था। अब किस मुँह से औरङ्गजेब से मिलूँगा।" लोग शान्त्वना देते और चले जाते। यही क्रम चलता रहा।

यशवन्तसिह भी खाँ से मिलने आये। पहले तो इसने उनसे मिलना नही चाहा, फिर किसी प्रकार बुलाया। यशवन्त के आते ही खॉ बोला—आयिए राजा साहब। अभी आप जिन्दा है क्या ? कल मुझे गलतफहमी हो गयी थी खॉ टूटे स्वर से कह रहा था। "क्यो खॉ साहब क्या बात थी ?" यशवन्त सिह ने पूछा।

"कुछ ऐसा ही सोचता था। कल जब मराठे मुझे घेरे थे, तब मैने समझा कि आपने उन्हे मार्ग में अवश्य ही रोका होगा, और युद्ध में मारे गये होंगे। पर खुदा का शुक्रिया कीजिए कि हम लोगो का मिलना आज फिर हो गया।" कहकर खॉ जोर से हँसा। यह व्यंग्य पूर्ण अट्टहास बड़ा चोट करने वाला था। यशवन्त कुछ कह न सका। केवल इतना बोला—क्या करूं खाँ साहब मै बड़ा ही शर्मिन्दा हूॅ। मराठो के आने की मुझे आहट तक नहीं मिली।

"अब कीजिएगा क्या ? जो करना था, वह तो कर चुके।" खॉ फिर मुस्कराया। उन अधरो से जैसे यशवन्त पर अंगार बरस रहे थे। कुछ समय तक रहने के बाद यशवन्तसिह चले गये।

खॉ की उदासी और ग्लानि को उस समय गहरा धक्का लगा जब औरंगजेब ने इस अपमान जनक कार्य के लिए उसे खूब फटकारा और कायर अकर्मण्य और डरपोक कहा। उसकी बदली भी बंगाल में कर दी गयी। बादशाह के शब्दों में बंगाल उस समय 'रोटियों से भरा नर्क, था (A hell well stocked with bread )[1] था। शायस्ताखाॅ—बादशाह का मामा, मन मारे बंगाल चला गया।

---

1. Sarkar's Shivaji.

७

# सूरत को लूटि बदसूरत सिवा करी

यह १६६४ का सूरत है—समुद्र से बारह मील दूर ताप्ती के किनारे पर बसा[1]। बड़े-बड़े जहाज यहाँ आते-जाते हैं। शानशौकत में दिल्ली के बाद इसका दूसरा नम्बर है। प्रमुख व्यापारी केन्द्र होने से लाखो का रोज वारा-न्यारा होता है। व्यापार से १२ लाख रुपये का तो वार्षिक कर ही वसूल होता है। अरब के पुण्य-तीर्थ का यह पवित्र द्वार है। मक्का-मदीना जाने वाले मुसलमान धार्मिक यात्रियो का जहाज यहीं से भारतभूमि को नमस्कार कर आगे बढ़ता है।

इस नगर में लक्ष्मी ने तो जैसे अपना घर ही बना लिया है। एक बहरजी बोहरे की हैसियत अस्सी लाख रुपये की है। इसके अतिरिक्त अन्य बनियों की बात क्या। २ लाख की संख्या वाला चार वर्गमील में बसा ऐसा समृद्धिशाली नगर भी सर्वथा अरक्षित है। आज की तरह यहाँ आठ-दस पक्के मकान हैं। शेष हजारो घर बाँस की दीवार पर हैं, जिन पर खपरैल डालकर लोग अपना गुजर करते है। नगर के चारो तरफ न तो खाई है और न ऊँची दीवारें। कहीं-कही नीची दीवारे है जिन्हें आसानी से पार किया जा सकता है। यहाँ का शासक है इनायतखाँ—अत्यन्त लालची, डरपोक, विलासी और कायर। नगर में फौजदार बादशाह से करीब ५ सौ सिपाहियो का वेतन लेता है किन्तु शायद ही एक सिपाही उसके पास हो। ऐसा है सूरत।

---

**१. अब यह नगर नदी से १२, १३ मील पूर्व की ओर है।**

२ जनवरी १६६४ को यहाँ अचानक भगदड़ मची। मराठे शहर में घुस आये है। चारों ओर हल्ला हो गया। शिवाजी की खूनी तलवार से बचना मुश्किल है। भागो, जहाँ जगह मिले, वहाँ भागो। सभी भाग चले। कुछ लोग अपनी बीबी और बच्चो को लेकर गाँव की ओर जाने के लिए नदी के किनारे आये। किन्तु, इतनी नावे कहाँ? जो सब एक साथ जा सकें। "मुझे पार ले चलो। मेरे जीवन की रक्षा करो। मेरे पास जो कुछ है ले लो।" हर मल्लाह से लोग ऐसा ही कह रहे थे। जिन्दगी पैसो से आँकी जा रही थी। तैरनेवाले सम्बन्धियो को रोता छोड़कर तैर पड़े। नावे भी देखते ही देखते पार होने लगीं।

धनिकवर्ग किले की ओर बढ़ा। किला सुरक्षित था। जिसने अफसर को अच्छी रकम दी, उसे शीघ्र जगह मिली। जिनके पास पैसा नही था, वे बाहर ही टापते रह गये। आश्चर्य तो यह था कि नगर का शासक इनायतखाँ भी किले में औरतो की तरह छिपा था। उसके तो देवता ही कूच कर गये थे।

"भागने से काम नहीं बनेगा। हमें डटकर नगर की रक्षा करनी चाहिए। हम भी आदमी हैं, कुछ कर सकते है।" यह विचार अँग्रेजी कोठी के प्रमुख अफसर सर जार्ज आक्सिएडेन के थे। उसका साहस सराहनीय था। उसने १५० अँग्रेजों को लिया। साठ उसके चपरासी भी थे। बस इतने ही आदमी काफी है, किले के ऊपर चार तोपें लगायी गयीं। किले के प्रमुख द्वार के पीछे दो तोपे रखी गयी। फाटक में दो छेद ऐसे बनाये गये जिससे दोनो तोपो का मुँह बाहर की ओर निकल सके। अब सड़क से किले की ओर बढ़ने वाले को आसानी से उड़ाया जा सकता है। छिपे लोगो के लिए रसद तथा पानी का भी जल्दी जल्दी प्रबन्ध किया गया। केवल एक दिन का समय था। इतने कम समय में पूरी तैयारी करनी थी। कुछ अँग्रेज शीशे की गोलियाँ ढालने में लगे, कुछ कोठी की दीवार मजबूत करने में लगे। सारा सिलसिलेवार प्रबन्ध किया गया। रातभर काम चलता रहा।

बुधवार को प्रातःकाल आक्सिएडेन अपने दो सौ साथियो को लेकर प्रमुख सड़को पर निकला और सबको हिम्मत एवं उत्साह दिलाते हुए बोला—घबराने की कोई बात नहीं है। हम शिवाजी से मुकाबला करने के लिए अच्छी तरह

तैयार हो चुके हैं। आप लोग भी अपनी कोठियों की रक्षा करने के लिए तैयार हो जायिए।

कहते हैं, अंग्रेजों का ऐसा साहस देखकर डच तुर्क और आरमेनियन व्यापारियों ने भी अपनी अपनी सम्पत्ति की रक्षा की व्यवस्था की। अभागे भारतीय अब भी सोते रहे।[1]

शीत का तरुण सुहावना रवि आकाश पर चमकने लगा। दोपहर हो गया। शिवाजी के चार हजार घुडसवार सूरत के निकट आ गये। इनके साथ दो कोल के राजाओं की छह हजार फौज और थी। बुरहानपुर के द्वार से सवा मील की दूरी पर एक बगीचे में पड़ाव डाला गया। किन्तु, शीघ्र ही पता चला कि नगर जन-हीन है। ११ बजे के करीब मराठे बड़े उत्साह से नगर में घुसे। बुरहानपुर के द्वार की चौकी पर भी इन्हें रोकने वाला कोई नहीं था। शहर में मनमानी लूट शुरू हो गयी। पहले लोग बहरजी बोहरे की कोठी पर पहुँचे। उस समय एशिया के सबसे बड़े इस धनी की कोठी पर एक पहरेदार भी नहीं था। खूब लुटाई हुई। तीन दिन, तीन रात तक सामान बटोरा गया। इतना सामान ले जाना भी तो कठिन है। शिवाजी ने कहा—केवल सोना, चाँदी, हीरा, जवाहिरात आदि ही बाँधिये। लोहा लक्कड ले चलने की हमारे पास व्यवस्था नहीं है।.. और एक बात और ध्यान देने की है। इस कोठी में हमें इतना सामान तो आसानी से मिल गया, किन्तु भागते समय बहरजी ऐसे चालाक व्यापारी ने कुछ धन जमीन के भीतर भी गाड़कर रखा होगा।

"हो सकता है, महाराज।" फर्श की खोदाई आरम्भ हो गयी, किन्तु व्यर्थ। सारी सम्पत्ति लेकर लोग कोठी से बाहर निकले। इसमें अट्ठाईस सेर तो केवल मोती था। बाहर जाते ही एक मराठा सरदार ने शिवाजी से कहा—"महाराज जो सामान हम यहाँ से ले चल नही सके, वह तो फिर हमारे शत्रुओं के ही काम आयेगा।"

"हाँ, ऐसा नही होना चाहिए। लूटने के बाद घरों में आग लगा दिया

---

1. Sarkar's Shivaji page 95

करो।" अब लोग जिस घर को लूटते उसे जला दिया करते। गुरुवार और शुक्रवार की रात्रि लूट और अग्नि-काण्ड की भयानक रात्रि थी, जैसा कि उस समय के एक अंग्रेज पादरी ने लिखा है, "अग्नि की विकराल लपटें रात को भी दिन बना देती थीं, और दिन में धूएँ का ऐसा घना बादल उठता था कि दिन भी रात जैसा लगता था।

बहरजी की कोठी लूटने के बाद कुछ बन्दूकधारी मराठे सूरत के किले की ओर बढ़े और किले की कमजोर दीवार की ओर गोली मारना शुरू किया। डर के मारे किले के किसी पहरेदार की शकल भी नहीं दिखायी पड़ी। गोलियाँ बराबर चलती रहीं।

इधर कुछ मराठे हाजी सईद बेग के मकान में पहुँचे। दरवाजे तथा सन्दूक तोड़कर जवाहिरात निकाल लिये गये। अब गोदाम की बारी आयी। यहाँ कोई ऐसी चीज नहीं थी जिसे मराठे ले जा सकें। पीपों मे पारा भरा था। पीपा तोड़कर पारा जमीन में गिरा दिया गया और गोदाम में आग लगा दी गयी।

बृहस्पतिवार की दोपहर को २५ मराठे अँग्रेजो की कोठी पर भी चढ़ गये। यहाँ अँग्रेज सामना करने के लिए पहले से ही तैयार थे। उन्होंने अत्यन्त साहस धैर्य और बहादुरी से मराठों को भगा दिया। दूसरे दिन अँग्रेज ने हाजी सईद की कोठी की भी रक्षा का भार अपने हाथ में ले लिया। उसका गोदाम और घर तो जल ही चुका था। शिवाजी को यह बड़ा बुरा लगा। वे क्रोध में आपे से बाहर हो गये। उन्होंने अँग्रेजों को लिखा कि शीघ्र सईद बेग की कोठी हमारे हवाले करो या तीन लाख रुपया दो। नही तो तुम लोगों की खैरियत नही है। तुम्हारी कोठी धूल में मिला दी जायगी और उस धूल में तुम सबकी खोपड़ियाँ नजर आयेंगी।

पत्र पढ़कर अँग्रेज चुप रह गये। चालाक आक्सिण्डेन ने उत्तर देने के लिए शनिवार तक का समय माँगा। मोहलत मिल गयी। इस बीच उसने अपनी कोठी की रक्षा की और भी अच्छी व्यवस्था कर ली। फिर कहला दिया कि हम

---

1 New history of the marathas G S Sardesai page. 189

आपको किसी भी शर्त पर राजी नही हैं। आपके जी में जो आये वह कीजिए। कोठी की रक्षा के लिए हम सदा तैयार है। आपका जब भी जी चाहे, आयिए। स्वागत करने के लिए हमारी बन्दूकें सदा तैयार रहेगी।

पत्र पढ़ते शिवाजी ने सोचा कि अवश्य अँग्रेजो के पास सबल सैनिक शक्ति होगी। उन्होने कुछ करना ठीक नही समझा, क्योंकि करोडो की सम्पत्ति मिल चुकी थी। अब थोड़ी सी सम्पत्ति के लिए अपनी सेना कटाना ठीक नहीं। अँग्रेज अपनी बहादुरी से अधिक चालाकी से बच गये।

मिस्टर एण्टनी स्मिथ नाम का अँग्रेज महाजन ने सूरत की लूट का जो आँखों देखा वर्णन किया है, वह अत्यन्त भयंकर, अमानुषिक एवं नृशंक है। उसे पढ़ते ही रोगटे खड़े हो जाते हैं। उसके कथनानुसार मराठो ने अनेक निरपराधियो का अंग भंग एवं हत्याएँ की। जिन व्यक्तियों ने उन्हें कुछ नहीं मिला उन्हें जिन्दा नहीं छोड़ा। उसने एक दिन शिवाजी के खेमें में पच्चीस आदमियो के सिर और तीन आदमियों के हाथ पैर कटे पड़े हुए देखा था। उसने लिखा है कि एक कपड़े का बूढ़ा व्यापारी आगरा से चालीस बैलो पर लाद कर कपड़ा लाता था। इस बार उसके कपड़े बिके नहीं। मराठों को वह रुपया न दे सका। इससे नाराज होकर उसका एक हाथ काट लिया गया। कपड़े की सभी गाँठें जला दी गयीं। ऐसी ही उसने कई घटनाओं का जिक्र किया है। जिन्हें सत्य मानने में हृदय संकोच करता है।

इतना होने पर भी शिवाजी ने कभी किसी मस्जिद या गिरजाघर का अपमान नहीं किया। पूरा सूरत लूटा गया पर इन धार्मिक स्थलो पर आँच नहीं आयी। लूट के प्रथम दिन की ही संन्ध्या को कैपुसिन्स का सबसे बड़ा पादरी फादर एमब्रोस शिवाजी के खेमें में दौड़ा हुआ आया। वह अत्यन्त घबराया हुआ था। उस समय शिवाजी थे। उन्होने अविलम्ब उसे बुलाया। उसने निवेदन किया—"महाराज, हम ईसाई है। जगत पिता ईसू की बन्दना करते हैं। हमारे मठ में बहुत से धार्मिक स्त्री पुरुष है। उनके प्राणो की रक्षा के लिए हमारी प्रार्थना है।"

शिवाजी ने उस पादरी का पूज्य भाव से सत्कार किया। सभी धार्मिक

व्यक्तियों की रक्षा का आश्वासन दिया और बोले—मेरा किसी धर्म से विरोध नहीं। धर्म तो मनुष्य और परमात्मा के बीच का भेद मिटाता है। इसी से धर्म का विरोध करनेवालो को मैं परमात्मा का विरोधी मानता हूँ। आप सब निश्चित रहिए। यदि आप लोग अपने को निरापद न समझे तो हमारे खेमे में आकर रहिए। इसे भी गिरजाघर समझिये।" पादरी अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

सूरत बदसूरत हो गया था। यदि उसकी किसी ने रक्षा की, तो वह था मिस्टर आक्सिएडेन। उसकी बहादुरी से औरंगजेब बड़ा खुश हुआ। मुगल सेनापति उसे घोड़ा तलवार और खिलअत भेंट करना चाहता था, किन्तु उसने उसे लेना नही चाहा और कहा कि यह सब चीजे तो फौजी आदमी के लिए है। हम तो व्यापारी है। तलवार चलाना हमारा काम नही। हमारे लिए तो सबसे बडा इनाम रोजगार की सुबिधा पाना ही है।

बादशाह ने डच और अँग्रेज व्यापारियो के भारत आने वाले माल पर चुंगी एक प्रतिशत कम कर दी। यह सुबिधा उन्हें १६७६ ई० तक मिलती रही। सूरत की इस भयंकर लूट से बादशाह को बड़ा कष्ट था। उन्होंने उस वर्ष की सूरतवासियो की मालगुजारी माफ कर दी।

००००००

रविवार ( १० जनवरी ) को प्रातःकाल १० बजे शिवाजी को अचानक मालूम हुआ कि मुगलो का एक दल बड़ी तेजी से सूरत आ रहा है। उन्होंने अब रुकना उचित नहीं समझा। काफी धन मिल चुका था। लड़ाई से अपनी ही हानि होती। वे उसी समय वहाँ से चल पड़े। सन्ध्या होने के पहले ही नगर से बारह मील दूर पहुँच गये।

१७ ता० को मुगल-दल सूरत पहुँच गया। जनता में संतोष की लहर आयी निरापद समझ कर इनायतखाँ किले से बाहर आया। जनता उसकी कायरता पर थूकने लगीं। औरतों से भी गया गुजरा है। चूड़ियाँ पहन कर महल में

---

1 Sen's foreign Biographies page 179

घुसा बैठा था। जब शान्ति हो गयी, लुटेरे चले गये, तब कैसा मुझे ऐंठता हुआ निकला है। जिधर देखिए उधर इनायतखाँ की कायरता के लिये ऐसे ही शब्दो का प्रयोग हो रहा था। लड़के भी आज उसे चिढ़ा रहे थे। पिता पर तो कीचड़ उछाला जा रहा था, किन्तु पुत्र उसे कब सह सकता था। गुस्से में आकर इनायतखाँ के पुत्र ने एक निर्दोष बनिये को ही मार डाला। इतने पर भी इनायत का क्रोध शान्त न हुआ। उसने शिवाजी की हत्या का षडयंत्र रचा।

बृहस्पतिवार की सुहावनी रात्रि को जब मराठे विजय के उल्लास में मस्त थे, तभी शिवाजी के खेमे में इनायतखाँ का दूत पहुँचा। इसके साथ कुछ और लोग भी थे। दूत अत्यन्त बलिष्ट था। कोई मल्लयुद्ध-विशारद मालूम हो रहा था।" इनायत का दूत······? क्या बात है? बुलाओ उसे।"

आते ही उसने नमस्कार किया। उसके नमस्कार करने के ढंग से अकड़ साफ दिखायी पड़ रही थी। उसने एक पत्र शिवाजी को दिया। उसमें इनायत-खाँ ने शान्ति के लिए सन्धि की शर्तें भेजी थीं। शर्तें शिवाजी को अत्यन्त अप्रिय लगीं। उन्होने कहा, "तुम्हारा मालिक औरतो की तरह छिप कर बैठा रहता है। क्या वह समझता है कि हम भी औरत है, जो इस प्रकार की मूर्खता पूर्ण बात मान लेंगे।"

दूत में भी कुछ ऐठन आयी। वह अहम् से भरे स्वर में बोला—हमारा मालिक औरत नही है।···वह।"

"जी हाँ, वह बड़ा बहादुर है। क्या तलवार चलता है—वाह, वाह, वाह। हम लोग सूरत गये थे, तब उसकी बहादुरी देखकर दग रह गये।" शिवाजी ने मजाक उड़ाते हुए कहा। सुनते ही युवक के चेहरे का रंग बदल गया। वह तेज आवाज से बोला, "आप ठीक समझिए। हम लोग औरत नहीं है। मै आपको पत्र देने के साथ ही और कुछ देने भी आया हूँ।" इतना कहते ही वह छिपायी हुई कटार निकालकर शिवाजी पर झपटा। बिजली सी उसकी गति थी।

---

1 Sarkar's Shivaji

बगल में खड़े शिवाजी के अंग रक्षक ने खींच कर उसके दाहिने हाथ पर तलवार मारी। कटार के सहित भुजा कट कर गिर गयी। फिर भी वह जवान पूरे वेग से शिवाजी पर गिरा। वे चोट सँभाल न सके और धरती पर आ गये। उसके कटे हाथ का रक्त शिवाजी के तन पर लग गया। रक्त देखते ही मराठे चिल्ला उठे—"महाराज के तन पर चोट! अनर्थ हो गया।...इसकी यह मजाल।" कई मराठे साथ ही आगे आये। नवजवान का सिर काट डाला गया। शिवाजी भी अत्यन्त क्रोध में थे। ऐसा विश्वासघात उन्हें असह्य था। उन्होंने कड़कते हुए हुक्म दिया—इसके साथ जितने लोग आये हों, सबको गिरफ्तार करो।

सब गिरफ्तार करके लाये गये। क्रोध से काँपते शिवाजी ने चार का सिर उसी समय काट लिया। बाकी छब्बीस के हाथ काट डाले। विश्वासघात एवं षड्यंत्र का इससे कम और क्या प्रायश्चित हो सकता है?

---

८

## शृंखला की कड़ियाँ

"उसका शरीर हवा का है, उसमें पंख लगे हैं। इसी से वह अनेक असम्भव कार्यों को सम्भव कर देता है। अनेक स्थानो पर एक साथ ही आक्रमण करता है।" सूरत की लूट के बाद अन्य स्थानों की लूट देखकर शिवाजी के सम्बन्ध में अँग्रेज कोठीदारो के ऐसे ही विचार थे। इनकी शक्ति एवं कार्य उन्हें आश्चर्य में डाल देने वाला था।

विदनौर और सौन्दा दो हिन्दू राज कनाड़ा की पश्चिमी अधित्यका में पड़ते थे। गत वर्ष बीजापुर के सुलतान ने बिदनौर पर अधिकार कर लिया था। राजा से २५ लाख रुपये नजराना के रूप में वसूल किया गया। इतना होने पर बीजापुरी सेना बराबर बिदनौर में लूट मार किया करती थी। अब शिवाजी ने अपनी निगाह इधर घुमायी।

इसी बीच २४ जनवरी १६६४ की उदास सन्ध्या को शिवाजी को एक पत्र मिला। जिसमें लिखा था कि घोड़े से गिर जाने के कारण शाहजी स्वर्गवासी हुए। पत्र पढ़ते ही शिवाजी रो पड़े। मुँह से बोली न निकली। पिता से उनका सैद्धान्तिक विरोध अवश्य था, किन्तु उनके प्रति उनके के हृदय में अपार श्रद्धा थी। एक बार जब शाहजी उनसे मिलने आये थे, तब आगमन की सूचना पाते ही वे १२ मील तक पैदल दौड़ पड़े थे। कितना प्रेम था, कितनी श्रद्धा थी— उनके इस प्रयाण में।

आज उन्हें लग रहा था, जैसे उनका कोई सहारा नहीं रहा। अब वे अनाथ थे। बिलखकर रोने लगे। शिवाजी का हिमालय के समान दृढ़ और उच्च धैर्य पिघलकर गंगा के समान बह गया। सभी मराठे रो पड़े।

दुःख से शिथिल और आँसुओं से भींगी रात के लथपथ चरण अत्यन्त मन्द गति से आगे बढ़े। किसी प्रकार सबेरा हुआ। लोग सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए मिले, किन्तु जो समझाने आता था, वही रो पड़ता था। शिवाजी बच्चों सा रोते हुए कहते "दादा ( कोणदेव ) तो पहले ही छोड़कर चले गये अब पिताजी ने भी हमारा साथ नहीं दिया, क्या करूँगा ?" इसके सिवा लोगों के पास कोई उत्तर नहीं था कि ईश्वर जो करता है, सब अच्छा ही करता है। इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं जिसका पिता अमर हो। शिवाजी ऐसे दार्शनिक विचारों से चुप तो हो जाते, पर जब उन्हें बीती बातों की सुधि आती; वह रोने लगते, कहते, "मै कितना अभागा हूँ। पिताजी की सबसे बड़ी इच्छा की पूर्ति भी नहीं कर सका। आज भी बाजी घोरपड़े जीवित है ? उस धोखेबाज को मजा न चखा सका। हाँ दैव, तुमने मुझे ऐसा अवसर ही नही दिया। मरते समय कितने कष्ट एवं ग्लानि से पिताजी के प्राण निकले होंगे।" शिवाजी के मन में यह भारी चिन्ता समा गयी।

"बाजी घोरपड़े के रक्त से ही अब पिता का तर्पण करूँगा।" शिवाजी ने प्रतिज्ञा की। इसी बीच विदनौर के लिए बीजापुर के उमरावों में आपस में झगड़ा हो गया। इस अवसर का लाभ उठाकर शिवाजी ने महीनों इस प्रदेश को खूब लूटा और आगे बढ़कर सावन्तवाडी की जमीदारी भी अपने अधिकार में कर ली। यहाँ के छोटे छोटे कायर जमींदार मराठों के आते ही सब कुछ छोड़कर गोवा में भागे और वहीं से कई बार सेना एकत्र कर शिवाजी पर चढ़ाई करने की असफल चेष्टा की। शिवाजी को यह कभी स्वीकार नहीं था। उन्होंने गोआ के पुर्तगाली सरकार को कड़ा विरोध पत्र लिखा। पुर्तगाली दूसरे के पीछे झगड़ा मोल लेना नहीं चाहते थे। उन्होंने उन्हें अपने प्रदेश से निकाल दिया। इसके बाद कुडाला के देसाई ( जमींदार ) लखम सावन्त ने शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली। आदिलशाह के लिए यह अपमानजनक था।

बीजापुर का ऐसा प्रत्यक्ष अपमान उसे सह्य नही था। उसने शिवाजी को दबाने की अपने जीवन की अन्तिम शक्तिशाली चेष्टा की।

०००००० 

"महाराज, हमें घेरने की चारो ओर से कोशिश हो रही है।" घबराये हुए गुप्तचर ने कहा।

"किस सूचना के आधार पर आपने यह निकर्ष निकाला?" कुछ सोचते हुए, अत्यन्त गम्भीर स्वर में शिवाजी बोले। उनके निकट बैठे तीन चार सहयोगी भी इस समाचार से स्तब्ध रह गये। गुप्तचर ने विस्तृत रिपोर्ट सुनानी आरम्भ की, "कुडाल निवासी आज अत्यन्त घबराये हुए है। कुछ प्रदेश छोड़कर भाग रहे है। इन्हें ऐसी सूचना मिली है कि इकलासखाँ कुडाल लेने आ रहा है।" रहस्य का उद्घाटन कर वह एकदम चुप होकर शिवाजी की मुख मुद्रा देखने लगा।

वे मुस्कराते हुए बोले—"अकेले इकलासखाँ की हिम्मत नहीं है कि वह उत्पात मचा सके। कुडाल वासियों को कहला देना चाहिये कि इस अफवाह से जरा भी न घबरायें। उनकी सब प्रकार से रक्षा की जायगी।"

"किन्तु इकलासखाँ अकेला नही है महाराज। बीजापुर के समाचार से तो मालूम होता है कि खवासखाँ भी सुसज्जित सेना के साथ आ रहा है। इसके अतिरिक्त सुलतान ने बाजी घोरपड़े को भी लिखित आज्ञा अपनी सेना के सहित कुडाल पहुँचने की दी है। सुलतान का एक पत्र श्री एकोजी के नाम तंजोर भी गया है। उसमें क्या लिखा है, इसका पता नहीं चल सका।"

"लिखा क्या होगा? यही कि जाकर शिवाजी का विरोध करो।" इतना कहकर शिवाजी चुप हो गये। घोरपड़े का नाम सुनते ही तो उनके शरीर में आग लगी थी। वे दाँत पीसते हुए बोले, घोरपड़े अब उसके भी दिन पास आ गये हैं। जब चीटी के मरने के दिन आते हैं, तब उसे पंख जम जाता है—और यह

पंख उसे आज नहीं बहुत पहले से आ चुका है।...अच्छा तुम्हारी इस बहु-मूल्य सूचना से जरूर लाभ उठाया जायगा। जाओ यह पता लगाने का प्रयत्न करो कि शत्रु के आक्रमण की योजना क्या है? अपने आदमी तो सब जगह है न?'

"जी हाँ महाराज, और सभी स्थान में तो है ही। तंजौर मे नहीं थे। वहाँ गुप्तचरों का एक पूरा गिरोह भेज दिया गया है?"

"बड़ा अच्छा किया। सूचना शीघ्र ही पहुँचा दिया करना।" गुप्तचर अभि-वादन करके चला गया।

उसी दिन सन्ध्या को शिवाजी ने अपनी योजना बनाने के लिए सेनापतियों तथा सरदारो को बुलाया। सूचना आकस्मिक भेजी गई थी। सबको आश्चर्य था। कदाचित् कही अचानक हमला करना है—लोगो ने सोचा। सभी ठीक समय पर उपस्थित हुए।

"तो क्या एकोजी भी अपनी तलवार हमारे विरुद्ध उठायेंगे?" एक ने ने साश्चर्य पूछा।

"इसमें आश्चर्य क्या है? राजसुख की मादकता विवेक को अन्धा बना देती है।"

"फिर इस अन्ध विवेक में मनुष्य की ऐसी आस्था क्यो?" मालसरे ने पूछा।

शिवाजी जोर से हँसे और बोले, "मन के द्वेष और राग की पूर्ति के लिए क्षणिक आनन्द के लिए, दो दिनों में समाप्त हो जानेवाले सम्मान के लिए। नहीं तो एकोजी से हमारा विरोध क्या? वह तो हमारा भाई है। वह हमारी सगी माता के पेट से भले ही न पैदा हो, पर वह हमारे पिता का पुत्र तो है।" सब चुप थे, किन्तु एक बोला "किन्तु, जब भाई के विरुद्ध भाई की तलवार उठेगी तब दुनिया क्या सोचेगी, इतिहास क्या कहेगा?" इस आपसी द्वेष के प्रति सबके चेहरे से घृणा टपक रही थी।

"कहेगा क्या, आँसू बहायेगा। यदि हमारी यह दशा न होती, तो किसकी मजाल थी, जो भारत ऐसी शक्तिशाली भूमि को पैरों से कुचलता।"

बातचीत चल रही थी कि प्रातःकाल वाला गुप्तचर पुनः आया। उसके आते ही जिज्ञासा से सब चुप हो गये। अभिवादन करने के बाद बोलने की आज्ञा माँगकर वह बोला—"महाराज ऐसा मालूम हुआ है कि तंजौर से एकोजी अपनी पूरी शक्ति से खवासखाँ से मिलने चल चुके हैं। बाजी घोरपड़े अभी मुधोल में ही है। शक्ति एकत्र कर रहा है। आक्रमण कैसे और किस दिन होगा अभी मालूम नहीं है।"

"अच्छी बात है।" गुप्तचर प्रणाम करके चला गया। योजना बनी कि पहले बाजी घोरपड़े पर ही आक्रमण किया जाय क्योंकि वह अभी ग्राम में ही है। उसके पहुँचने के पहिले खवासखाँ के आक्रमण की योजना अधूरी रहेगी।

घटना नवम्बर के महीने की है। बाजी के प्राणों के भूखे शिवाजी की सेना मुधोल की ओर बढ़ी। "जय शिवानी, आज पिता की प्यासी आत्मा को बाजी के रक्त से तृप्त करूँगा, आज अपने जीवन की बहुत बड़ी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।" मराठे पूरे उत्साह से मुधोल पहुँचे।

इस आक्रमण का जरा भी आभास घोरपड़े को नहीं था, किन्तु जब उसने सुना कि शिवाजी आ रहे है तब वह भी उत्साह के साथ अपनी सेना लेकर मैदान में आया। घमासान शुरू हुआ। शिवाजी को सामने देखकर बाजी तड़पा, "स्वप्न में भी पिता ने मुधोल आने की हिम्मत नहीं की। आज चला है बेटा बदला लेने।" सुनते ही शिवाजी आपे से बाहर हो गये और घोड़े की रास बाजी की ओर घुमायी। क्षण में उसके सिर पर पहुँच गये। दोनों की तलवारें टकराने लगीं। बाजी पूरी शक्ति से लड़ा। शिवाजी के पराक्रम के सम्मुख उसकी शक्ति बिलकुल बेकार गयी। वह अपने कई मित्रों के साथ मारा गया।

नेता के गिरते ही सेना भाग खड़ी हुई। बाजी की गर्दन काटकर पिता का पवित्र स्मरण करते हुए शिवाजी ने मन में कहा, "आज आप नहीं रहे। नहीं तो कितने प्रसन्न होते। रक्त से सना बाजी का यह मुंड आपकी पूनीत स्मृति को अर्पित करता हूँ।" इसके बाद मराठों ने मुधोल लूटा। रात में शिवाज अपने खेमें में लौट आये। विजय के उल्लास एवं प्रतिज्ञा पूरी होने की खुशी में अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

घोरपड़े की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मालोजी घोरपड़े मुधोल का प्रधान हुआ। शिवाजी उससे लड़ना नहीं चाहते थे, उन्हें तो बीजपुरी सेना का सामना करना था। अतएव उसी रात की नीरवता में उन्होंने मालोजी को एक पत्र लिखवाया। जिसका आशय था कि यह अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हारे पिता ने मेरे पिता के किये सारे उपकारों को भुलाकर उसके साथ विश्वास-घात किया था और मुस्तफाखाँ की मदद कर उन्हें गिरफ्तार कराया था। जिसका परिणाम मेरे और तुम्हारे परिवारवालों को हत्या और रक्तपात के रूप में देखना पड़ा है। इसी क्रोध के वश में होकर हमारे सिपाहियों ने लड़ाई में आपके पिता की हत्या कर डाली। अब दोनों के पिता स्वर्गवासी हुए। अपनी पिछली भूलों के सुधारने का अब समय आ गया है[1]।

पत्र का आशय अत्यन्त स्पष्ट था। मालोजी समझ गया। अपने पिता के विश्वासघात की कहानी उसे मालूम थी। शिवाजी का विरोध करने की शक्ति भी उसमें नही थी। इच्छा न होते हुए भी वह चुप रहा। इसी बीच शिवाजी को खवासखां के आगमन की सूचना मिली। वे उसी दिशा में बढ़े। अब तक खां खानपुर तक आ पहुँचा। यहीं पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ खा को अपनी शक्ति एवं पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा था, फिर भी जमकर लड़ने के बाद वह हारा। उसके सेनापति एवं सरदार मारे गये। खवास अपना सा मुँह लेकर बीजापुर की ओर भागा।

इसके बाद लोगों की दृष्टि एकोजी पर पड़ी। सैनिक तैयार थे, किन्तु शिवाजी चुप रह गये। शिवाजी की इस चुपकी का रहस्य लोग समझ न सके। आखिरकार नेता जी पालकर ने पूछ ही दिया—"महाराज, अब बिलम्ब किस लिए? एकोजी पर शीघ्र ही चढ़ाई कर देनी चाहिए, नहीं तो वह अपनी स्थिति और सुदृढ़ कर लेगा।"

"मैने तो उसपर चढ़ाई न करना ही निश्चित किया है। अपने भाई पर आक्रमण करने का जघन्य पाप मैं करना नहीं चाहता। यदि उसने चढ़ाई की

---

1. Shivaji Sourenir page 146.

तो लाचार होकर सामना करना ही पड़ेगा।........और उसकी शक्ति ही कितनी है?" शिवाजी ने कुछ सोचते हुए कहा।

"किन्तु महाराज, शत्रु की शक्ति को कभी कम नहीं समझनी चाहिए।" पालकर दबी जबान बोला।

"कहते तो ठीक हो। अन्तर इतना ही है कि तुम जिसे शत्रु समझते हो, मै उसे पथ भ्रष्ट भाई समझता हूँ" इतना कहते ही हल्की हँसी शिवाजी के अधरो पर दौड़ गयी।

शिवाजी ने भाई पर अपनी तलवार नहीं उठायी, किन्तु भाई का निन्द्य कार्य बराबर चलता रहा। एकोजी को इन कार्यो के लिये सुलतान ने खूब इनाम दिया था।

०००००

"धरती पर सैनिक शक्ति बढ़ाने से भारत माता की विदेशियों से रक्षा नहीं हो सकती। अँग्रेज, डच तुर्क आदि की शक्तिशाली जलशक्ति का भी सामना करना पड़ेगा।" शिवाजी के पास जहाजी बेड़ा नहीं था। वे उसकी व्यवस्था में लगे। समुद्र की पीठ पर जीन लगाने का काम शुरु हुआ। शिवाजी का पहला जहाज कल्याण पर अधिकार करने के बाद १६५६ ई० में बना था। इसके बाद कोंकण का समुद्री किनारा ज्यो ज्यो अधिकार में आता गया, उनकी जल शक्ति बढ़ती गयी। १६६० की जनवरी में राजापुर का बन्दरगाह उनके हाथ में आगया। यह अँग्रेजी जलशक्ति की पहली पराजय थी। अँग्रेजी कोठी का मालिक हेनरी रेन्हिग्टन बड़ा परेशान हुआ। यह शिवाजी को कुछ भी देना नही चाहता था। यहाँ तक कि उसके पास बीजापुर का कुछ सामान था। उसने उसे कम्पनी का माल घोषित किया और मराठो को उसे लेने से रोका। शिवाजी को यह बात बुरी लगी। अपने योग्य गुप्तचरो की सहायता से वे जानते थे कि वहाँ किसका माल है। झगड़ा आगे बढ़ा, किन्तु शीघ्र ही समझौता होगया। आग कुछ समय के लिये राख के नीचे दब गयी।

. जब सिद्दी जौहर ने पनहाला घेरा था, उन दिनों एक विचित्र रहस्य का उद्घाटन हुआ। तोप की गड़गड़ाती आवाज लोगो को सुनायी पड़ी। मराठो ने किले के ऊपरी भाग से देखा, अंग्रेजी झंडे के नीचे गोरो का एक बड़ा दल है। वहीं से गोले आरहे है। शिवाजी को विश्वास न हुआ। उन्होने स्वयं आकर देखा। आँखे खुलीं, उन्होने सोचा, इन अँग्रेजो का कभी विश्वास नही करना चाहिये। इधर यह मुझसे हाथ मिलाते है। उधर सुलतान से भी प्रेमालाप करते है। इन धूर्तों एवं अवसरवादियों की शक्ति कम न की गयी तो बहुत बड़ा खतरा होगा।

परिणाम यह हुआ कि ३ मार्च (१६६१) को मराठों के एक हजार घुड़सवार और तीन हजार पैदल राजापुर पर चढ़ आये। अँग्रेजो को अपनी करतूत का दंड मिला। व्यापार नष्ट हुआ। नगर लूटा गया। चारप्रमुख अँग्रेज अधिकारी—हेनरी रेविंगटन, रिचार्ड टेलर, रैन्डाल्फ टेलर और फिलिम गिफार्ड बन्दी किये गये। जब तब रूपया नही दोगे, तुम्हें छोडा नहीं जायगा—बन्दियों के लिए शिवाजी का संदेश था।

क्या इन अधिकारियों को धन देकर छुड़ाया जाय? समस्या अँग्रेजी कम्पनी के मालिकों के सामने आयी। उन्होने सोचा—"सुलतान और शिवाजी के बीच में पड़ने में कम्पनी का कोई लाभ नहीं, व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर इन लोगो ने जो कुछ किया, उसका फल ये खुद भोगें। कम्पनी इनके लिए हरजाना क्यों दे?" बेचारो की जान आफत मे पड़ी।

इसके बाद शिवाजी का एक ब्राह्मण दूत उनसे मिला। उसने कहा, "यदि आप हमारी मदद 'दंडा राजपुरी' लेने में करें, तो हम आप को भी एक अच्छा बन्दरगाह देगे।"

"पहले आप हमें मुक्त कीजिए।" चारो का सामुहिक उत्तर था। किन्तु, ऐसा सम्भव नहीं। चारो दो साल तक एक पहाड़ी किले में सड़ते रहे।

---

1. Sarkar's Shivaje page 336

इसके बाद राजापुर की लूट और क्षति के लिये अंग्रेजों ने दावा किया। शिवाजी ने कहा कि इस लूट का जिम्मेदार मैं नहीं हूँ। इसकी जिम्मेदारी आपके कुकृत्य पर है। मामला कई साल तक चलता रहा। निपटारा न हो सका, क्योंकि दोनों एक दूसरे से विरोध लेना नहीं चाहते थे। दोनों का व्यापारिक सम्बन्ध था। मराठे अँग्रेजों से नमक मोमबत्ती, महीन रेशमी कपड़े तोप, बारूद आदि खरीदते थे। अँग्रेज चावल, जलाने की लकड़ी, तरकारी मास आदि के लिए मराठों के मुखापेक्षी थे। बम्बई टापू में ये चीजें नहीं होती थी।

ooooo

८ फरवरी १६६५ को प्रातःकाल !

बिदनौर का प्रधान बन्दगाह बसरूर गुलजार हो चला था। शिल्प और व्यापार ने इस बन्दरगाह का ऐश्वर्य इधर कई बर्षों से बढ़ा दिया है। व्यापारी अपने अपने कार्यों में लग गये थे। बाजार मे चहल पहल थी। अचानक कुछ लोग समुद्र के किनारे से दौड़े हुए शहर की ओर आये। "भागो भागो शिवाजी आ गया। रक्षा करो। दुकाने बन्द करो।' का हल्ला नगर में फैल गया। भगदड़ मची। किसी ने कुछ नहीं पूछा। कहाँ शिवाजी आया ? कैसे आया ? किसी को कुछ नहीं मालूम। केवल भागना सिद्ध।

समुद्र के किनारे के लोगो ने देखा ८८ जहाज उनकी ओर चले आ रहे हैं। बस इसी से शिवाजी के आने की कल्पना करली गयी। देखते ही पूरा बाजार बंन्द हो गया। नगर में दिन दहाड़े भूत लोटने लगा।

सचमुच यह शिवाजी के जहाज थे, नगर लूटने के लिये उन्होंने अप्रत्याशित आक्रमण किया था। आज आक्रमण होगा, स्वप्न में भी लोगों ने नहीं सोचा था। इसी से वे अपना बचाव बिल्कुल न कर सकें। मराठों ने बे रोक टोक लूटा। एक दिन की लूट में ही उन्हें बड़ी सम्पत्ति मिली। शाम को उनके जहाजों ने रोते हुए बसरूर को बड़ी प्रसन्नता से छोड़ दिया।

समुद्र शान्त था। आकाश में तारे निकल आये थे। समुद्री हवा का मोहक

झोंका मराठों को पुलकित कर देता था। बड़े बड़े पाल के सहारे जहाज बढ़े चले जा रहे थे। एक पहर गये लोग गोकर्ण पहुँचे। यह पवित्र तीर्थ स्थान है। जहाज के किनारे लगते ही 'हर हर महादेव' के उच्च स्वर से आकाश गूँज उठा। रात वहीं बीती। दूसरे दिन प्रथम किरण की नयी स्फूर्ति का स्पर्श पा सैनिक जागे। सामुहिक स्नान हुआ। फिर शिवाजी शिव मन्दिर में गये। पूजा पाठ के बाद ब्राह्मणों को दान दिया गया। दिन धार्मिक कार्यों में बीता। गोधूली के पहले ही चार हजार मराठा सैनिकों ने जहाजो पर अकोला होते हुए कारवर नगर की ओर प्रस्थान किया।

यह भी व्यापारिक नगर था। सम्मान के लिए तो नहीं, पर धन के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ अँग्रेजों की बड़ी बड़ी कोठियाँ थीं। इनकी रक्षा के लिए इन लोगों ने बहुत से जासूस रखे थे। जिन्हें अच्छा वेतन मिलता था। मराठों के गोकर्ण प्रयाण के एक ही घण्टे बाद इन जासूसों ने अँग्रेज व्यापारियों को शिवा जी के आने की खबर दे दी अँग्रेजों ने इस सूचना को अत्यन्त गुप्त रखा। लोगों को कानो कान भी खबर न हुई। अंग्रेजी कोठी का माल धीरे-धीरे किराये के एक छोटे जहाज पर लादा जाने लगा। बाजार वालों को आश्चर्य जरूर था। पूछने पर कोटीदार कहते—"पुराना माल हैं। बाजार के अनुरूप नहीं। इन्हें देश भेज रहा हूँ।" इसी प्रकार सारा माल जहाज पर लादकर उसे दूसरी दिशा की ओर बढ़ा दिया। अब वे सर्वथा सुरक्षित थे। यदि वह जहाज मराठों को मिल भी जाता, तो वे उसे दूसरों का समझते, क्योंकि वह किराये का था, अँग्रेजी कम्पनी की उसपर मुहर नहीं थी। दिन भर शिवाजी की अँग्रेजों ने प्रतीक्षा की। औरों को कोई खबर नहीं थी, उनका काम ज्यों का त्यों चलता रहा। सन्ध्या के कुछ ही बाद नगरवासी घबराये हुए दिखायी पड़े। 'शिवाजी आ पहुँचा' ऐसी हवा चारो ओर फैल गयी। लोगों ने अपनी रक्षा का भरसक प्रयत्न किया। देखते ही देखते पाँच सौ घुड़सवार नगर के निकट आ गये। उनके टापों की आवाज साफ सुनायी पड़ने लगी। लोगों ने ऊँचे स्थान से देखा। सेना के साथ ही एक बड़ी डोली भी आ रही थी।

नगरवासियो को अपनी गलतफहमी का ज्ञान उस समय हुआ, जब उन्हें मालूम हुआ कि मुसलमान सैनिक अपने सेनापति बहलोलखाँ की माँ को मक्का जाने के लिए जहाज पर बैठाने आये हैं। इस छोटी सेना का नेता शेरखाँ था। अँग्रेज उससे मिले और शिवाजी के आगमन की सूचना दी। तुरन्त ही उसने अपने खेमें के चारो ओर सभी सैनिकों को खड़ा कर दिया और अँग्रेजों से बोला—घबराने की कोई बात नहीं। मेरे रहते इस शहर का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

इधर शिवाजी एक घड़ी रात बीते कारवार पहुँचे। उन्हें पता लगा कि शेरखाँ पहले से ही आकर डटा है। शेरखाँ की हिम्मत और पराक्रम से वे अच्छी तरह परिचित थे और फिर बसरूर के लूट की सम्पत्ति भी उनके पास थी। आक्रमण करना उन्होने ठीक नहीं समझा। शहर से कुछ दूरी पर नदी के किनारे उन्होने खेमा डालाँ। इस कुसमय में उनके आने के समाचार से नगरवासियो की कँप कँपी बढ़ गयी। उनकी घबराहट तब तक शान्त न हुई जब तक उन्होने नदी के किनारे असंख्य जलती मशालों को धीरे-धीरे बुझते नही देखा। मशालों के बुझने के बाद मराठा सैनिक आराम करने लगे।

यह २३ फरवरी का संघर्षरत सबेरा था। शिवाजी ने शेरखा के पास कहला भेजा—"अँग्रेजों को मुझे सौंप दो या शहर छोड़कर चले जाओ। ये हमारे घोर शत्रु हैं। हम उनसे सूरत का बदला निकाले बिना नहीं रहेंगे।"

शेरखाँ ने इसका जबाब देना नहीं चाहा। उसने अँग्रेजों के पास शिवाजी का पत्र भेज दिया। उन्होने सोच समझकर उत्तर लिखा—महाराज, इस समय हम लोगों के पास जहाज में गोला बारूद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि यह बारूद और गोले आपको रुपये का काम दें, तो आप इन्हे सहर्ष ले जा सकते है।"

उत्तर पढ़ते ही शिवाजी के क्रोध का ठिकाना न रहा। दोपहर हो चला था। मराठे भोजन की व्यवस्था कर रहे थे। पत्र पढ़ने के बाद शिवाजी ने कुछ लिखित नहीं दिया, किन्तु अंग्रेजों के पत्रवाहक से कहा—" जाकर अपने

मालिक से कह दो कि यहाँ से हटने के पहले शिवाजी तुम लोगों से अच्छी तरह समझ लेंगे।

इस पत्रवाहक के समाचार से बनिकों में चिन्ता बढ़ी। सबने मिलकर अपने रक्षा की योजना बनायी। निश्चय हुआ कि चन्दा लगाकर शिवाजी को नजराने के रूप में कुछ धन दिया जाय। चन्दा वसूल होने लगा। इसमें नौ सौ रुपये अँग्रेजो ने भी दिये। इधर शिवाजी भी डेरा डाले पड़े रहे। नजराने की छोटी रकम से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु और कुछ की आशा भी नहीं थी। लाचार १४ मार्च को वे लौटे। चलते समय उन्होंने कहा—शेरखाँ ने इस बार हमारी होली का शिकार खराब कर दिया।

---

९

# जयसिंह और शिवाजी

कारवार से लौटते समय भीमगढ़ में ही शिवाजी को सूचना मिली कि दिल्ली से मिर्जाराजा जयसिंह बिना कहीं रुके सीधे पूना आ धमके हैं। उनके साथ दिलेर-खाँ, दाऊदखाँ, कुतुबुद्दीनखाँ, लोदीखाँ ऐसे पराक्रमी और साहसी सरदार भी हैं। जयसिंह के बारे में पूरा भारत जनता था। १२ वर्ष की अवस्था से ही वे मुगलों की सेवा कर रहे थे। अपनी वीरता के लिए मुगल दरबार में प्रतिवर्ष पुरस्कृत होते थे। अफगानिस्तान, कान्धार आदि देशों में उनकी तलवार की धाक थी। इनके आगमन से शिवाजी बहुत घबराये ·अब·तक उन्होंने मुसलमान योद्धाओं का सामना किया था। अब उन्हें एक अत्यन्त अनुभवी हिन्दू का सामना करना था।

यह रात उनकी अत्यन्त बेचैन बीती। कोई तरकीब सुझायी नहीं पड़ती थी। क्या जयसिंह को हिन्दुत्व की याद दिलाकर मिलाया जा सकता है ? नहीं, ऐसा सम्भव नहीं। मुगल दरबार के लिए वह एक मुग़ल से भी अधिक वफ़ा-दार है। फिर क्या होगा ? लज्जा भगवती के ही हाथ है। शिवाजी का सोचना बढ़ता.ही रहा। रात आगे बढ़ी, अपने अदृश्य एवं शिथिल चरणों से पलकों को दबाती नींद आगे बढ़ी और शिवाजी सो गये।

सबेरा होते ही उन्होंने उस व्यक्ति को बुलाया जो पूना से समाचार लेकर आया था। उसके साथ कुछ व्यक्ति और थे, सभी उपस्थित हुए। शिवाजी की

मुद्रा कुछ गम्भीर एवं चिन्तित थी। ऐसी चिन्ता उनके चेहरे पर इसके पहले कम देखी नहीं गयी थी। उन्होंने पूछा—इतनी महत्वपूर्ण सूचना इतने विलम्ब से क्यों दी गयी? कोई डाट फटकार की बात नहीं थी। केवल कारण पूछा गया था। एक व्यक्ति ने अत्यन्त नम्रता से कहा—"महाराज, हम जयसिंह की योजना तथा युद्ध की चालो की थाह लगा रहे थे। इसी से विलम्ब हो गया।"

"क्यों? क्या कोई विशेष बात मालूम हुई।" शिवाजी की जिज्ञासा अपनी चरम सीमा पर थी—"जी हाँ महाराज उन्होंने चारो ओर से हमें दबाने की कोशिश की है। जिससे आपकी कभी की दुश्मनी थी, उन सबको बुलाकर अपनी फौज में अच्छे वेतन पर रखा है। फजलखाँ और चन्द्रराव मोरे के पुत्र बाजी चन्द्रराव को काफी धन दिया है और उनसे कहा है—हमारी सहायता करो, तुम्हारे पिता की हत्या का बदला हम लेगे। गोआ के पुर्तगाली राज कर्मचारी के पास उन्होंने दो पुर्तगाली कप्तान फ्रान्सिस्को और डिओ गोडिमेलो को भेजकर कहलाया है कि शिवाजी सदा तुम्हारी कोठियो के लूट की ताक मे रहता है। जबतक वह जीवित रहेगा तब तक तुम सुख की नीद सो नहीं सकते, संतोष की सांस नहीं ले सकते......?"

"तो पुर्तगाली कर्मचारी क्या बोला?" शिवाजी ने बीच में ही कहा।

"यह तो नहीं मालूम, पर जयसिह ने उसके पास लिखित भेजा है कि जल सेना पर हमला करने के लिए हमारी मदद करो। इसी में तुम सब की भलाई है। ऐसी खबर भी सुनने में आयी है कि मुगलों के तोपखाने का विदेशी अफिसर निकोलो मनुची भी कोली के छोटे-छोटे राजवाड़ो के यहाँ दौड़ रहा है इसके अतिरिक्त जयसिंह के ब्राह्मण दूत हिन्दू राजाओं को बीजापुर की दक्षिणी सीमा पर आक्रमण करने के लिए बहका रहे हैं।"

"कितना चालाक है वह। हिन्दू राजाओ के यहाँ ब्राह्मणों कों पुर्तगालियों के यहाँ पुर्तगालियों को और छोटे रजवाड़ों के यहाँ अँग्रेजों को दूत बनाकर भेजा है, जिससे वे शीघ्र प्रभाव में आ सकें। यों ही उसने धूप में अपने बाल सफेद नहीं

किये है। ६० वर्षों के अनुभव की लम्बी गठरी उसके पास है।" शिवाजी ने जयसिंह की प्रतिभा का लोहा मानते हुए कहना जारी रखा। "तो मैंने भी कच्ची गोटियाँ नहीं खेली है। आज और अभी ही मै बीजापुर सुलतान के पास सन्धि के लिए दूत भेजता हूँ। फिर हमारे और जयसिंह के बीच चमक उठेगी तलवार, देखा जायगा।" "किन्तु, महाराज को सुनकर यह आश्चर्य होगा कि जयसिंह के आदमी बीजापुर तक पहुँच चुके हैं। उन्होंने सुलतान को कहलाया कि मराठो के दबाने मे हमारी मदद करो, नही तो मुगल सरकार समझ लेगी कि तुम उससे मिले हो।"

शिवाजी के मस्तक पर सिकन उभर आयी। कुछ समय तक वे चुप बैठे रहे। पुनः बोले—अच्छा आप जाइये। हम पूना चल रहे है। रोज का समाचार जहाँ तक हो शीघ्र ही भेजने का कष्ट किया कीजिए। यदि जयसिंह की कार्रवाई का हमें पहले ही पता चल जाता, तो कदाचित् हम अच्छा बन्दोबस्त कर सकते।

गुप्तचर अपनी गलती का अनुभव करते हुए चुपचाप भीमगढ़ से चले गये।

००००००

यह पुरन्दर का सुदृढ़ किला है, समुद्र के धरातल से २५०० फीट ऊँची पहाड़ी की अधित्यका पर। पहाड़ी घने जंगलों से भरी है। यहाँ उत्तर की ओर २४ मील की दूरी पर पूना पड़ता है। छह मील दक्षिण पश्चिम की ओ सासवद है, जहाँ से पुरन्दर पर सरलता से आक्रमण किया जा सकता है। इस किले के तीन सौ फीट नीचे एक दूसरा किला है। इसमें मराठे सैनिक रहते हैं। ऐसे किले को यहाँ के लोग 'माची' कहते हैं। इस माची से पूरब की ओर एक मील लम्बी एक और पहाड़ी है, जिस पर रुद्रमाल ( बज्रगढ़ ) है। ऊँचाई पर होने से तोप के गोले यहाँ से बड़ी आसानी से माची पर गिर सकते हैं। ये छोटी पहाड़ियों का ढेर या किलों का समूह अब तक मराठों के अधिकार में था।

३ मार्च को दिन चढ़े मुगल सेना पुरन्दर की ओर चल पड़ी। मार्ग में

जयसिंह ने स्थान स्थान पर अपनी फौजी चौकियाँ बैठा दी थीं, जिससे किसी ओर से भी शत्रु सेना सहायता के लिए न आ सके। कुतुबुद्दीनखाँ ७००० सैनिकों को लेकर जूनारगढ़ की ओर भेजा गया। ३००० घुड़सवारों के साथ सईद अब्दुल अजीज थाना की ओर बढ़ा। इहितिशामखाँ ४००० सैनिकों के साथ पूना और उसके आसपास के जिलों की रक्षा करने के लिए पूना में ही रहा। पूना और लोहगढ़ के बीच कठिन मार्ग में २००० मुगल सैनिक रखे गये। चारों ओर से नाकाबन्दी हुई। कुछ मराठे—मानकोजी धानगार, अम्बाजी गोविन्दराव, बाजीचन्द्रराव मोरे आदि भी मुगलो की ओर थे।

इसी बीच जयसिंह ने सुना कि लोहगढ़ में शिवाजी आ गये हैं और यहाँ से शाही क्षेत्र पर आक्रमण करना चाहते हैं। उन्होंने कुतुबुद्दीनखाँ को अविलम्ब जूनार से बुलाया और लोहगढ़ के दूसरी ओर शिवाजी की गतिविधि पर ध्यान रखने के लिए रखा।

अब मुगल सेना दिलेरखाँ के नेतृत्व में थी। ३० मार्च की रात को सेना पुरन्दर पहुँची। दूसरे दिन से किला घेरने का कार्य व्यवस्था के अनुसार प्रारम्भ हो गया। प्रातःकाल ही दिलेरखाँ ने अपने सरदारों से कहा—पूरी पहाड़ी चारो ओर से घेर लेनी चाहिए। कही भी ऐसा स्थान न छोड़िये, जहाँ से मराठे निकल सकें। मराठो के आक्रमण और उनकी लड़ाई का ढंग आप जानते ही हैं। उनका सामना करने के लिए बहादुरी के साथ सतर्क रहने की भी आवश्यकता है।

"किन्तु केवल घेरा डालने से उनकी कुछ विशेष हानि नहीं होगी। वे चुपचाप किले में पड़े रहेंगे, और चार दिन के बाद बरसात आ जायगी।"

"इसे मै अच्छी तरह समझता हूँ। बरसात के पहले ही किला फतह किया जायगा। पहाड़ी की ऊँची चोटी पर तोपें चढ़ाइये और किले पर गोलाबारी कीजिए। किसकी हिम्मत है जो आपके सामने चार दिन भी टिक सके।"

दिलेरखाँ की योजना के अनुसार पहाड़ी चारो ओर से घेर ली गयी, बड़ी-बड़ी तोपे चोटी पर चढ़ायी जाने लगीं। लेकिन यह आसान कार्य नहीं। सिकड़

में बाँधकर उन तोपों को खीचते हजारो सैनिक ऊपर चढ़े। तन पसीने से तर हो जाता, फिर भी तोपे दिन भर में सौ फीट से अधिक ऊपर चढ़ नही पाती। इस असाध्य कार्य में भी मुगल जी-जान से लगे रहे।

किले का प्रधान इस समय मुरारबाजी था। उसके पास केवल दो हजार चुने मावलों की सेना थी। उसे घेरा पड़ने का समाचार तो मालूम हो गया था, किन्तु चोटी पर तोपो के चढ़ाने की सूचना से वह अनभिज्ञ था। अतएव शान्त होकर शिवाजी की प्रतीक्षा कर रहा था। किले में रसद चुकती गयी। इधर तोपें एक-एक इञ्च ऊपर चढ़ती रहीं। दस दिन के दिन-रात प्रयत्न के बाद तीन तोपें पहाड़ी की ऊँची चोटी पर पहुँच सकीं। इन्हें ऐसे स्थान पर लगाया गया जहाँ से रुद्रमाल पर आसानी से गोले छोड़े जा सकें।

१० अप्रैल को प्रातःकाल से ही गोले रुद्रमाल पर गिरने लगे। मुरारबाजी की अब चिन्ता बढ़ी। उसने पहले किले से निकलकर अचानक मुगलों पर हमला करने का विचार किया। अपने वीर सैनिको को एकत्र कर वह बोला—वीरो, इस समय हम चारो ओर से घेर लिये गये है। मुगलो की तोपे हम पर आग बरसा रही हैं। इसके पहले कि किले की दीवार टूट जाय और शत्रु अन्दर घुसें, हम सबको अपनी जान हथेली पर लेकर चारो ओर से शत्रुदल पर टूट पड़ना चाहिए। हो सकता है भवानी की कृपा से इस बीच शिवाजी भी हमारी सहायता के लिये आ जाँय।" मुरारबाजी की बात सुनते ही बूढ़ा सरदार आगे आया और बड़ी शान्ति से बोला—"किले से बाहर निकलने मे हमारी भलाई नहीं। मुगलो की शक्ति चारो ओर बराबर है। केवल दो हजार बहादुर सभी ओर आक्रमण कर नही सकते और एक ओर बढ़ने से दूसरी ओर से शत्रु किले पर अधिकार कर लेगे।" बूढ़े की बात बाजी को जॅची। मावलों ने बुद्धि से काम लिया। तो क्या किले मे रहकर ही हम अपने प्राण गवायें? नहीं, कभी नहीं। जब तक मावलो के तन मे रक्त की अन्तिम बूँद तक शेष रहेगी, तब तक पुरन्दर मुगलों के अधिकार में जाने नहीं पायेगा।

आज की रात मावलो के लिए अत्यन्त भयानक थी। प्रलयकालीन मेघो से

गरजते गोले रुद्रमण्डल पर गिर रहे थे। आधी रात के बाद बुर्ज के सामने की दीवार भीषण रव के साथ फट गयी। दीवार गिरने की आवाज 'माची' तक सुनायी पड़ी। मराठे 'माची' में जाकर शरण लेने लगे। गोले लगातार गिर रहे थे। दीवार की मरम्मत असम्भव थी।

सवेरा होते ही टूटी दीवार मुगलों को दिखायी पड़ी। दिलेरखाँ उदयभान और हरीभान गौड के साथ रुद्रमण्डल की ओर बढ़ा। दोपहर की चिलमिलाती धूप में बुर्ज पर अचानक आक्रमण हुआ। मराठे चुपचाप पीछे हटे और टूटी दीवार के बीच में रक्षित स्थान पर चले गये। बुर्ज के ऊपरी भाग में मुगलों के पहुँच जाने के कारण तोप का छूटना बन्द हो गया, फिर भी मुगल उस दिन कुछ न कर सके। रात पिछले दिनों की रातों से शान्त बीती। दूसरे दिन दीवार के पीछे छिपे मावलों पर राजपूतों तथा मुगलों ने बन्दूक से निशाना लगाना शुरू किया। अब मराठों का टिक सकना कठिन था। सन्ध्या होते-होते रुद्रमाल मुगलों के अधिकार में आ गया। इस विजय के लिए ८० जानें गयी १०९ घायल हुए। बन्दी मावल पकडकर जयसिंह के पास लाये गये। इनके साथ शाही सेना के अफगान तथा राजपूत सैनिक भी थे। जयसिंह ने उन्हें ससम्मान मुक्त करते हुए कहा—बहादुरों मैं तुम्हारी वीरता से बड़ा ही प्रसन्न हूँ। पराक्रम मनुष्य का आभूषण है, इस आभूषण से आप सब सुशोभित हैं। मेरी आप से कोई शत्रुता नहीं। काश, आप शाही सेना में होते, तो आपके ऐसे शौर्य पूर्ण कार्य से हमारी छाती फूल उठती है। खैर आप सब बैठिए।" बन्दियों को ऐसे सम्मान एवं व्यवहार से आश्चर्य था। अत्यन्त प्रसन्नता से वे चुपचाप बैठ गये। पुनः जयसिंह ने बन्दी नेताओं को शाही पोशाक देते हुए कहा—"हम आज के इस मिलन को चिरस्मरणीय करने के लिए यह शाही पोशाक अर्पित करते है।" जयसिंह की मुद्रा प्रसन्न थी।

उनकी बात सुनते ही एक बूढ़ा मावल आगे बढ़ा और बोला—यह पोशाक यदि आप हमें मित्र बनाने के लिए दे रहे हों, तो इसे आप अपने पास ही रखिए। यह हमें दो मित्रों के मिलन की नहीं, वरन् दो शत्रुओं के मिलन

की याद दिलाता रहेगा।" जयसिंह जोर से हँसे और बोले, "मुझे तो आज की घटना पराक्रमियों के मिलन दिन की तरह याद रहेगी।" सब जोर से हँस पड़े।

जयसिंह की नीयत बन्दी मावलों को मिलाकर शाही सेना में भरती करने करने की थी, किन्तु इस वृद्ध मावल ने तो सारे प्रयास पर पानी फेर दिया।

००००००

पुरन्दर के पिछले दरवाजे की ओर दाऊदखाँ को रखा गया था। एक दिन दिलेरखाँ को पता चला कि उस दरवाजे से बहुत से मराठे किले में घुस गये। दाऊदखाँ की राज-भक्ति पर लोगों को सन्देह हुआ। सबसे अधिक दिलेरखाँ चिढ़ा। दोनों में आपसी तनातनी बढी। जयसिंह को बात मालूम हुई। उन्होंने दिलेरखाँ को बुलाया और समझाते हुए कहा—खाँ यह मौका आपसी विरोध का नहीं है। हमारे तू-तू मैं-मैं से दुश्मन की बन आयेगी। तुम्हारे ऐसे योग्य व्यक्ति के लिए यह शोभा नहीं देता।"

"दाऊदखाँ देशद्रोही है मिर्जा राज। इस नमक हराम की करनी सारी मुगल सेना जानती है। ऐसे कमीने के रहते कभी हमें फतह मिल नहीं सकती। बाहरी दुश्मन को परास्त करना आसान है, किन्तु यह घर का दुश्मन हमारी इज्जत और आबरू को ले डूबेगा।" दिलेरखाँ ने क्रोध में कहा।

"तुम्हारी बात पर मैं विश्वास करता हूँ, किन्तु उसे अपने यहाँ से निकाल भी नहीं सकता। यदि वह दुश्मन से मिल गया तो विजय कठिन हो जायगी। मैं अब उसे अपने पास रखूँगा और उसके स्थान पर पुर्दिलखाँ और शुभकर्ण बुन्देला को भेजूँगा। तुम्हारी क्या राय है?" जयसिंह ने नम्रतापूर्वक कहा।

"मेरी राय वही है, जो आपकी है, किन्तु याद रखिएगा साँप को दूध पिला-कर पालने का फल एक न एक दिन जरूर भोगना पड़ेगा।" इतना कहकर वह तनक कर चला गया। दिलेरखाँ स्वभाव का तीखा था। क्रोध में वह मिर्जा राजा को भी कुछ नहीं समझता था।

अब दाऊदखाँ को ६ हजार सैनिक देकर महाराष्ट्र के गावों को लूटने के

लिए भेजा गया। कुतुबुद्दीनखाँ और लोदीखाँ ने भी अपने निकट के स्थानों में लूट आरम्भ की। गरीब किसान और जनता सतायी गयी। शिवाजी की प्रजा का विनाश होने लगा।

०००००० 

रुद्रमाल की विजय के बाद मुगलों का लक्ष्य 'माची' बना, किन्तु माची पर विजय आसान नही। इस बीच घेरा तोड़ने के लिए शिवाजी ने एक दूसरा उपाय निकाला। उन्होंने अपने सरदारो को मुगल राज्य-क्षेत्र में जगह-जगह आक्रमण करने की आज्ञा दी, जिससे पुरन्दर से कुछ मुगल सैनिक उस ओर बढ़ें। ऐसे समय में पूरी शक्ति लगाकर पुरन्दर का घेरा तोड़ा जाय। नेताजी पालकर ने परेन्दा पर आक्रमण किया, किन्तु उन्हें सूपा से एक बड़ी सेना के प्रयाण का समाचार पाते ही लौट जाना पड़ा। मुगलो की विभीषिका पराकाष्ठा पर थी। कुतुबुद्दीनखाँ तथा दाऊदखाँ ने तो अनेक गाँव जला दिये, अनेक किसान मारे गये।

इतना होने पर भी मराठो ने हिम्मत नही हारी थी। बहुधा वे अँधेरी रात में चढ़ आते, मार्ग रोक लेते, कठिन पहाडी रास्ते से आ धमकते, जंगल का जगल जला देते। रात्रि भी प्रकाश का ज्योतित वस्त्र धारण कर उषा बन जाती। मुगलों ने अपने अनेक साथी खोये पर घेरा जरा भी शिथिल नही किया।

दिलेरखाँ ने अपना तोपखाना खड़कला के पास लगाया। खड़कला पुरन्दर के उत्तर पूर्व के कोण मे एक बुर्ज है। यहाँ से माची पर गोला बारी होने लगी। मुरारबाजी ने अब और रुकना ठीक नहीं समझा। वह अपनी सेना को लल-कारते हुए बोला, "बहादुरों, अब हमारे बलिदान की पवित्र बेला आ चुकी है। हम चारों ओर से घिरे है। मृत्यु इतनी निकट है कि जीवित रहने की अब और अधिक सम्भावना नहीं। किन्तु हम इन पत्थर की दीवारो के बीच कुत्तों की तरह मरना नहीं चाहते। हमें अपने महाराष्ट्र की कसम है, हमें अपने ज्वलंत इति-हास की कसम है, हमें कसम है अपने चमकते भविष्य की, हमें कसम है,

अपनी आँखों में समाये स्वतंत्र-राष्ट्र के सपने की। जब तक हमारा प्राण शेष है, तब तक हम शत्रु को माची में घुसने नहीं देंगे। जब तक हम साँस लेते रहेंगे, तब तक शत्रु को सुख की सांस लेने नहीं देंगे।" मुरार की आवाज में आग थी, बिजली थी। सारे मावले 'जयभवानी, जय महाराष्ट्र, जय शिवाजी' चिल्ला उठे।

रात में दो बार मराठे 'माची' से हल्ला मचाते बाहर निकले, किन्तु दिलेर खाँ की सुसज्जित सेना के सामने टिक न सके, लौटकर फिर माची में चले आये। प्रातःकाल मवलो ने देखा कि मुगलो का मोर्चा पुरन्दर के दोनों सफेद बुर्जों के निकट आ गया है। अब परिस्थिति कठिन है। माची की रक्षा नहीं हो सकती, किन्तु अब भी दीवार ज्यो की त्यो है। तोप के गोले तो असफल हुए पर इतनी विशाल सेना को किले का फाटक तोड़ने में अधिक देर नहीं लगेगी। मुरारबाजी ने अपने सरदारो से कहा—किले की छत पर शीघ्र आग जला दीजिए बड़े बड़े पत्थर के टुकड़े, बम गोले, बारूद इकट्ठा कीजिए। तारकोल की टकिया छत पर ही गरम कीजिए। ज्योंही मुगल सैनिक किले की ओर बढ़े उन पर ये सारी चीजें फेंकनी होगी।"

"जब ये सारी चीजें समाप्त हो जायेंगी, तब क्या किया जायगा?" अत्यन्त निराश हो सैनिक ने पूछा।

"तब जलते अगारे फेंके जायँगे। खौलता पानी फेका जायगा।...पानी की भी अच्छी व्यवस्था रखिए।" मुरारजी की यह योजना उस औषधि के समान थी जो मरते हुए रोगी को कुछ क्षणों तक और जिलाने के दिये दी जाती है।

आज्ञा पाते ही मावले छत के ऊपर व्यवस्था करने लगे। बिजली की तरह काम शुरू हो गया। उधर मुगल भी लक्ष्य की ताक में ही थे। उन्होंने देखा माची की छत पर सैनिक एकत्र हो रहे हैं। छत की ऊँचाई बहुत अधिक है। बन्दूक की मार से भी बाहर पड़ती है। दिलेरखाँ ने सोचा किले की फाटक की ओर अब सैनिक नहीं होंगे। वह सेना लेकर आगे बढ़ा। इधर मुरार तड़पा, वीरों हम सबके जीवन की कदाचित् यह अन्तिम लड़ाई है। प्राणों का मोह

छोड़कर जी जान से लग जाओ। शत्रु आ रहा है। पहले हथगोले फेकना होगा। अभी चुपचाप रहो। जब इतने निकट आ जाये कि हथगोले अच्छी तरह फेके जा सकें, तब फेकना शुरू करो। इसके बाद ईंट और पत्थर, और अन्त में जलता हुआ तारकोल।

आक्रमण क्षेत्र में आते ही मुगलो पर हथगोले पड़े। दिलेर ने सोचा आखिर कितने हथगोले होंगे। आक्रमण बचाकर आगे बढ़ते चलो। किन्तु उन्हें पत्थरों के टुकड़ो और बाद में तारकोल का सामना करना पड़ा। मरे तो अधिक नहीं पर घायल अधिक हुए। व्यर्थ सेना को जलते अँगारो में भूनना खाँ ने उचित नहीं समझा। वह चुपचाप लौट आया। इस विजय से मावलो मे हल्की प्रसन्नता छा गयी।

oooooo

माची जीतने के लिये जयसिह ने एक बहुत ऊँचा कठघरा बनवाया, जिसके ऊपर से तोप तथा बन्दूक से माची की दीवार के रक्षकों को आसानी से भगाया जा सकता था। कठघरे के सामने का बन्द भाग ऐसा था जिससे ढाल का काम लिया जा सके। कठघरा 'सफेद बुर्ज' के सामने लगाया जाने वाला था।

किन्तु इसके निर्माण में अभी कुछ कमी थी। मई का तपता दिन धीरे-धीरे ढल चुका था। अचानक दिलेरखाँ को मालूम हुआ कि रोहिला फौज ने 'सफेद बुर्ज' पर आक्रमण कर दिया। वह बहुत बिगड़ा। 'किसकी आज्ञा से ऐसी मूर्खता की गयी?' फिर भी अब गलती हो चुकी थी। इसे सुधारना जरूरी था।

इधर आक्रमण होते ही मराठे बुर्ज के बाहर आये और प्राणों का मोह छोड़कर शत्रु पर टूट पड़े। तलवारें चलने लगीं। मृत्यु और जीवन का मूल्य आँका जाने लगा। जमकर लड़ाई हुई। कुछ ही समय के बाद बुर्ज की बायीं ओर मुगल सेना का राजदूत सरदार भूपतसिंह पौर मारा गया। मराठों के उत्साह का ठिकाना न रहा। अब उनमें दूनी शक्ति थी। इस बीच दिलेरखाँ असंख्य अफगानों तथा राजपूतों को लेकर मोर्चे पर आ पहुँचा। मराठों पर भारी विपत

ओंयी। उनका टिकना कठिन हो गया और वे पीछे भागे। अब शाही बुर्ज में उन्होंने शरण ली। यहाँ से उन्होने शत्रुओ पर बम पत्थर और आग बरसाने की नीति पुनः अपनायी। लडाई दो दिनो तक और बढ़ गयी। अन्त में मराठे हारे। पाँच बुर्ज और एक किला मुगला के अधिकार मे आ गया। पर पुरन्दर अब भी अपराजेय रहा। मुरारबाजी के जीवित रहते उसपर अधिकार करना असम्भव था।

अब केवल सात सौ मराठे बचे थे। मुरारजी ने उन्हें ललकारते हुए कहा– हमारे बहुत से साथी स्वर्ग जा पहुँचे, हम अब तक धरती पर ही है। यह हमारे लिए कलक है। अब मृत्यु के वरण में ही जीवन का महत्व है। मृत्यु के लिए भी हमारे बीच एक प्रतियोगिता है। हमें देखना है कि इस प्रतियोगिता में किसका कौन सा नम्बर आता है। अब हमे लडाई शत्रु जीतने के लिए नहीं, वरन् मरने के लिए करनी है। ललकारता वह आँधी की तरह मुगलो पर आ धमका। मुगलों के लिए यह कठिन सामना था। थे तो यह थोड़े ही, पर इनकी बहादुरी से दिलेरखाँ भी आश्चर्य चकित था। प्रत्येक मराठा अजेय था। मुरारबाजी जिधर बढ़ता उधर ही भगदड मचती। अनेक मुगल कटकर गिरने लगे। मराठे भी धीरे धीरे कम हुए। अब केवल साठ बचे। इन इने गिने व्यक्तियों को लेकर मुरारजी दिलेरखाँ की ओर झपटे। दिलेर ने यह दिलेरी अपने जीवन में कभी नही देखी थी। वह वार करता गया। अब वह किस बल से खडा रह सकेगा। उसकी एक भुजा कट गयी ढाल दूर जा गिरी, जाँघ और कमर मे कई चोटें लगीं, फिर भी उसके दाहिने हाथ की तलवार चलती गयी। शायद वह उसके मरने के बाद भी चलती रहती।

उसकी वीरता पर मुग्ध होकर दिलेरखाँ ने लडाई रोक दी और बोला— ऐसा बहादुर मैंने अपने जीवन मे नहीं देखा। सिपाही अब इस पर तलवार मत उठाना।" पुनः वह मुरारजी की ओर घूमकर बोला, पहाड से टकराने पर भी तुम चूर नही हुए। तुम्हारी बहादुरी पर मुझे फक्र है।"

"पहाड झुकने के पहले ही मेरी बहादुरी का लोहा मान बैठा। इसका मुझे

गर्व है ।" मुरारजी ने छूटते ही जबाब दिया । वह थककर चूर था । उसकी जोर जोर से साँस चल रही थी । प्रत्येक वीर का मन मुरारजी के इस उत्तर से प्रसन्न हो उठा । दिलेर खाँ ने पुनः कहा—"हम आपकी बहादुर के कायल हैं । आप हथियार रख दे । हमारी सेना में आपको ऊँचा पद मिलेगा ।"

मुरार खुलकर हँसा । उसके जीवन की यह अन्तिम हँसी थी । फिर वह बोला—"तुम्हारी सेना के बड़े से बड़े पद से हमारा पद ऊँचा है । तुम्हारे साथ आकर हमें दूसरे के लिए लड़ना पड़ेगा । अब तक मैं अपने और अपने देश के लिए लड़ता रहा हूँ । अच्छा हो हमारा हथियार रखवाने के पहले अपना हथियार उठाओ । मुरार देश की सेवा में मर सकता है, पर मुगलो की सेवा में जी नहीं सकता ।"

दिलेर अत्यधिक लज्जित हुआ । अपनी झेंप मिटाने के लिए वह अब अधिक खूँख्वार था । चारों ओर से मुरारजी पर आक्रमण होने लगे घिर जाने के बाद वह लडते लड़ते मारा गया । कुछ ही लोग और बचे । उन्होंने निश्चय किया—मुरारजी चले गये तो क्या हुआ ? हममे से अब प्रत्येक मुरारजी है । जब तक एक भी जीवित रहेगा, तब तक लड़ाई जारी रहेगी ।

अन्त में विजय मुगलों के हाथ लगी । फिर भी पुरन्दर पर मुगलो का अधिकार न हुआ ।

००००००

"मुरार जी मारे गये । अब पुरन्दर का बचना असम्भव है । भवानी की कुछ ऐसी मंशा है कि जयसिंह से सन्धि ही कर ली जाय ।"

"हाँ महाराज, अब बेइज्जत होने से तो यही अच्छा है । अनेक बच्चे और औरतें पुरन्दर के किले मे हैं । उनके धर्म की भी रक्षा करनी है । उधर दाउद खाँ गाँव के गाँव अनाथ कर रहा है । लड़ाई जारी रखना अब हितकर नहीं ।" शिवाजी का समर्थन करते हुए वह बोला ।

"किन्तु जयसिंह के पास सन्धि के लिए कई पत्र भेज चुका, पर उसका कोई

जबाब नहीं। कई बार हमारे दूत भी गये, किन्तु कुछ फल न निकला।" शिवाजी ने सोचते हुए कहा।

"किन्तु महाराज, हमें एक बार फिर प्रयत्न करना चाहिए। क्योंकि सन्धि के अतिरिक्त अब कोई दूसरा चारा नही है।" इसकी बात सुनते ही सभी मौन हो गये। पुनः शिवाजी ने रघुनाथ बल्लाल को बुलाकर जयसिंह से मिलने का कार्य सौपते हुए कहा—"आप ऐसे योग्य व्यक्ति से मुझे सफलता की आशा है। आप जयसिह से एकान्त मे मिलकर किसी शर्त पर व्यवस्था कीजिए।"

२० मई को रघुनाथ बल्लान एकान्त में जयसिह से मिले। इनकी चतुरता तथा योग्यता से वह प्रभावित हुआ। बल्लाल के यह पूछने पर कि क्या आप शिवाजी के मिलने पर सन्धि करेंगे। जयसिह ने सीधा उत्तर दिया—"यदि वह स्वयं मिले और बिना शर्त आत्म समर्पण करे, तो उस पर शाही कृपा दिखायी जा सकती है।"

"क्या उनके पुत्र शम्भूजी के शाही खेमें में आने पर वार्ता चल सकती है?" बल्लाल ने पूछा।

"ऐसा सम्भव नहीं। शिवाजी को स्वयं आना पड़ेगा।" जयसिंह की साठ वर्षों की पुरानी आँखों से रोब जैसे झाँक रहा था। बल्लाल अत्यन्त विनम्रता का अभिनय करते हुए बोला—"महाराज यदि आज्ञा हो तो एक बात और कहूँ।" जयसिह ने अनुमति दे दी।

"शिवाजी के आने पर यदि मेल हो जाता है, तो इससे अच्छी दूसरी बात नहीं, किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि बातचीत में सफलता न मिले।"

"तो इससे क्या, लड़ाई जारी रहेगी।" जयसिह ने बीच ही में कहा।

"यह तो ठीक है। किन्तु बातचीत असफल होने पर शिवाजी सकुशल लौट सकेंगे, इसका मुझे विश्वास दिलाइए।" बल्लाल मुस्कराते हुए बोला।

जयसिंह ने तुलसी हाथ में लेकर शिवाजी की रक्षा की शपथ ली और कहा—"तुम्हारे स्वामी पर बादशाह अत्यधिक नाराज है। उसे यहाँ छिपकर ही आना चाहिए।"

००००००

११ जून के दिन का एक पहर बीत गया था। धूप तेज हो गयी, बाहर निकलना कठिन था। जयसिंह पुर के नारायण मन्दिर के निकट की समतल पहाड़ी पर के खेमे में थे। अनेक मुगल एवं राजपूत सरदार उनके निकट बैठे थे, कचहरी हो रही थी। इसी बीच खेमे का द्वारपाल भीतर आया और बोला—"महाराज, एक मराठा दूत आपका दर्शन करना चाहता है।"

"बुलाओ उसे।" आते ही उसने कहा—"महाराज, शिवाजी की पालकी छह ब्राह्मणों के साथ अत्यन्त निकट आ गयी है। यह सूचना रघुनाथ बल्लाल ने भेजी है।"

"अच्छी बात है।" दूत लौट गया। जयसिंह ने रामसिंह को बुलाकर कहा—शिवाजी को दिलेरखाँ के यहाँ ले जाओ। मैं उससे स्वयं बात करना ठीक नहीं समझता।

रामसिंह पिता की आज्ञा मान शिवाजी को दिलेरखाँ के पास ले गये। जयसिंह का यह व्यवहार शिवाजी को प्रिय न लगा। फिर भी गरज थी। वे दिलेरखाँ के खेमे में गये। पहुँचते ही उन्होंने नमस्कार किया। उनकी आकृति पर सदा खेलती मुस्कान दिलेरखाँ पर जैसे जादू कर गयी। वह बड़ा प्रभावित हुआ। बातचीत हुई। मित्रता और बढ़ी। खाँ का गुस्सा शान्त हो गया। इस समय शिवाजी के पास कोई हथियार नहीं था। खाँ ने उन्हें दो घोड़े, एक तलवार, एक जवाहिरातो से जडी कटार और कपड़े भेट किये। इसके बाद उन्हें जयसिंह के पास भेजने की व्यवस्था की गयी। चलते समय खाँ ने स्वयं शिवाजी के कमर में कटार बाँधी। शिवाजी ने हँसते हुए कहा—"मैं तो अब शस्त्र-विहीन ही रहना चाहता हूँ। आप ऐसो का विश्वास ही मेरा सबसे बड़ा रक्षक है[1]।" दोनो खुलकर हँसे। अब शिवाजी जयसिंह के खेमे की ओर जा रहे थे। उनके साथ दिलेरखाँ के भेजे कुछ मुगल सैनिक आफिसर भी थे। सूचना मिलते ही जयसिंह ने मुंशी उदयराज तथा उग्रसेन कछवाहे को अगवानी करने के लिए भेजा। उग्रसेन ने पहुँचते ही शिवाजी से कहा—"महाराज ने कहा है कि

---

1 Sardesai's New History Marathas Page 157.

यदि आप अपने सब जीते हुए किले देने को राजी हों, तो मिलने आइए, नहीं तो मिलना बेकार है।"

शिवाजी को यह शर्त मंजूर तो न थी, पर वे जयसिंह से किसी न किसी तरह अवश्य मिलना चाहते थे। अतएव बात टालते हुए उन्होंने कहा—"अच्छी बात है भाई। मिर्जा राजा की हर बात मुझे स्वीकार है।"

चुपचाप लोग शिविर के दरवाजे पर पहुँचे। बख्शी ने भीतर से निकलकर स्वागत किया। फिर सब अन्दर गये। जयसिंह सरदारों के साथ बैठे थे। आगे बढ़कर उन्होंने शिवाजी को गले से लगाया और हाथ पकड़कर गद्दी पर बैठाया। इतना होने पर भी जयसिंह के अंगरक्षक चारों ओर तलवार और भाला लेकर सजग थे। अभी अफजल-काण्ड की याद ताजी थी।

शिवाजी के रहने का बन्दोबस्त तम्बू में ही किया गया। रात में बातचीत आरंभ हुई। पहले तो उन्होंने अपनी नीति के अनुसार जयसिंह को मिलाना चाहा, पर सफलता न मिली। उन्होंने अपने पक्ष पर जोर देते हुए कहा—"मिर्जा राजा मैं ये सारी बातें अपने लिए नहीं कह रहा हूँ। आपके लिए भी उतनी ही महत्व की हैं। आप ऐसे बहादुरों को भी इतिहास में मुगलों का गुलाम ही लिखा जायगा। इमारत नींव के ईंटों पर ही टिकी रहती है, पर इन ईंटों को संसार देख नहीं सकता।"

"किन्तु दुनिया इन ईंटों का महत्व समझती है।" जयसिंह ने गरजते हुए कहा।

"हाँ समझती है—बिना कुछ कहे गुलाम की तरह जमीन में पड़े रहने के लिए और जीवन भर अपने कन्धों पर बोझ उठाये सुख और आनन्द के प्रकाश से दूर दासता के अन्धकार में गल जाने के लिए।" शिवाजी ने कहा।

"दूसरों का बोझ सँभालकर जीवन बिता देने की महत्ता..."

"...किराये का टट्टू बता सकता है।" शिवाजी जयसिंह का वाक्य पूरा होने के पहले ही बोले। जयसिंह तड़पे, "क्या कहते हो शिवाजी?"

"ठीक कहता हूँ, मिर्जा राजा। देशभक्त की असफलता पर भविष्य की आँखें आँसुओं का अर्घ चढ़ाती हैं, किन्तु दास के जीवन की सफलता पर भी उनमें

घृणा रहती है। मुगल शासन का बोझ अपने कंधे पर उठाने से अच्छा होता मातृभूमि का बोझ अपने कन्धे पर उठाते।" शिवाजी एक क्षण के लिए रुके। जयसिंह अब अधिक सुन नहीं सकते थे। उन्होंने डाटते हुए कहा—व्यर्थ की बकवाद मैं नहीं सुनना चाहता। अपने सारे किले मेरे हवाले करो और बादशाह के कृपा के भागी बनो।"

"वह तो मुझे करना ही है। मेरी बकवाद भी आपके सामने बन्द हो जायगी। किन्तु क्या आप दुनिया की बकवाद बन्द कर सकते हैं? क्या इतिहास के जबान पर ताला लगा सकते हैं? मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए राजसुख ठुकराकर, जंगल की खाक छानने तथा घास की एक रोटी के लिए भी तरस जानेवाले महाराणा प्रताप को दुनिया बहुत दिनों तक सम्मान तथा आदर से याद करेगी। क्या आप जैसे महाप्रतापी के लिए भी वही सम्मान उसके हृदय में रहेगा? कदापि नहीं।"

शिवाजी ने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु पत्थर नही पिघलता। केवल इतना ही हुआ कि बारह किले और एक लाख होण वार्षिक आय की जमीन शिवाजी के पास रह गयी और तेईस किले और चार लाख होण वार्षिक आय की जमीन मुगल बादशाह को देनी पड़ी। अब से शिवाजी मुगलों के अधीन कार्य करेंगे, बादशाह की सम्मानित प्रजा की तरह।

शिवाजी के सम्मान की रक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी कि अन्य मनसबदारो की तरह उन्हें अपनी सेना लेकर बादशाह या उनके दक्षिण के प्रतिनिधि के यहाँ हाजिरी देने की आवश्यकता नही होगी। इसके बदले शिवाजी के लड़के पाँच हजारी जागीरदारों की तरह कम से कम दो हजार सेना लेकर हाजिरी देंगे। मिर्जा राजा जानते थे कि अपमान की जरा सी ठोकर खाने पर ही शिवाजी का स्वाभिमान जाग उठता है, इसीलिए ऐसी व्यवस्था की गयी।

इस सन्धि की एक गुप्त शर्त भी थी। कोंकण प्रदेश बीजापुर का सम्पन्न प्रदेश था। तलभूमि का करीब चार लाख होण और अधित्यका की पाँच लाख होण वार्षिक आमदनी थी। यह निश्चित हुआ कि बादशाह जब दक्षिण पर आक्रमण करेंगे तब शिवाजी इन प्रदेशों को छीन लेंगे, किन्तु प्रांत पर अधि-

कार बादशाह का ही माना जायगा। इसके लिए कई किस्तो मे दो करोड़ रुपये बादशाह को नजराने के रूप में देना होगा। यह एक ऐसी शर्त थी, जिससे शिवाजी तथा सुलतान के बीच शत्रुता सदा के लिए बन गयी।

सन्धि के अनुसार मराठों ने पुरन्दर का किला छोड़ दिया। लड़ाई का बहुत सा सामान मुगलो को मिला। इसके अतिरिक्त अन्य किलों पर अधिकार दिलाने के लिए शिवाजी ने अपने कर्मचारी भेजे। १४ जून को शिवाजी जयसिंह के यहाँ से विदा हुए। उन्हें एक हाथी तथा एक घोड़ा भेट किया गया।

ooooo

अत्यन्त असम्मान एवं ग्लानि से मन बैठा जा रहा था। किन्तु अधरो में मुस्कराहट मुसका रही थी, जैसे ज्वालामुखी पर कोई शीतल झरना हो। उन्होंने कहा,..."नहीं नहीं। इस मणि जटित तलवार के साथ आप जो अपना स्नेह मुझे दे रहे है, उसे मै सहर्ष स्वीकार करता हूँ। किन्तु, इसे आप अपने पास ही रखिए। मैंने मुगल बादशाह के विरुद्ध बगावत की है। जब तक बादशाह की ओर से मुझे क्षमा न कर दिया जाय, मै हथियार धारण नही करूँगा।"

"अब क्षमा करने में रह क्या गया? बादशाह ने आपकी प्रार्थनाएँ स्वीकार ही कर ली। अपने पंजे की छाप का फरमान तथा एक जोड़ा खिलअत भी आप के लिए भेजी है। शाही प्रथा के अनुसार दूर से पैदल आकर आपने इस खिलअत तथा फरमान की मर्यादा रखी है। इसलिए मै आपको मणि जटित तलवार भेट करता हूँ। आपसे उम्र और पद दोनो में बड़ा हूँ। यह सोचकर आपको अवश्य तलवार स्वीकार करनी चाहिए।" इतना कहते हुए जयसिंह ने शिवाजी की कमर में वह बहुमूल्य तलवार बाँध दी। दोनो गले मिले।

इसके बाद बीजापुर पर आक्रमण की योजना प्रस्तुत करते हुए जयसिंह ने कहा, "यह प्रदेश आपका जाना बूझा है। आपकी सहायता से सफलता सरल

हो जायगी। अच्छा होता इस चढ़ाई में दो हजार घुड़सवार तथा सात हजार पैदल मावलो को लेकर आप मेरे साथ रहते।"

शिवाजी ने आज्ञा मानली। बरसात बिताकर २० नवम्बर को सेना चल पड़ी। शिवाजी की धाक इस प्रदेश में पहले से थी और फिर मुगल सेना के सहयोग से प्रारम्भ में शीघ्र ही काम बन गया। फल्टन, थाथवड़ा, खाटाव और मंगलविड़े आदि किले बिना किसी बाँधा के मुगलो को मिल गये। मुगल सेना बढ़ती बीजापुर नगर के निकट तक पहुँच गयी। अब उसे कड़ा मुकाबिला करना पड़ा। यह पहला अवसर था जब शिवाजी के विरोध में उनका ही सौतेले भाई एकोजी मैदान में आया। मुधोल का मालोजी घोरपड़े भी अपनी पूरी शक्ति के साथ आ पहुँचा था। सारी सेना खवासखाँ एवं शारजाखाँ की अध्यक्षता में थी। दोनो दलों में जमकर लड़ाई हुई। मुगलों का आगे बढ़ना कठिन हो गया। जयसिंह ने सोचा था कि अचानक आक्रमण से बीजापुर पर दस दिन में विजय प्राप्त करली जायगी इसी से बड़ी बडी तोपें भी साथ नहीं लायी गयीं। पर स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत निकली सुलतान के बहादुर सेनापति ने नगर बचाने की सभी तैयारी निश्चित समय के पहले ही कर ली। ऐसी योजना थी कि नगर के चारों ओर सात मील तक मुगलो को एक बून्द पानी भी न मिल सके। सभी जलाशय पाट डाले गये, पेड़ काट डाले गये। दूसरी ओर बीजापुरी सेना ने मुगलो के इलाके में भी घुसकर लूट मार आरम्भ की। इसी बीच एक और महत्व पूर्ण घटना हुई। मराठा सेना का सबसे योग्य एवं पराक्रमी सेनापति नेताजी पालकर, जिसे लोग दूसरा शिवाजी कहते थे, उसे आदिलशाह ने चार लाख होण देकर मिला लिया। नेताजी के अचानक मिलते ही जेयसिंह का उत्साह और भी ठंडा पड़ा। लाचार होकर वे ५ जनवरी को लौट पड़े।

०००००

"दोस्तों, मै पहले से ही कहता चला आ रहा हूँ कि शिवाजी बड़ा ही धोखेबाज आदमी है, किन्तु मेरी बात पर जरा भी ख्याल नहीं किया गया।

उसी की चालबाजी से बीजापुर जीता न जा सका। उसने विश्वास दिलाया था कि दस दिन में बीजापुर के किले पर मुगल झण्डा फहरायेगा, पर ऐन मौके पर उसका सेनापति दुश्मन से जा मिला। क्या यह कम दगा है? अफसोस तो यह है कि जयसिंह की भी हिन्दुओं के प्रति हमदर्दी है। जिस समय शिवाजी मिलने के लिए आया था, उस समय मैंने मिर्जा राजा से उसकी हत्या कर डालने के लिये कहा था कि मौका अच्छा हैं। इजाज़त दीजिए। मैं उसे खतम कर दूँगा। सारा पाप का भार मै अपने ऊपर लूँगा। आपको कोई कुछ न कहेगा। इतना होने पर भी उन्होने इजाज़त नहीं दी। यह सब क्या? जरूर कुछ दाल में काला है।" दिलेरखाँ पहिले से ही जयसिंह से जलता था। अब उसने खुल्लमखुल्ला मुगलो में उनके विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया। परिस्थिति बिगड़ी गयी। शिवाजी के हत्या के अनुकूल हवा बन चली, पर जयसिंह के प्रति मुगलो में अब भी श्रद्धा थी।

जयसिंह ने एक दिन चुपचाप एकान्त में शिवाजी को बुलाया और कहा, "आप बीजापुर के दक्षिण पश्चिम प्रदेश पर आक्रमण कीजिए। राजपूती सेना जितनी आवश्यकता हो ले लीजिए।"

इस अचानक आज्ञा का उद्देश्य शिवाजी समझ न सके। वे अत्यन्त नम्रता से बोले, "अच्छी बात है।...किन्तु अचानक आक्रमण का प्रयोजन क्या? अच्छा होता बीजापुर पर कोई भी योजना बनाने के पहले हम नेताजी को किसी भी मूल्य पर पुनः बुला लेते।" शिवाजी को यह मालूम नहीं था कि मेरी रक्षा के लिए मिर्जा राजा मुझे यहाँ से हटाना चाहते हैं। जयसिंह ने पुनः कहा—"नेताजी के बुलाने की व्यवस्था मैंने करली हैं। वे पाँच हजारी मनसबदारी, बड़ी जागीर एवं अड़तीस हजार नगद रूपये लेकर पुनः हमारे साथ रहने के लिये तैयार है।" शिवाजी की आकृति पर सन्तोष की आभा झलकी। जयसिंह कहते गये—आक्रमण करने का उद्देश्य केवल सुलतान की शक्ति क्षीण करना है। उसे किसी न किसी ओर फँसाये रखना है जिससे वह अपनी शक्ति बढ़ा न सके।" बात निश्चित हो गयी। ११ जनवरी को जयसिंह की योग्यता से पागल मुगल सैनिकों के हिंसक पंजे से निकल कर शिवाजी दूर चले गये।

पाँच दिन के बाद जाड़े की थरथराती आँधी रात को शिवाजी की सेना पनहाला पहुँची। तीर सी सनसनाती हवा चल रही थी। शिवाजी ने सोचा किले के सैनिक नीद की गोद में मुर्दा होकर पड़े होंगे। उन्होंने कहा—वीरों, मौका अच्छा है। यदि तुम पनहाला लेना चाहते हो, तो अचानक चारो ओर से टूट पड़ो और प्रभात होने के पहले ही किले पर भगवा झण्डा फहरा दो।"

कहने भर की देरी थी। मराठे चारो ओर से किले पर चढ़ गये। पर जैसा सोचा गया था, बात वैसी नहीं थी। किले के सैनिक हर क्षण हर परिस्थिति के लिए तैयार थे। उन्होंने शिवाजी का जमकर सामना किया। हजारो मराठे मारे गये। जब सवेरा हुआ। सूर्य की पहली किरण आयी। लड़ाई ने एक नया मोड़ लिया। पहाडी रास्ते से किले के ऊपरी भाग में जो मराठे सैनिक चढ गये थे, अब वे साफ दिखायी देने लगे। किले के सैनिकों ने उन पर बन्दूक से निशाना लगाना आरम्भ किया। मराठे ऊपर से गिरने लगे जैसे पका आम चूता है।

कुछ ही घन्टे में शिवाजी को हार माननी पड़ी। यहाँ से वह खेलना नामक किले में लौट आये।

———

१०

# जंगल का शेर पुनः जंगल में

रामगढ़ में एक हँसती सन्ध्या को समर्थ गुरु रामदास की शिवाजी से बातें हुईं। शिवाजी जब असमञ्जस में पड़ते थे, तब वह अपनी माता से सलाह लेते थे या गुरुजी के शरण में जाते थे। आज भी कुछ ऐसी ही स्थिति थी।

जयसिंह शिवाजी को औरंगजेब के पास भेजना चाहते थे। इस कार्य में दो शत्रुओं को सदा के लिए मित्र बनाने की उनकी पवित्र भावना थी। कूटनीतिज्ञ दृष्टि से भी गोलकुण्डा एवं बीजापुर को दबाने के लिए शिवाजी को मिलाना आवश्यक था, अतएव योग्य राजपूत राजा ने शिवाजी से उनकी तारीफ करते हुए कहा—आप की बहादुरी और योग्यता तो शत्रुओं को भी मोह लेती है। जिस दिन से मैंने आपके संबंध में बादशाह को पत्र लिखा, तब से वे बहुधा आपकी चर्चा करते हैं। हीरा चाहे कोयले की खान में हो, धूल में हो या बादशाह के मुकुट में हो, हर जगह चमकता है। मेरा तो विचार है, आप बादशाह से अवश्य मिलें। वह आपके गुणों पर रीझकर गोलकुण्डा की चढ़ाई के लिए शाही फौज एवं धन दे देंगे। ऐसे मौके पर निजामशाही राज के प्रदेशों पर आप कब्जा कर सकेंगे।"

"यह तो ठीक है। किन्तु औरंगजेब की नीयत में विश्वास नहीं। जिसने अपने भाइयों को मरवा डाला, जिसने पिता को कारा में बन्दकर तड़पा-तड़पाकर मारा डाला। जो अपने बाप का नहीं हुआ, वह भला हमारा हो सकता है।" शिवाजी ने कहा।

"नहीं-नहीं ऐसी बात नहीं है। बादशाह अपनी बात के धनी हैं। वह, आपसे मिलते ही गद्‌गद् हो उठेंगे। वह जानते है कि आपके अतिरिक्त कोई बीजापुर को जीत नही सकता। इस क्षेत्र में सदा मुगल सेना पराजित हुई। यहाँ तक कि बादशाह स्वयं असफल हुए।" अपनी प्रशंसा सुनकर शिवाजी की छाती फूल गयी। मूछों पर तनाव आ गया। जयसिंह ने पुनः कहा—"... और वहाँ कोई आपका बाल भी टेढ़ा नहीं कर सकता। मेरा पुत्र रामसिह सदा आपके साथ रहेगा। वह आपकी देखभाल करता रहेगा। दरबार में आपका सम्मान किया जायगा। आप अवश्य बादशाह से मिलिए। इसमें लाभ की सम्भावना अधिक है।" जयसिह के समझाने का प्रभाव शिवाजी पर पड़ा, पर वे औरंगजेब की प्रकृति के कारण उससे मिलना नहीं चाहते थे। साथियों ने भी शिवाजी को आगरा जाने की राय नही दी। वे असमञ्जस में पड़े। क्या करे?

आज गुरुजी से उन्होने बड़ी श्रद्धा एवं विश्वास से अपने मन की शंका कही। गुरुजी कुछ समय तक ध्यानावस्थित बैठे रहे। पुनः बोले—"बेटा, तुम्हें अवश्य जाना चाहिए। इसमें जननी जन्म भूमि की भलाई ही होगी।" गुरुजी की आज्ञा सुनकर वे कुछ समय तक शान्त रहे, पुनः उनके चरणो के निकट बैठकर बोले, "प्रभू, वह तो रावण का अवतार हैं। अधर्म करते उसे देरी नही लगेगी।"

"तो उस रावण के लिए तुम्हें राम बनना पड़ेगा। जैसे राम को रावण के संहार के लिए अयोध्या छोड़कर लंका की यात्रा करनी पड़ी थी, वैसे ही तुम्हें भी इन पहाड़ों से दूर जाना पड़ेगा। इसमें जन्मभूमि का लाभ ही है। हो सकता है इस में तुम्हें कष्ट सहना पड़े।" अत्यन्त गम्भीर हो गुरुजी ने कहा।

गुरुजी की आज्ञा पाकर शिवाजी तैयारी में लग गये। अब उन्हें विश्वास हो गया कि बादशाह से मेरी किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती, कष्ट भले ही होगा। शिवाजी का एक स्वार्थ और था। कोंकण प्रदेश को सुरक्षित करने के लिए जल से घिरा जञ्जीरा का किला लेना आवश्यक था। यह मलिक सिद्दी हब्शी के अधिकार में था। किला लेने की शिवाजी की कई प्रयत्न बेकार

हुए थे। सिद्दी अब मुगल सरकार के अधीन था। शिवाजी ने सोचा कि बादशाह से बातें करके किले को सरलता से ले लूंगा। काम बन जायगा।

००००००

आज रायगढ़ में प्रातःकाल से ही चहल-पहल थी। शिवाजी के सभी साथी सहयोगी तथा हितैषी उपस्थित थे। सूर्य की किरणें तेज होने के पहले ही सभी प्रासाद के प्राङ्गण में इकट्ठा हुए। माता जीजाबाई भी थीं। कुछ समय बाद शिवाजी पधारे। सभी उठकर खड़े हो गये। माता का चरण स्पर्श कर वे अपने स्थान पर विराजे, पुनः उन्होंने बोलना आरम्भ किया—पूज्य माताजी एवं वीर साथियो, भवानी की प्रेरणा एवं गुरुजी की आज्ञा से मैं बादशाह से मिलने जा रहा हूँ। प्रकृति की गोद में विचरण करनेवाला पहिली बार राजधानी की शान-शौकत देखने जा रहा है। आपका आशीर्वाद एवं शुभ कामनाएँ ही उसके साथ रहेगी। मेरी इस लम्बी यात्रा के प्रस्थान के पहले सब प्रतिज्ञा करें कि मेरे न रहने पर भी जन्मभूमि की सेवा आप वैसे ही लगन से करेंगे। जाने पर कैसा पड़े, कैसा न पड़े। मैं चाहता हूँ कि राज के शासन की उचित व्यवस्था कर दूँ। यो तो आप में से प्रत्येक इस देश की भलाई चाहेगा ही। सफल एवं शान्ति पूर्ण शासन की जिम्मेदारी आप सब पर है। माताजी राज प्रतिनिधि के रूप मे आप सबके ऊपर रहेंगी..." अचानक तालियाँ बजीं। गढ़ गूँज उठा—माता जीजाबाई की जय। जीजाबाई ने मुस्कराते हुए सिर नीचा करके सबके श्रद्धापूर्ण अभिवादन का उत्तर दिया। शिवाजी बोलते रहे—प्रधान मन्त्री के लिए मैं मोरेश्वर त्र्यम्बक पिंगले तथा मजमूआदार (अर्थ-व्यवस्थापक) के लिए नीलो सोनदेव का नाम चुनता हूँ। सेनापति नेताजी होंगे..." लोगों ने पुनः ताली बजायी। अन्त में उन्होंने लोगों में कर्तव्य की बलिवेदी पर बलिदान होने की पवित्र भावना भरते हुए कहा—भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है। आप अपने कर्त्तव्य को कभी मत भूलिएगा। सदा सचेत रहिएगा। पता नहीं कब धरती माता को आपकी आवश्यकता पड़ जाय। बचाव

की पक्की व्यवस्था रखिएगा।, कामदारो को भी रात दिन सतर्क रहना चाहिए। किसी भी क्षण आपत्ति के घने बादल हम पर छा सकते हैं। आपके पराक्रम का सूर्य ही उन बादलों को हटा सकेगा। राज नियमों के पालन में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो।...मैं जा रहा हूँ, किन्तु आपकी सदा याद आयेगी, इस मुस्कराती धरती की याद आयेगी, सह्याद्रि के हरे-भरे पहाड़ आँखों के सामने रहेगे। माता शिवानी हम सब की रक्षा करे।" बहुत देर तक ताली बजती रही। नारो से आकाश गूँजता रहा।

दूसरे दिन से उन्होंने अपने किलों का निरीक्षण किया। उचित आदेश दिया और ५ मार्च १६६६ ई० को माता का आशीर्वाद ले रायगढ़ से विदा हुए। पुत्र शम्भूजी और एक हजार शरीर रक्षकों के अतिरिक्त शिवाजी के कई विश्वास पात्र सहयोगी—बालाजी आबाजी, एसाज कंक, तानाजी मालसरे, त्र्यम्बक पंत, रघुनाथ बल्लाल कोरडे आदि भी साथ थे।

००००००

शिवाजी पहले औरंगाबाद पहुँचे। नगर निवासी उनके दर्शनार्थ शहर के बाहर बहुत दूर आकर बाट जोह रहे थे। एक पहर दिन चढ़े दूर से आता जुलूस दिखाई दिया। जुलूस क्या? जैसे इन्द्र की सवारी थी। आगे सोने के स्तम्भ में भगवा झण्डा लेकर हाथी चल रहा था। इसके पीछे करीब सौ बनजारे थे। प्रत्येक एक जोड़ी लदे बैलो के साथ था। फिर मावली सेना थी। घोड़ों की सज्जा भी चाँदी और सोने की थी। इनके पीछे दो हाथियों पर सजे हुए चाँदी के हौदे थे। इनके अतिरिक्त अनेक पालकियाँ थीं, जिनमें प्रमुख सैनिक अधिकारी बैठे थे। शिवाजी जिस पालकी में थे, वह चाँदी के पत्तल से मढ़ी थी। सोने की कीलें उसमें लगी[1] थीं। जुलूस देख कर सब आनन्द से विभोर हो जयजयकार करने लगे। शिवाजी ने पालकी से बाहर सिर निकालकर मुस्कराते हुए सबका अभिवादन किया।

---

1. Sarkar's Shivaji Page 138.

नगर के प्रमुख व्यक्ति आकर उनसे मिले। शहर के मुगल अधिकारी सफशिकन खाँ का भतीजा भी आया, नमस्कार कर बोला,—"आशा है आप चाचा जी से उनकी कचहरी में चलकर अवश्य मिलेंगे।" एक साधारण आफिसर के यहाँ जाकर वह खुद मिले। शिवाजी को यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होने उस व्यक्ति की बात पर जरा भी ध्यान नही दिया और सीधे नगर के बीच जाकर अपने ठीक किये मकान में ठहरे। सारे शहर में एक अजीब चहल पहल दिखायी देने लगी।

सफ़शिकन खाँ ने सोचा था कि शिवाजी मामूली जमींदार एवं जगली मराठा है। वह खुद आकर हमारा स्वागत करेगा। पर यहाँ स्थिति दूसरी थी। शिवाजी ने इस नगर शासक को वह भो महत्व नही दिया जो एक आदमी आदमी को देता है। हर कार्य में उसकी उपेक्षा की। सफशिकन भी समझ गया कि किसी से पाला पड़ा है। अब वह नम्र हुआ और कई अपने सहयोगियों के साथ शिवाजी से मिला।

दिन कठिन परिश्रम से थककर पीला पड़ गया था। सन्ध्या का कोलाहल कैम्प में नव आनन्द का सर्जन कर रहा था। कई बार प्रयत्न करने पर भी सफ़शिकन को मिलने के लिए शीघ्र समय नहीं मिला। बहुत देर के बाद शिवाजी ने उसे बुलाया। बड़ी रुक्षता से उन्होंने उसके अभिवादन का उत्तर दिया। वह समझ गया। अत्यन्त विनम्र हो बोला—आपके दर्शन की बड़ी इच्छा थी। कुछ अस्वस्थ था, इसीसे अपने यहाँ आपको बुलवाया था, किन्तु ऐसा मेरा भाग्य कहाँ, जो आपके चरणों से मेरी कुटिया पवित्र होती?"

शिवाजी मुस्कराये। उन्होंने सफ़शिकन की चालाकी समझ ली, किन्तु मन में सोचा कि जा स्वयं झुक गया उसे झुकाने से क्या लाभ। अतएव उन्होंने उससे मित्रवत व्यवहार किया। दूसरे दिन वे स्वयं उसके निवासस्थान पर जाकर उससे मिले।

कुछ दिन यहाँ रहने के बाद शिवाजी आगरा के लिए चल पड़े। शाहजहाँ की मृत्यु के बाद से औरङ्गजेब आगरे में रहता था।

००००००

११ मई १६६६ का शुभ दिन।

आज औरङ्गजेब की सालगिरह है। आगरा नगरी इन्द्रपुरी हो गयी है। राजसभा सभासदों से खचाखच भरी है। रंग विरंगी वेषभूषा में प्रभावशाली दरबारियों से घिरा मयूर सिंहासन पर विराजमान बादशाह देवताओं के बीच इन्द्र के समान सुशोभित है। धरती पर बिछे रंगीन गलीचे, चमकदार किनखाब की अनुपम कला स्वर्ग से जैसे पृथ्वी पर उतर आयी है। राजाओं एवं सुसम्पन्न दरबारियो के अलंकारों के नगीनों की झिलमिलाती ज्योति की शोभा विचित्र थी, मानो आकाश से तारो के फूल झरे हो।

अब बादशाह को नजर भेट करने का समय आया। वजीर ने नाम पुकारना शुरू किया। एक के बाद एक उपस्थित होने लगे। जवाहिरातों एवं रुपयों से भरी थालें बादशाह के चरणों के निकट पहुँचने लगी।

इसी शुभ घड़ी में शिवाजी भी औरङ्गजेब से मिलने वाले थे, पर उनके अभी तक दर्शन नहीं हुए। सबसे अधिक चिता रामसिंह को थी। शिवाजी अभी सराय मलूकचंद तक ही आये थे। वहाँ से आगरा एक दिन का रास्ता था।

शाही नियम के अनुसार जब कोई बड़ा आदमी बादशाह से मिलने आता था तो उसके पद के योग्य दो उमरा एक दिन की मंजील आगे बढ़कर उसका स्वागत करते थे और उसे ससम्मान ले आते थे। इस कार्य को 'पेशवाई' करना कहते थे।

शिवाजी की पेशवाई के लिए कुँवर रामसिंह को जाना चाहिए था, किन्तु आज बादशाह के सालगिरह का दरबार था। वे पहरे पर थे। लाचार उन्होंने अपने वकील मुंशी गिरधरलाल जी को पेशवाई के लिए भेजा। सराय मलूकचंद में दोनों की भेट हुई। शिवाजी को यह अच्छा नहीं लगा। वह कभी भी अपना असम्मान देख नहीं सकते थे फिर भी कुछ समझकर चुप रह गये। उन्होंने व्यंग्य में केवल इतना ही कहा—"जब गिरधरलाल हमारे यहाँ आ गये तब मुझे किसी की आवश्यकता नही।" मुंशी गिरधरलाल अत्यन्त झुककर मुस्कराते हुए बोले—"महाराज, गिरधर ने तो सदा शिव की अनुकम्पा चाही है।" सभी हँस पड़े। कुछ ही समय के बाद आगरे के लिए प्रयाण हो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल रामसिंह को छुट्टी मिली। तब तक शिवाजी आगरा के निकट आ गये। गिरधरलाल भी उन्हें ठीक मार्ग से न ले जा सका। अंत में नूरबाग में रामसिंह जी आ मिले, किन्तु न तो शिवाजी रुके और न रामसिंह आम रास्ते पर चलते ही चलते बातें हुईं। फिर निश्चित स्थान पर जहाँ ठहरने के लिए डेरा लगाया गया था, वहीं जाकर रामसिंह ने शिवाजी का विधिवत् स्वागत किया, फिर भी इस गड़बड़ी में जैसा स्वागत एवं पेशवाई होनी चाहिए थी, वैसी न हो सकी। शिवाजी के सम्मान पर यह पहली ठेस थी।

कुछ ही घण्टे बाद रामसिंह उन्हें दरबार में ले गये। बादशाह इस समय दिवानेखास में थे। सफेद संगमर्मर का बना दिवानेखास इस समय खूब सुशोभित था। जमीन गलीचे से ढकी थी। राजा-महाराजा, अमीर-उमरा आकर्षक वेष में अपने पद के अनुसार खड़े थे। इसी समय रामसिंह के साथ अपने दस सहयोगियों के साथ शिवाजी दरबार में उपस्थित हुए। दरबार में एक रौनक आ गयी। सभी शिवाजी के आगमन के बारे में मुँह ही मुँह बातें करने लगे। तब तक बख्शी असदखाँ ने शिवाजी को औरङ्गजेब के सामने हाजिर किया।

शिवाजी की ओर से एक बड़े थाल में एक हजार मुहरें और दो हजार रुपये रखकर बादशाह के चरणों में अर्पित किया गया। शिवाजी ने झुककर मुजरा ( सलाम ) किया। किन्तु बादशाह ने उसका कोई जवाब नहीं दिया। फिर उन्होंने दूर से ही बादशाह के सिर की ओर हाथ घुमाकर पाँच रुपये न्योछावर के रूप में भी बाटे। इसकी भी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। अब जैसे उनके हृदय में अपमान की ज्वाला धीरे-धीरे भभकने लगी। इसके बाद उन्हें पाँच हजारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया गया।

कितना सत्कार पाने की कल्पना लेकर शिवाजी आये थे, किन्तु यहाँ पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। सारा राजकाज चलता रहा, जैसे किसी को मालूम ही न हुआ कि जंगल के मुक्त वातावरण में विचरने वाला सिंह आज दरबार में आया है। शिवाजी मन ही मन कुड़बुड़ाने लगे। उनके चेहरे का रङ्ग बदलने लगा। रह रहकर उन्हें जयसिंह की याद आती, वे मन में कहने लगे—"मैंने उनका विश्वास किया। मुझे मालूम नहीं था कि यहाँ इतना

अपमान होगा। किन्तु, अब यहाँ से हटना भी कठिन है। क्या जयसिंह औरंगजेब के स्वभाव से परिचित नहीं थे, या उन्होंने जान बूझकर धोखा दिया ?" धीरे-धीरे उनके विचारो की यह शृंखला लम्बी होती गयी। वे चुपचाप अपनी पंक्ति में खड़े रहे।

अब दरबार में उत्सव का पान बटने लगा। सबको बट जाने के बाद पान का सुनहला थाल शिवाजी के सामने आया। अचानक विचार हुआ कि पान न लूँ और जोर से कहूँ, "तुम्हारा पान तुम्हें मुबारक हो। मैं इस अपमान से दिये हुए पान का भूखा नहीं हूँ। सम्मान से विष भी पी सकता हूँ।" किन्तु उनका हाथ अचानक थाली में गया और उन्होने एक बीड़ा उठा ही लिया। लगता था कि वहाँ के राजसी वातावरण के प्रभाव का दबाव उनकी आन्तरिक भावनाओं पर पड़ता था और वह कुड़बुड़ाकर भी चुप रह जाते थे।

इसके बाद खिलअत बटने का एलान हुआ। बख्शी असदखाँ ने बादशाह की आज्ञा से एक के बाद एक को शाही ढंग से पुकारना आरम्भ किया। सभी शाहजादो, वजीर जफरखाँ, और अन्त में यशवन्त सिह को भी सिरोपाव और खिलअत मिली। किन्तु, शिवाजी.. ? उन्हें खिलयत नहीं मिली, अब वह अपने को सभाल न सके। इस अपमान और तिरस्कार से उनका मन बैठा जा रहा था, फिर भी वे घन्टों खड़े थे। थकावट का अनुभव करने लगे। अब अपमान बरदाश्त के बाहर था। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। आँखें झलझला उठी। अब इन्हें दुनियाँ की कोई शक्ति रोक नहीं सकती थी। पे पंक्ति से हटे और एक किनारे जाकर बैठ गये। दरबारियो में कानाफूसी शुरू हो गयी। बादशाह की आँखों से भी यह घटना छिपी न रही। उसने रामसिंह को अविलम्ब बुलाया और कहा—"जाकर अपने मित्र शिवाजी से पूछो कि उनकी तबीयत कैसी है।" कहते हुए बादशाह धीरे से हंसे। इस हँसी ने शिवाजी के हृदय की आग भड़काने में घी का काम किया।

कुमार शिवाजी के पास आये। पहले तो कुछ पूछते की हिम्मत न हुई, फिर भी बड़े प्रेम से बोले,—महाराज तबियत कैसी है ?

"तबियत...?...हूँ..." मानों कोई सिंह गुर्रा रहा हो। वे बोले, "रामसिंह

तुम मुझे जानते हो। तुम्हारे बाप ने भी मुझे देखा है। तुम्हारे बादशाह ने भी समझा है। क्या मै ऐसा ही आदमी हूँ कि मुझे जान बूझकर खड़ा रखा जाय? मै ऐसी मनसबदारी को लात मारता हूँ। मुझे नही चाहिए। यदि मुझे खुश ही रखना था, तो ठीक स्थान पर खड़ा रखते। मैं इस दरबार में रहना नहीं चाहता।" इतना कहते हुए वह उठकर खड़े हुए और दरबार से बाहर जाने लगे। दौड़कर रामसिह ने उनका हाथ पकडा और बैठने के लिए विनती की। बहुत कहने पर वे दरबार के दूसरे छोर पर बादशाह की ओर पीठ करके बैठ गये और बोले, "रामसिह, और कुछ भी कहना, समझाना बेकार है। मैं जानता हूँ कि मेरी मौत आयी है। मै यहाँ मर सकता हूँ। आत्महत्या कर सकता हूँ। तुम चाहो तो मेरा सिर काट कर ले जाओ, पर अब शिवाजी बादशाह के सामने जाने वाला नही है। मै यहाँ अपना अपमान कराने नहीं आया।" उनका तन क्रोध से कांप रहा था। आवेश में वे ठीक बोल भी नहीं पा रहे थे। बालक शम्भूजी तो शिवाजी से भी ज्यादा अकड़ा दिखायी दे रहा था।

लाचार रामसिंह ने जाकर बादशाह से सब कुछ कह दिया। उन्होंने शीघ्र अपने तीन कर्मचारियों—मुल्तफितखाँ, आफिलखाँ और मुखलिसखाँ—को शिवाजी को दिलासा देने तथा सिरोपाव प्रदान करने की आज्ञा दी।

"आखिर ऐसी जल्दी बाजी क्यों? यह लीजिए सिरोपाव पहनिये।" मुल्त-फितखाँ बोला। बाकी दोनों शान्त खड़े रहे।

"मुझे यह सब कुछ नहीं चाहिए। मैं बादशाह के मन्सब का भिखारी नहीं हूँ। अब मैं औरंगजेब का सेवक नहीं बन सकता, भले ही तुम मुझे कैद कर लो, मुझे मार डालो।" शिवाजी की वाणी काँप रही थी। शम्भूजी भी क्रोध में आपे से बाहर था।

तीनों कर्मचारी शिवाजी को क्रोध में देखकर लौट गये। इन्हें उन्हें मानने से क्या लाभ? मुसलमान कर्मचारी तो चाहते थे ही कि बादशाह और शिवाजी में किसी प्रकार अनबन हो जाये। उन्होंने सारी बातें ज्यों की त्यों बादशाह से

कह दीं। सारे दरबार में सन्नाटा छा गया। शिवाजी के साहस की कुछ वीर मन ही मन प्रशंसा करने लगे।

बादशाह ने पुनः रामसिंह को बुलाया और बड़े गम्भीर स्वर में बोले, कुँवरजी, शिवाजी को तुम अपने साथ लेते जाओ और अपने डेरे पर ले जाकर उसे किसी प्रकार शान्त करो" रामसिंह ने सिर झुका कर आज्ञा शीरोधार्य की और शिवाजी को साथ ले तुरन्त दरबार से बाहर चले गये। पीछे पीछे शम्भूजी भी था।

सन्ध्या की कमर टूट चुकी थी। आकाश से काँपता अँधेरा बरस रहा था। घना सन्नाटा छाया था।

ooooo

"हुजूर उसकी गुस्ताकी कभी मुआफ के काबिल नहीं है।" अकिलखाँ ने कहा।

"जहाँपनाह, दरबारेखास में ऐसी बेअदबी मुगल सल्तनत के इतिहास में खोजने पर नहीं मिलेगी। यदि ऐसे गुस्ताक को सजा नहीं दी गयी, तो दरबारी शिष्टाचार सदा के लिए समाप्त हो जायगा।" मुखलिसखाँ बोला।

"वह तो हैवान है, भला दरबारी शिष्टाचार क्या जाने। आज यदि सिरो-पाव नहीं पहना तो कल पहनेगा। उसकी क्या मजाल है, जो आँख दिखाकर निकल भागे। मुझे तो केवल मिर्जाराजा का ख्याल था, नहीं तो उसने जिस समय बेअदबी की उसी समय उसकी गर्दन धड़ से अलग कर देता।" यह गर्जना सैय्यद मुर्तजाखाँ की थी।

अनेक लोगों के कहने तथा कान भरने पर औरंगजेब के मन में शिवाजी से बदला लेने की भावना दृढ़ होती गयी। इधर रामसिंह ने शिवाजी को अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु पत्थर पर पानी फेंकना बेकार था। शिवाजी टस से मस न हुए। समुद्र चन्द्र पर जल चढ़ाता रहा, पर चन्द्रमा दूर का दूर ही था। जब रामसिंह अधिक पीछे पड़े तब शिवाजी ने

अन्तिम-बार कहा, "कुंवरजी, तुम मेरे साथी हो। मेरी परिस्थिति को तथा मुझे समझ सकते हो। बताओ क्या मै इस काबिल हूं कि यशवन्तसिह के नीचे खड़ा किया जाऊँ। उस गुलाम, मुगलों के टुकडो पर जीने वाले की इज्जत क्या हम स्वतन्त्रता के पुजारियों से भी अधिक है। शिवा अपनी जान की रक्षा के लिए मान और सम्मान को बेच नहीं सकता। मुझसे जरा भी हठ करना बेकार है।"

मुगल दरबारियों को विश्वास था कि रामसिंह के समझाने से दो-एक दिन बाद अवश्य शिवाजी दरबार में आयेगा, अपने किये के लिए क्षमा मागेगा और खिलअत स्वीकार करेगा। किन्तु, जब वे नहीं आये, उनके प्रतिद्वन्दियो ने आग लगानी शुरू की। यहाँ तक कि यशवन्तसिह ने भी कहा, हुजूर वह एक बड़े छोटे तपके का आदमी है। मामूली गँवार जमींदार है। खुले दरबार में हुजूर के सामने जो उसने गुस्ताखी की है, वह बरदास्त करने लायक नही है। यदि उसे सजा नही दी गयी तो मामूली आदमी भी दरबार में बेअदबी करते रहेंगे।" लोगों ने भी सिर हिलाकर समर्थन किया।

कहते हैं कि मामूली सूत की बार-बार रगड़ से पत्थर भी कट जाता है—और फिर वह तो बादशाह था, जिसकी प्रत्येक इच्छा कानून थी। उसके सामने सूरत की लूट और अपने ही मामा शायस्ताखाँ के अपमान की घटनाएँ अब भी ताजी थीं। उसने शिवाजी को मरवा डालने का निश्चय किया। साँप को दूध पिलाने से लाभ क्या? किन्तु उसने सोचा इसके सम्बन्ध में मिर्जाराजा से भी सलाह लेनी चाहिए। शिवाजी को उन्होंने किन शर्तों पर हमारे पास भेजा है? उसकी रक्षा की कौन-कौन सी कसमें खायी है? एक गोपनीय पत्र जयसिंह को लिखा गया।

पत्र का उत्तर आने में देर हुई। हो सकता है इस बीच शिवाजी चंगुल से निकल भागे। उसने उन्हें आगरे के किलेदार राहअन्दाजखाँ को यह कहते हुए सौंपा कि देखना उस पर कड़ी नजर रखना, कहीं बहकने न पाये।

यह बात रामसिंह को अच्छी न लगी, किन्तु वे बादशाह से कैसे कहे। वे मन्त्री आमिनखाँ के पास पहुँचे और उनसे निवेदन किया, "मेरे पिता से अपनी रक्षा की पूरी प्रतिज्ञा कराने पर ही शिवाजी आगरा आये हैं। पिताजी ने मुझे

उनकी रक्षा का भार सौंपा है। ऐसी स्थिति में हम धर्म एवं वचन के बन्धन से बँधे हैं। शिवाजी के प्राणों का मुझे कोई मोह नहीं है। डर है कि यदि वे मारे गये तो हम सबकी नजर में झूठे और बेईमान समझे जायँगे। ऐसी स्थिति में यदि बादशाह शिवाजी को मरवाना चाहते हैं तो पहले हमें ही मरवा डालें। मैं अपने बन्धन से मुक्त होऊँ, फिर जो चाहे करें।" रामसिंह की वाणी में जितनी बुद्धिमानी थी उतनी ही हृदय की सचाई भी।

आमिनखाँ ने औरंगजेब से निवेदन किया। उसने शिवाजी को रामसिंह के ही नियंत्रण मे रखने की राय स्वीकार कर ली। इसके लिए रामसिह को मुचलका लिखना पड़ा। अब यदि शिवाजी भागेंगे या आत्महत्या करेंगे, तो इसका उत्तरदायित्व रामसिह पर होगा। फिर भी बादशाह को सन्तोष न हुआ।

इसी बीच मिर्जाराजा का बादशाह को पत्र मिला। उसमें लिखा था—मैंने शिवाजी की रक्षा के लिए धर्म की कसम खायी है। आगरे में उसका यदि किसी प्रकार का अनिष्ट हुआ तो आप का कोई भी उमराव बात का पक्का नहीं समझा जायगा। उसको मारने से भी कोई लाभ नहीं। वह ऐसा प्रबन्ध कर गया है कि उसके न रहने पर मराठा अच्छी तरह राजकाज चलाते रहेंगे। यदि उसकी हत्या हुई, तो मराठो को दबाना कठिन हो जायगा। उन्होंने रामसिह को भी लिखा कि शिवाजी की रक्षा करते रहना, हमारी प्रतिज्ञा झूठी न हो। हमें विश्वासघात का कलंक न लगे।

इस पत्र की प्रतिक्रिया औरगजेब पर अत्यन्त साधारण हुई। उसने पहले सोचा कि अफगानिस्तान में शिवाजी को मुगलों के साथ भेज दूं। भारतियों के लिए उन दिनों अफगानिस्तान 'काला पानी' था। किन्तु उसने शीघ्र ही अपना विचार बदल दिया और उन्हें आगरा के कोतवाल सिद्दी फौलादखाँ की निगरानी में रखा। शिवाजी के निवास स्थान के चारों ओर तोपें लगा दी गयीं। सरकारी फौज का पहरा बैठ गया। डेरे के भीतर भी कई कछवाहे एवं आम्बेरी अफसर तैनात थे।

जंगल का राजा चारो ओर से घिरा था।

००००००

धीरे-धीरे कई दिन बीत गये। अब शिवाजी को मुक्त होने की कोई आशा न रही। एक दिन उन्होंने कोतवाल को बुलाकर कहा, "कोतवाल साहब मैं चाहता हूँ कि राजकाज से बिल्कुल अलग हो जाऊँ। जीवन का उद्देश्य क्या ?—सुख और शान्ति। क्या शासन में कोई सुख है। यह तो कच्चे धागे से लटकती उस भारी एवं दुधारी तलवार के समान है, जो किसी समय टूटकर गर्दन पर गिर सकती है। और फिर न इस लोक में शान्ति मिलेगी और न परलोक में। माया ममता छोड़ता हूँ। चाहता हूँ कि अपने सभी किले बादशाह के हवाले कर किसी तीर्थ में बैठकर भगवान् का स्मरण करूँ।"

"तो इसके लिए अपने दक्षिण के अधिकारियों को खत लिख दीजिए।" कोतवाल फौलादखाँ बोला।

"केवल खत लिखने से काम नहीं चलेगा। इसलिए मुझे दक्षिण जाना पड़ेगा। आप बादशाह से कहें, यदि उनकी आज्ञा हो तो चला जाऊँ।" शिवाजी ने सँभलते हुए कहा।

कोतवाल तो चक्कर में आ गया। उसने सोचा, शिवाजी का यह मानसिक परिवर्तन है। वह शीघ्र बादशाह से मिला और सभी बातें कहीं। बादशाह भला भुलावे में आने वाला कब था। कोतवाल की बात सुनकर वह जोर से हँसा और बोला—"वह है तो बड़ा चालाक, पर मेरे सामने उसकी चालाकी लगने वाली नही है। तुम जाकर उससे कह दो, यदि फकीर होना चाहे, तो मैं उसे प्रयाग के अपने किले में भेज दूं। सूबेदार बहादुरखाँ उनकी अच्छी हिफाजत करेगा। प्रयाग तो तीर्थराज है। वहाँ जाकर वह भगवान् का भजन कर सकता है।"

बादशाह का उन्हें सन्देश मिला। उन्होंने सोचा, वार खाली गया। साधारण उपायों से जान छूटनेवाली नहीं, कोई बड़ी तरकीब सोचनी पड़ेगी।

उन्होंने रामसिंह को बुलाकर कहा, "यदि मेरी जिम्मेदारी का मुचलका रद करवा लेते, तो अच्छा था।" "क्यों महाराज ?" रामसिंह सकपकाया।

यों ही बेकार बन्धन में पड़ने से क्या फायदा ? जिन्दगी का क्या ठिकाना ? सागर के तरंगित हृदय पर बनकर एक क्षण में मिट जानेवाले बुलबुलों के

जीवन सम्बन्ध में भी कुछ कहा जा सकता है। सघन मेघों में चमककर क्षण में अन्धकार की गोदी में सदा के लिए सो जानेवाली बिजली की कहानी के भी आदि और अन्त का निश्चय है। किन्तु मनुष्य के जीवन की कहानी के आदि अन्त का कोई निश्चय नहीं। मैं चाहता हूँ कि मेरी रक्षक सेना अपने देश लौट जाती तो अच्छा था। इसके लिए आप बादशाह से परवानगी दिला दें, तो बड़ी कृपा हो।" शिवाजी की आवाज अत्यन्त गम्भीर थी।

रामसिंह कुछ समझ नहीं पाया। उसके लिए शिवाजी का यह अचानक परिवर्तन अत्यन्त आश्चर्यजनक था। वह सिर नीचा किये सब कुछ सुनता रहा और केवल दो ही शब्द बोला—"बहुत अच्छा, जैसी आपकी आज्ञा।" कुछ समय तक वह शान्त बैठा रहा। शिवाजी सामने खिड़की से आकाश की ओर देखते और सोचते रहे। फिर वह उठा और नमस्कार कर चला गया।

शत्रु जितनी जल्दी दूर हटे उतना ही अच्छा। शिवाजी की रक्षक सेना को आगरा छोड़ने की अनुमति मिल गयी। रघुनाथ-बल्लाल कोरडे जाने के पहले अपने स्वामी से मिलने आया और बड़ी श्रद्धा से बोला—महाराज, हम सब आपको यहाँ अकेला छोड़कर जाना नहीं चाहते?

शिवाजी के अधरों में पुनः बिजली चमकी। वे बोले, "दुनियाँ में कभी कोई अकेला नहीं रहता। ईश्वर और मनुष्य के कर्म सदा उसके साथ रहते हैं। वे ही उसकी रक्षा करते हैं। क्या तुममें और तुम्हारी सेना में परमात्मा से अधिक बल है?"

उसने सिर हिलाकर कहा, 'नहीं।'

"तब फिर मेरी चिन्ता क्यों करते हो? जाओ महाराष्ट्र की चिन्ता करो। जननी जन्मभूमि की स्वतंत्रता की चिन्ता करो।...मेरा मेरे देशवासियों से नमस्कार कह देना। मै शीघ्र ही तुम लोगों से मिलूँगा।" अब रघुनाथ में कुछ और कहने की हिम्मत नहीं थी। वह बड़ी धीरे से बोला—"पर जाने के पहले सैनिक आपका दर्शन करना चाहते हैं।"

'दर्शन' शिवाजी मुस्कराये। "इसके लिए कोतवाल से कहिए। बादशाह अनुमति लेनी आवश्यक है।" उन्होंने कहा।

किन्तु बादशाह ने अनुमति नहीं दी। उसने सोचा—हो सकता है, मिलते समय शिवाजी अपने सैनिकों को भड़काये और वे महाराष्ट्र लौटकर उपद्रव करना शुरू कर दे। व्यर्थ आफत मोल लेने से क्या फायदा? सैनिक अपने स्वामी का दर्शन किये बिना ही आगरा छोड़कर चले गये, जैसे बरबादी को छोड़कर तूफान चला जाता है।

इस समय शिवाजी के पास रुपये भी नहीं थे। उन्होंने रामसिंह से ६६००० रुपये लेकर हुंडी लिखी और दक्षिण में उसे जयसिंह के पास भेज दिया।

००००००

कई दिनों से शिवाजी बीमार हैं। ठीक से कुछ खाते पीते भी नहीं। दिन पर दिन कमजोरी बढ़ती जाती है। बादशाह को उनकी बीमारी की जब सूचना मिलती वह जोर से हँसता और कहता—लगता है कि उसे खौफ की बीमारी है।" उसकी वाणी में तिक्त उपहास रहता।

एक दिन प्रातःकाल ही सिद्दी फौलाद की कर्कश आवाज शिवाजी को सुनायी पड़ी—हकीम साहब तसरीफ ला रहे हैं। बादशाह ने इन्हें आपकी खिदमत में भेजा है।

"लेकिन कोतवाल साहब! मुझे हकीम की क्या जरूरत।" कहारते हुये शिवाजी बोले।

"आप बीमार हैं। सेहद गिरती जा रही है। दवा अवश्य करनी चाहिए।"

"किन्तु बीमार होने के लिए तो मैंने कोई दवा नहीं की। फिर बीमारी से अच्छे होने के लिए भला दवा की क्या जरूरत। कुदरत स्वयं आदमी को ठीक कर देती है।" बड़े प्रेम से शिवाजी ने कहा। कोतवाल का वे बादशाह से कम आदर नहीं करते थे। वे सदा इसे प्रसन्न रखते थे। इनकी ईमानदारी पर उसे विश्वास हो गया था।

हकीम की दवा न करने में भी शिवाजी की एक चाल थी। वह बीमार तो थे नहीं। उन्होंने बीमारी का बहाना किया था फिर नब्ज दिखाते क्या? औषधि

के बहाने हो सकता था औरङ्गजेब उन्हें विष देने का जघन्य पाप करता। वे इस चक्कर में आने वाले नहीं थे।

हकीम चला गया। बादशाह ने सोचा—"चलो अच्छा है। मर्ज बढ़ता जा रहा है। दवा से भी उसे नफरत है, लगता है जिन्दगी से नफरत हो गयी है। शत्रु जब स्वयं नष्ट होने लगे तो इससे बड़ा भाग्य क्या? "इसी समय कोतवाल का एक प्रार्थना पत्र पहुँचा। जिसमें लिखा था—शिवाजी की बीमारी बढ़ती जा रही है। वे ब्राह्मणों तथा फकीरों को मिठाई, फल, मेवे आदि दान करने की अनुमति चाहते हैं।

औरङ्गजेब मुस्कराया। "आखरी वक्त आदमी की हर ख्वाहिश पूरी करने की कोशिश करनी चाहिए।" उसने सोचा और शीघ्र अनुमति दे दी।

दो एक दिन और बीते। पिता से अधिक तो पुत्र को चिन्ता थी। शम्भूजी हमेशा शिवाजी के शयन कक्ष में ही रहते। उसे क्या मालूम कि यह बहाना है या असली बीमारी। बहुधा वह घबरा जाता, रोने लगता और अधीर हो पूछता—पिताजी अब क्या हम लोग दक्षिण नहीं चलेंगे? क्या माताजी और दादीजी से भेट नहीं होगी?" वे उसे सान्त्वना देते और कहते, "बेटा घबराने से आजतक दुनियाँ का कोई काम नहीं हुआ है। विश्वास रखो, यदि भगवती ने चाहा तो हम लोग जरूर चलेंगे।"

"कब चलेंगे पिताजी?"

"जब अच्छा हो जाऊँगा।"

"इसके पहिले नहीं चल सकते?" कितनी व्याकुलता थी उसे।

"क्यों नहीं।" शम्भूजी के सूखे चेहरे पर प्रसन्नता दौड़ गयी। शिवाजी भी हँस पड़े।

इन दिनों शिवाजी से मिलने की भी लोगों को अनुमति नहीं थी। उन्होंने प्रचारित कर दिया था कि बीमारी के कारण वे किसी से मिल नहीं सकते। बाहरी लोगों के बिल्कुल दर्शन नहीं होते थे। पहरे के अधिकारी और कोतवाल कभी-कभी आकर शिवाजी का समाचार पूछ लेते थे। इनके अतिरिक्त हीराजी

फर्जन्दे बहुधा शिवाजी के पास रहते। वे उनकी देख भाल करते। थे तो बादशाह के कर्मचारी, किन्तु शिवाजी के सौतेले भाई थे। उनकी आकृति भी शिवाजी से बहुत कुछ मिलती थी। उनसे उनका आत्मीय प्रेम था।

अभी हीराजी उनके शयन कक्ष के बाहर ही थे। पहरे के सैनिक भी कैदी को अशक्त जान ढीले पड़ चुके थे। भादो की अँधेरी सन्ध्या थी। बूँदे पड़ रही थीं। बादलो के पीछे तूफान जैसे गरज रहा था। शिवाजी ने इशारे से हीराजी को पास बुलाया। चारो ओर देखा कोई देखता तो नही। फिर धीरे-धीरे उससे कुछ बातें कीं। करीब आधे घण्टे तक बात होती रही। अन्त मे केवल इतना ही सुनायी पडा—"तरीका तो खतरनाक अवश्य है। जरा सा चूकने पर हम सबके प्राण सकट मे पड़ जायँगे, किन्तु इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय भी तो नही है।" हीराजी कुछ समय तक चुप थे। बाद मे बोले—"कोई बात नहीं। अवसर पर अग्नि को भी गले लगाना पड़ता है।...मै जी भर आपका साथ दूँगा।" तब बाहर किसी के आने की आहट सुनायी पडी। बातचीत एक दम बन्द हो गयी। शिवाजी पहले की भाँति कराहने लगे। हीराजी भी धीरे से कमरे के बाहर निकल गये।

बाहर बादल गरजता रहा। बिजली चमकती रही। अँधेरा बढ़ता रहा।

००००००

आज भाद्र कृष्ण पक्ष चतुर्दशी थी।

मुँह ही मुँह आगरे मे समाचार प्रसारित हो गया कि आज शिवाजी की तबियत बहुत खराब है। रहरहकर मुर्छा आ जाती है। उनके हितैषियों में चिन्ता बढ़ी। इधर फल और मिठाइयाँ प्रातःकाल से ही दान होने लगीं। बड़ी बड़ी भरी हुई टोकरियाँ शिवाजी के बिस्तर के पास आतीं। वे उन्हें हाथ से छू देते। बहँगी पर लाद कर वे किले के बाहर निकाली जातीं और गरीबों में बाट

---

१. शाहजी का दासी पुत्र।

दी जातीं। पहरेदार प्रत्येक टोकरी की जाँच करते, तब कहीं सामान किले के बाहर निकलता। ऐसी जाँच दो बार होती थी।

प्रातःकाल से ही यह क्रम चलता रहा। सन्ध्या तक टोकरी की जाँच करने वाले भी कुछ ठंडे पड़े। इसी समय हीराजी उपस्थित हुए और बोले, "जल्दी कीजिए। समय नहीं है।"

"क्या एक ही बहँगी में हम दोनों जा सकेंगे?"

"सम्भव तो नहीं है"—हीराजी ने कहा—"तो फिर पहले शम्भू को भेजिए।" शिवाजी ने कहा।

"पर वह पहले जाकर करेगा क्या? आप दोनों को साथ ही जाना चाहिए।" तब तक बहँगी पर खाली टोकरियाँ शयन कक्ष में आयीं। हीराजी ने एक में शम्भूजी को गोद में उठाकर बैठाया। बालक सकपकाया। शिवाजी ने मुस्कराते हुए कहा—अब हम लोगों को फल और मिठाई बनना पड़ेगा बेटा।" तीनों धीरे से हँसे। शिवाजी ने पुनः कहा—देखो घबराना मत। कोई कुछ पूछे तो बिल्कुल मत बोलना।" बालक ने मुस्कराते हुए कहा—"कहीं फल और मिठाइयाँ भी बोलती हैं।" तीनों हँसे और फिर एक दम चुप हो गये, जैसे उनकी हँसी का किसी ने गला घोंट दिया।

फिर अपने हाथ का सोने का कड़ा निकाल कर शिवाजी ने हीराजी को दिया और दूसरी टोकरी में जा बैठे। ऊपर से फल और मिठाइयों के दोने रखे गये। इधर हीराजी सोने का कड़ा पहन कर विस्तर पर लेट गये और सिर से चादर ओढ़ ली। ईश्वर की कृपा से कोई मुसलमान पहरेदार इधर दिखायी नहीं दिया। मज़दूर दोनों टोकरियाँ लेकर किले के बाहर निकले।

शिवाजी और हीराजी ने मन ही मन एक दूसरे को नमस्कार दिया। हीराजी जैसे बलिदान के लिए बलिवेदी पर सो गया हो। आज वह अपने को संसार का सबसे बड़ा भाग्यशाली समझ रहा था। मृत्यु के आमंत्रण का गौरव जीवन के आनन्द से कम महत्व का नहीं।

'रुको'—कछवाहे सैनिकों ने बहँगी ढोने वाले मजदूरों को रोका। "क्या है

इसमें ?" घुड़कते हुए सैनिक ने कहा। 'दान की मिठाइयाँ'—मजदूर बोला। टोकरी का मुँह चौड़ा सा उभारकर एक सैनिक ने देखा और उसे बाहर जाने दिया। एक फाटक तो पार हुआ। शिवाजी से अधिक तो मजदूर प्रसन्न था।

दूसरे फाटक पर मुगल सैनिकों ने पुनः रोका। उनमें से दो आगे बढ़कर टोकरी खोलने चले। इनका टोकरी खोलना खतरे से खाली नहीं। मजदूर पहले घबराया; पुनः सँभलते हुए बोला—"ब्राह्मणों को दान देने के लिए इनमें मिठाइयाँ है। आप लोगों के छूने पर वे इसे ग्रहण नहीं करेंगे।" सैनिकों का आगे बढ़ा हाथ अचानक रुका। टोकरियाँ इस फाटक से भी बाहर निकल गयीं।

बिल्कुल अँधेरा हो चला था। तेज हवा गरज रही थी। मृत्यु से भी भयावह अँधेरे में तूफान चीख रहा था। बहँगी पर टोकरियाँ चली जा रही थीं। सुनसान निर्जन स्थान पर ये उतारी गयीं। आकाश में बिजली चमकी। और फिर अँधेरे ने जैसे प्रकाश को पी लिया।

शिवाजी और शम्भूजी टोकरी के बाहर आये। टोकरी के पीछे-पीछे दो मराठे नौकर भी आये थे। बाहर निकलते ही शिवाजी ने मुट्ठी भर मोहर निकालकर कहारों में से एक के हाथ पर रखते हुए कहा, "लो, आपस में बाँट लो। तुम लोगों ने जैसा साहसिक कार्य किया, उसका मूल्य कभी भला धन से चुकाया जा सकता है ? इस समय मेरे पास और कुछ नहीं है। जब कभी दक्षिण आना तो दर्शन जरूर देना।" कँहार प्रसन्नता से मस्तक झुका कर खड़े रहे। हर्षातिरेक में वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे। मौन अभिव्यक्ति की चरम सीमा है। आखें कह रही थी—जाओ धरती के सपूत भगवती तुम्हारा कल्याण करें।

कँहार नमस्कार कर लौट पड़े। शिवाजी मराठों के साथ आगे बढ़े। आकाश में पुनः बिजली चमकी। बादल पिघला। तूफान रह रहकर तड़प रहा था। छः मील की पैदल यात्रा के बाद ये लोग एक गाँव में पहुँचे। शम्भूजी थक चुका था। आँधी के थपेड़े में इतना चल लेना उसके लिए आसान नहीं था।

मार्ग सूनसान था, किन्तु दूर झोपड़ों में वर्षा के गीत का मधुर स्वर गूँज

रहा था। गाँव में पहले से ही नीराजी रावजी शिवाजी की राह देख रहे थे। शिवाजी को देखते ही वे आगे आये और उन्हें लेकर एक झोपडी में घुसे। झोपड़ी अत्यन्त छोटी तथा सँकरी थी। दीपक के टिमटिमाते प्रकाश की एकाध किरणें भूल भटककर छप्पर से छनकर बाहर आ रही थीं। धीरे धीरे सभी लोग भीतर गये और कुछ समय के बाद बाहर आये। अब सबके बाल मुड़ चुके थे। तन पर भस्म लगी थी। गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए थे। बिल्कुल साधुओ जैसे लगते थे, या यों कहिए, साधु ही थे। सब चल पड़े। गाँव के बाहर पहुँचे।

शिवाजी ने मुगलो के चंगुल से निकल भागने की सफल योजना प्रस्तुत करते हुए कहा—जब बादशाह को मेरी अनुपस्थिति का समाचार मिलेगा तो वह आग बबूला हो जायगा और प्रत्येक चौकी पर कड़ी जाँच होनी आरम्भ होगी।

"इसके लिए हम लोग पहले से ही सचेत हैं।" नीराजी ने कहा। वे पुनः बोले, "आकृति से तो हम पहचाने नहीं जा सकते। धन का भी मैंने प्रबन्ध कर लिया है।"

"वह कैसे?" शिवाजी की जिज्ञासा जागी।

नाराजी हँसे और बोले, " हम लोगों के तन के एक एक अंग में इस समय हीरा मोती और मोहरे हैं।" शिवाजी इस अबुझ पहेली को बूझ न सके। नीराजीने पुनः मुस्कराते हुए कहा, "आप के हाथ में जो लाठी है वह खोखली है। उसमें मोहरे और जवाहरात भर कर उसका मुँह बन्द कर दिया गया है। हम लोगों ने अपने जूतों में बहुत सी मुहरें छिपा रखी हैं। कीमती हीरे और बहुत से पद्मराग मोम में रखकर राघव मित्र के कपड़े के भीतर सी दिये गये हैं।"

"शाबाश, नीराजी आप भी कम नहीं हैं। मुझे गर्व है कि हमारे सभी साथी पूर्ण पारंगत है। तब भला मुझे सफलता क्यों न मिले।" शिवाजी जोर से हँसे। इधर बहुत दिनों के बाद वे जोर से हँसे थे। फिर उन्होंने कहा,

"नीराजी हम लोगों में आप ही हिन्दी अच्छी जानते हैं। आप इस पवित्र यात्रा में हम सबके महंत होंगे और हम सब आप के चेले।"

"चेला तो मैं स्वयं हूँ महाराज।" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

"सभी स्थानों तथा परिस्थितियों में सब गुरुवाई नहीं कर सकते। इस स्थिति में आपही गुरु होंगे......महन्त नीराजी रावजी की जय।" शिवाजी हँसते हुए बोले। मजाक खूब था।

रात भर घोड़े पर चलते रहे। दिन निकलने के बहुत पहले ही मराठों का दो दल हो गया। शम्भूजी, शिवाजी, नीराजी, दन्ताजी त्र्यम्बक और राघव मित्र पैदल ही मथुरा की ओर चले। बाकी लोग दक्षिण की ओर बढ़े। मुगल तो समझेंगे कि शिवाजी भागकर दक्षिण गया होगा। उधर ही कड़ा पहरा बैठायेंगे, यह सोचकर ही उन्होंने आगरा से मथुरा जाने का कार्यक्रम बनाया जिससे किसी को जरा भी सन्देह न हो।

००००००

आँधी-पानी की चीखती-तडपती रात बीत गयी। सबेरा हुआ। पानी बन्द हो गया था। हवा में फिर भी नमी थी। सूर्य का दर्शन दुर्लभ था। बाहर के पहरेदार ने शिवाजी के शयन कक्ष में झाँक कर देखा। रुग्ण कैदी अब भी चादर ओढ़े सो रहा था। उसका पैर नौकर दबा रहा था। चदरे के बाहर दिखायी देते हाथ में सोने का कड़ा चमक रहा था। पहरेदार शयन कक्ष के चारों ओर फिर चक्कर काटने लगा।

धीरे-धीरे आठ बजा। शिवाजी के बिस्तर पर सोये हुए हीराजी चुपचाप उठे और मौका देखकर कमरे के बाहर आये। दरवाजा लगा दिया और इधर उधर दो-एक चक्कर लगाकर पहरेदारों और नौकरों से कहा—देखो इस समय शिवाजी के सिर में भयंकर पीड़ा हो रही है। वे सोये हैं। जरा भी शोर-गुल न हो, नहीं तो उन्हें नींद नहीं आयेगी। किसी को भी उधर जाने मत दो और पहरा भी बड़ी शान्ति से दो।"

सैनिक एक दम शान्त हो गये। हीराजी मौका देखकर नौ दो ग्यारह हुए। कई घन्टे तक महल में किसी प्रकार की आहट तक न सुनायी पड़ी। दो घन्टा और बीता। दस बजा।

"क्या बात है ? आज मरीज़ के कराहने तक की आवाज सुनायी नहीं पड़ती। कहीं वह मर तो नहीं गया।" पहरे के सिपाही ने सोचा। जिज्ञासा वश उसने दरवाजा खोला। भीतर देखा, कैदी नदारद। कमरा सूना पड़ा था। उसे काटो तो खून नहीं। पिंजड़ा बन्द का बन्द और चिड़िया उड़ गयी। आश्चर्य !

"कैदी भाग निकला। आग की भाँति यह समाचार देखते-देखते फैल गया। सभी चकित थे। इतनी चौकसी रखने पर भी वह कैसे भागा ? कोई विलक्षण जादूगर है या उसे ईश्वरी शक्ति प्राप्त है ?

पहरेदार दौड़े हुए कोतवाल के पास गये और खबर दी, "जहाँपनाह, शिवाजी भाग गया।" 'भाग गया ?' उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। "तुम लोगों ने जरूर लापरवाही की। या खुदा अब क्या होगा ? बादशाह हम लोगों को जिन्दा नहीं छोड़ेगा।" वह कहता रहा। सैनिक सामने खड़े थे। पुनः वह तड़पा—"खड़े-खड़े क्या देखते हो। जाओ महल का चप्पा-चप्पा छान डालो। अभी वह वहीं छिपा होगा।" सैनिक चलने को हुए, किन्तु उनमें से एक बोला—"लेकिन हुजूर वह वहाँ नहीं है। हमने वहाँ हर जगह देखी है···।"

"हर जगह नहीं अपना सिर देखा है।" वह दाँत पीसते हुए बोला। भविष्य की अशुभ कल्पना से सैनिक काँप उठे। दौड़े महल में आये।

शीघ्र ही कोतवाल फौलाद भी महल पहुँचा। कोना-कोना खोजा गया, लेकिन शिवाजी वहाँ हों, तब तो मिलें। अब वह बादशाह को क्या जवाब देगा। उसका क्या होगा ? कोतवाल घबरा गया। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसे ऐसा लगा, मानो मृत्यु अपनी लाल जिह्वा फैलाये निगलने के लिए बढ़ी चली आ रही है, यमराज अट्टहास कर रहा है। नरक की एक-एक यातना का चित्र उसे दिखायी देने लगा। अब वह विक्षिप्त-सा था। उसका सिर भारी हो गया और चक्कर खाकर गिर पड़ा।

कुछ समय के बाद उसकी तबियत ठीक हुई। महल में जैसे मातम छाया था। कोतवाल की हालत खराब है—प्रत्येक सिपाही को चिन्ता थी। किन्तु देर करने से कोई लाभ नहीं—सचेत होने पर कोतवाल ने सोचा। वह शीघ्र ही बादशाह से मिला।

"क्यों, सिद्दी फौलाद तुम्हारे कैदी की हालत कैसी है?" बादशाह ने मिलते ही कहा। किन्तु सिद्दी कुछ नहीं बोला। वह चुपचाप जमीन देखता रहा। उसका तन काँप रहा था। हालत ठीक न देखकर बादशाह को शंका हुई। वह जरा तेज़ आवाज में बोला—"लगता है उस खूख्वार कैदी ने तुम्हारी जबान काट ली है और तुम गूंगे हो गये हो।"

अब अधिक देर तक चुप रहना मुश्किल था। वह बहुत धीरे से बोला—"जहाँपनाह वह भाग गया।"

बादशाह को जैसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। फिर वह बिजली की भाँति कड़का—"वह भाग गया?......तुम सब सोते रहे या मर गये थे। इस खबर के सुनाने के पहले तुम्हारी जबान कट गयी होती तो अच्छा था, पर मेरी नाक तो कट गयी। तुम सबको मौत की सजा दी जायगी, वर्ना जहाँ कहीं भी हो शिवाजी को पकड़ कर हाजिर करो।" बादशाह क्रोध से काँप रहा था। उसकी आँखें आग उगल रही थीं।

"लेकिन हुजूर इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। वह कोठरी के भीतर ही था। हम लोग बराबर उसे जाकर देखते थे। पूरी सावधानी बरती गयी। अल्लाह जाने उसे जमीन निंगल गयी या आकाश में उड़ गया। पैदल तो वह नहीं भाग सकता। हम लोग सदा उसके पास ही थे, फिर भी वह निकल भागा। जरूर कोई जादूगरी है।" बड़े साहस से वह इतना बोल गया।

"बेकार की बात मत करो। सभी चौकियों, घाटों और पहाड़ो की घाटियों में चौकसी रखो। कहीं से वह निकल न जाने पाये। प्रत्येक मुसाफिर को देखो आखिर वह भाग कर जायगा कहाँ।......जाओ जल्दी करो।" सिद्दी आज्ञा पाते ही वहाँ से हटा। राज्य भर में चारो ओर सैनिक परवाना लेकर दौड़ गये।

सभी स्थानों पर कड़ा पहरा बैठा दिया गया। किसी ओर से भी अब निकल सकना असम्भव था।

अब मुसलमान सैनिकों ने बादशाह के कान भरना शुरू किया कि वह कुमार रामसिंह की ही सहायता से निकल भागा है। नहीं तो भला ऐसे कठिन पहरे से वह कैसे निकल सकता। पर इसका उन्हें कोई ठोस प्रमाण न मिला। शिवाजी की अगरक्षक सेना के, जो कई दिन पहले ही प्रयाण कर चुकी थी, कुछ अधिकारी त्र्यम्बक सोनदेव दबीर, रघुनाथ बल्लाल कोरडे आदि अब भी आगरा के पास ही थे। उन्हें पकड़कर कैद किया गया और मार-मार कर उनसे कहलाया गया कि रामसिंह की ही मदद से शिवाजी भागे है।

तब बादशाह ने रामसिंह को बुलाकर कहा—तुम्हारे कसूर का सबूत अब मिल चुका है। मुझे और अधिक धोखे मे नहीं रखा जा सकता। आज से तुम्हारी मंसबदारी और दरमाही छीन ली जाती है। तुम्हारे बाप का ख्याल करके तुम्हें मौत की सजा नहीं दी जाती।"

रामसिह को ऐसी सजा दिलाकर मिर्जा राजा जयसिह से जलने वाले अफसरो ने अपना उल्लू सीधा किया।

○○○○○○

'भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्, गोविन्दम्......' गाता बजाता साधुओं का दल मथुरा पहुँचा। प्रातःकाल मथुरा नगरी धार्मिक वातावरण में सराबोर थी। मन्दिरों के घन्टे घँड़ियाल की ध्वनि में सूर के पदों का मधुर स्वर गूँज रहा था। शिवाजी अपने जीवन में पहली बार इस नगरी में आये थे। यहाँ की धार्मिक चहल-पहल में वे आत्म विभोर से हो गये, सोचने लगे यही भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि है। कितनी पवित्र है यह? यहाँ की धूल में भी अपावन को पावन करने की शक्ति है। उन्होंने धरती से रज उठाकर मस्तक पर लगाया और बड़ी श्रद्धा से मार्ग के किनारे खड़े होकर आँखें मूँद कर भगवान का स्मरण

करने लगे। मंडली के सभी लोगों की ऐसी श्रद्धा देखकर एक राही ने पूछा—"आप लोग किधर से पधार रहे महाराज हैं?" व्यक्ति सम्भ्रान्त लग रहा था।

"उत्तरकाशी से।" नीराजी ने शीघ्र उत्तर दिया। और लोग चुप थे।

"क्या दक्षिण के रहने वाले हैं? उसने पुनः पूछा।

"हमारा कोई निश्चित स्थान नहीं। रमते साधु हैं। आज यहाँ कल वहाँ। कन्हैयालाल की जहाँ मरजी हुई, वहीं रात बिता दी। जो कुछ मिल गया, खा लिया।" नीराजी ने कहा।

व्यक्ति की भक्ति भावना जाग उठी। बड़ी श्रद्धा से उसने उन्हें एक वृक्ष के नीचे बैठाया और वह बोला—"बड़े पुण्य प्रताप से साधुओं की सेवा का अवसर मिलता है। आप यहीं बैठें। मैं आपके जलपान का प्रबन्ध करता हूँ।" वह चला गया। फिर शिवाजी ने मुस्कराते हुए नीराजी से कहा—"भाई, तुम्हारी महन्तई तो खूब रही। इसमें मुफ्त का जलपान भी मिलता है।" लोग हँसने लगे। नीराजी ने बनावटी ढंग से डाँटते हुए कहा—चेले हो, चेले की तरह बात किया करो।" इस बार लोग और जोर से हँसे।

व्यक्ति दही और पेड़ा लेकर शीघ्र ही आया। लोगों ने अच्छी तरह जलपान किया। फिर नीराजी ने बड़े नाटकीय ढंग से उसे आशीर्वाद दिया। वह गद्गद् हो गया। जाते समय शम्भूजी की ओर संकेत करके बोला—"इस बालक को भी आपने अपने साथ ले लिया है?" युवक को कुछ आश्चर्य था। "योग-साधन बचपन से ही होता है, युवक। यह बालक आगे चलकर बहुत बड़ा योगी होगा।" नीराजी ने बड़े तपाक से कहा और फिर एक बड़े योगी की तरह मुस्कराने लगे।

युवक सबका चरण छूकर चला गया।

लोगों ने वहीं बैठे-बैठे दो बातें सोचीं। पहली यह कि शम्भूजी को किसी प्रकार अलग कर देना चाहिए। इसके रहने पर लोगों में तरह तरह की शंकाएँ उठ सकती हैं। दूसरी यह कि दिन में कहीं विश्राम करना चाहिए और रात में यात्रा, जिससे लोगों से अधिक भेंट भी न हो सके।

मथुरा में नीराजी के तीन ब्राह्मण परिचित थे। वे रात में उनके घर गये। साथ में केवल शम्भूजी था। ब्राह्मणों ने तो पहले उन्हें नहीं पहचाना। बाद में परिचय देने पर बड़े आश्चर्य में पड़े—आखिर ऐसा वेश क्यों? नीराजीने सारी बातें बतायीं और अन्त में शम्भूजी को अपने पास छिपाकर रखने के लिए कहा। समस्या कठिन थी। बादशाह को पता चलने पर मौत से कम सजा नहीं मिलती, फिर भी बड़े साहस से बड़े भाई ने कहा—"गऊ और ब्राह्मण की रक्षा करने वाले के पुत्र की भी हम रक्षा न कर सकें, इससे अधिक हमारा और क्या दुर्भाग्य हो सकता है।...आप निश्चित हों। आपके बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न होगा। जब कभी पत्र लिखिएगा, मैं स्वयं दक्षिण आकर इसे पहुँचा दूँगा।"

"तुमने हमारा बहुत बड़ा काम हल कर दिया। आपत्ति में ही मित्र की सच्ची परख होती है।" फिर कुछ समय तक सब चुप थे। नीराजी शम्भूजी का हाथ पकड़ कर बोले, "अब से तुम्हारे माता-पिता ये ही हैं। इनकी आज्ञा मानना ...हाँ।" उन्होंने बालक को उठाकर चूम लिया। बालक की आँखें डबडबा आयीं। नीराजी का भी कंठ अवरुद्ध हो गया। बालक उन्हें एक टक देखता रहा। विचित्र कारुणिक दृश्य था। बड़े भाई ने शम्भूजी को अपनी ओर खींचते हुए कहा—आओ बेटा, जाने दो इन्हें। कुछ ही दिनों में हमलोग स्वयं रायगढ़ चलेंगे। "नीराजी सबको नमस्कार कर चले गये। अधिक रुकना उन्होंने ठीक नहीं समझा।

अब ये लोग रात में चलते। दिन में कहीं विश्राम करते। बहुधा वेश भी बदल लिया करते। इस प्रकार साधुओं का यह दल प्रयाग, काशी, जगन्नाथपुरी आदि तीर्थों का दर्शन करता हुआ महाराष्ट्र की ओर बढ़ा।

oooooo

कुछ दिनों के बाद दल दक्षिण पहुँचा अब ये खतरनाक क्षेत्र से पार हो हो चुके थे। दिन में भी यात्रा होती थी।

मौसम साफ था। खानदेश पारकर लोग एक सन्ध्या को एक गाँव में पहुँचे। दिन डूब चुका था। थके थे। रात कहीं बिताना चाहते थे। चारों ओर गाँव में देखा, कुवार के इस महीने में भी बिल्कुल सन्नाटा छाया था। चौपालें सूनी थी। मनहूसियत किसी बहुत बड़े अभाव की कहानी कह रही थी।

लाचार लोगों ने एक झोपड़ी का दरवाजा खटखटाया। अँधेरा हो चुका था। टिमटिमाता प्रकाश लेकर एक अधेड़ औरत बाहर आयी। उसे देखकर नीराजी बोले—हम दिन भर के थके है। यदि विश्राम का प्रबन्ध कर देतीं, तो बड़ी कृपा होती माँ।"

"भगवान् की बनाई हुई इतनी बड़ी धरती खुली पड़ी है। जहाँ चाहें वहाँ विश्राम कीजिये। मेरे पास क्या धरा है जो मैं आप लोगो का स्वागत करूँ।"

"इतनी नाराज क्यों होती हो माँ, प्रेम से दी हुई एक मुठ्ठी राख भी लाख की होती है।" नीराजी ने कहा।

"क्या प्रेम से दूँ। यहाँ तो वास्तव में राख के और कुछ शेष नहीं बचा है। शिवाजी के सैनिकों ने पूरा गाँव का गाँव लूट लिया। हम सब तबाह हो गये।" उसका क्रोध अब किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार करना नहीं चाहता था, वह कहती गयी" वह बनता है गऊ-ब्राह्मण की रक्षा करने वाला बहुत बड़ा धार्मिक, किन्तु हम गरीबों का खून चूसता है।

"किन्तु इसमें उसका क्या दोष? वह बेचारा आगरा के किले में कैद होकर पड़ा है।" नीराजी बोले।

"अच्छा होता तुम्हारा वह बेचारा उसी किले में गल-गलकर मर जाता।" जैसे उसकी आत्मा चीख रही थी।

"हमें भी तुम्हारे प्रति सहानुभूति है, किन्तु मनुष्य को कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। यह पाप का मूल है। दूसरे के पापों के प्रति भी उदार होना चाहिये।" नीराजी बोल ही रहे थे कि वह भनक कर भीतर चली गयी। लोगों ने सोचा कि अब वह बाहर नहीं आवेगी। साधू जमीन झाड़कर बैठ गये। भजन करने लगे। कुछ समय के बाद जो कुछ भी उसके पास रूखा सूखा था वह लेकर आयी। लोगों ने भोजन किया, तृप्त हुए।

रात वहीं बीती। उस महिला पर हुए अत्याचार से शिवाजी का मन तिलमिला उठा था। रात को भी वह रह-रहकर उसी के सम्बन्ध में सोचते थे। उन्हें लग रहा था कि इन गरीबों की आह में मेरी आशा का महल धू-धू करके जल रहा है। उन्हें उस रात देर से नींद आयी।

उस महिला का पता-ठिकाना लिख लिया गया था। अपनी राजधानी में पहुँचने के बाद शिवाजी ने उसे (पटेलिन) बुलवाकर बहुत सा धन दिया, जो उसकी लूटी गयी सम्पत्ति के मूल्य से कई गुना अधिक था।[1]

००००००

१३ सितम्बर को लोग राजधानी रायगढ़ पहुँच गये। शिवाजी बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अपनी मातृभूमि का दर्शन हुआ जो कदाचित इस जीवन में सम्भव नहीं जान पड़ता था। वे राजमार्ग से जाते हुए फूले नहीं समा रहे थे। आश्चर्य तो यह था कि जिस स्थान का प्रत्येक बच्चा उन्हें जानता था, इस समय यहाँ उन्हें कोई पहिचान नहीं रहा था। बहुत से आये और इन साधुओं की मण्डली को नमस्कार कर चले गये। पर अपने राजा को किसी ने नहीं पहिचाना। इस विचित्रता पर शिवाजी को हँसी आ रही थी।

राजभवन के प्रमुख द्वार पर पहुँच कर द्वारपाल से नीराजी ने—और विशेष रूप से महन्त नीराजी ने राजमाता से मिलने की इच्छा प्रकट की। द्वारपाल ने शीघ्र समाचार भीतर भेजवाया कि साधुओं का एक दल उत्तर भारत से आया है। समाचार सुनते ही जीजाबाई ने अपने भाग्य को सराहा और दौड़ी हुई नंगे पाँव फाटक पर आयीं। झुककर नमस्कार किया। नीराजीने हाथ उठाकर वैरागियों जैसा आशीर्वाद दिया। अब शिवाजी अपने को रोक न सके। वह दौड़े हुए आये और माता के चरणों पर गिर पड़े। अब तक माताने पुत्र को नहीं पहिचाना था। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह सन्यासी कैसा जो मेरे चरणों पर अपना

---

1. Sir Jadunath Sarkar

सिर रख दे ? वह सकपका गयीं। कुछ कह न सकी। तब तक शिवाजी ने अपनी टोपी उतार दी और माता की गोद में अपना सिर डाल दिया। अब जीजाबाई ने पहिचाना। मारे खुशी में वे विक्षिप्त जैसी हो गयीं। आँखों से प्रसन्नता के आँसू झरने लगे। फिर उन्होंने शम्भू के विषय में पूछा। शिवाजी ने एक हल्का संकेत किया, जिसका अर्थ स्वयं माताजी भी न समझ सकीं। किन्तु उस समय चुप अवश्य हो गयीं।

'शिवाजी आ गये, मृत्यु के मुख से निकलकर आ गये'—चारो ओर हलचल मच गयी। लोग आनन्द विभोर हो गये। किले में तोपों की सलामी दगी। रात को दिवाली मनायी गयी। रायगढ़ जगमगा उठा।

००००००

शिवाजी ने प्रचारित कर दिया कि शम्भूजी मार्ग में बीमार होकर मर गये। लोगों को गहरा धक्का लगा। उन्होंने सोचा मौत एक न एक को तो आखिर ले ही गयी।

उन्होने फिर मथुरा के तीनों ब्राह्मणों को शम्भूजी के साथ आने का पत्र लिखा। अब उनके सामने कोई बाधा नहीं थी। मुगलों ने सोचा—'जंगल का शेर जंगल में चला गया। शम्भूजी मर गया। अब पहरा किसके लिए ?' मुगलों का पहरा ढीला पड़ा। इधर तीनो ब्राह्मण—कृष्णजी, काशीजी और विशाजी—पुत्र को लेकर पिता के पास चले। ब्राह्मणों के साथ शम्भूजी ब्राह्मण का वेश बनाकर चल रहे थे। उन्हीं के साथ खाते-पीते भी थे। ब्राह्मण-अब्राह्मण को साथ में भोजन कराये, उन दिनों यह बहुत बड़ी बात थी। मार्ग में किसी को सन्देह करने का मौका भी नहीं मिला।

'यह तो राजा भोज की कहानी हो गयी। मरने के बाद शम्भूजी जीवित हो गया।' लोगों को आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता थी। जब मुगलों को यह समाचार मिला तो वे शिवाजी की चालाकी पर अवाक रह गये। इधर इसी प्रसन्नता

में दरबार हुआ जिसमें तीनों ब्राह्मणों को 'विश्वास' की उपाधि तथा एक लाख मोहरें और पचास हजार रूपये वार्षिक आय की जागीर दी गयी।

शिवाजी के साथ किये गये बर्ताव से सबसे अधिक दुख जयसिंह को हुआ। उन्होंने जो प्रतिज्ञाएँ शिवाजी से की थीं, उनमें से एक भी पूरी नहीं हुई। जिन्दगी के आखिरी दिनों में मिर्जाराजा अपनी बात के झूठे निकले। सच्चे राजपूत के लिए यह डूब मरने की बात थी। साथ ही रामसिंह के साथ बादशाह के व्यवहार से भी उन्हें धक्का लगा। जीवन भर मुगलों की सेवा में खून बहाना उनका बेकार हो गया। फिक्र और अपमान मे डूबा वह बूढ़ा २८ अगस्त १६६७ को संसार के सभी कष्टो से मुक्त हो गया।

इधर शिवाजी ने भी मुगलों से झगड़ा करना ठीक नहीं समझा। तीन वर्षों तक वे चुपचाप थे। अपनी शक्ति एवं राज्य बढ़ाते रहे। फिर यशवन्त और युवराज मुअज्जम की मध्यस्थता में शिवाजी ने औरंगजेब से सन्धि की। ४ नवम्बर को शम्भूजी स्वयं जाकर मुअज्जम से मिले। उन्हें युवराज ने पाँच हजारी मंसब के योग्य जागीर बरार प्रदेश में बादशाह सेदिलबायी। मराठों की एक सेना भी शाही सेना के अधीन कार्य करने लगी।

सन १६७० में इतिहास का पृष्ठ फिर बदला। कुछ जलने वालो ने बादशाह से कहा कि मुअज्जम शिवाजी से मिल गया है। वह उसकी सहायता से स्वतंत्र राज्य की स्थापना की कोशिश कर रहा है। अब क्या था? जिस औरंगजेब ने अपने बाप पर विश्वास नहीं किया, वह भला पुत्र पर विश्वास कब करता? उसने शीघ्र ही मुअज्जम को लिखा कि शम्भूजी और सेनापतियों को कैद करके हमारे हवाले करो।

जिससे एक बार हृदय का सौदा कर लिया, प्रेम हो गया, उससे फिर शत्रुता कैसी? उसने बादशाह की आज्ञा नही मानी, किन्तु शम्भूजी को बुलाकर एकान्त में कहा—चुपचाप अपने सैनिकों को लेकर औरंगाबाद से आज रात चले जाओ, वर्ना खैरियत नहीं।

शम्भूजी वहाँ से रात को हट गये। पुनः मुगलों एवं मराठों में लड़ाई छिड़ गयी।

११

## सिंहगढ़ का सिंह

जीजाबाई प्रतापगढ़ में थी और शिवाजी रायगढ़ में।

प्रातःकाल के मुस्कराते बाल रवि के दर्शनार्थ जीजाबाई किले की ऊपरी मञ्जिल पर आयीं। भगवान भास्कर का दर्शन किया, अर्घ्य चढाया और फिर चारो ओर टहलकर मद-मद समीर का आनन्द लेने लगीं। अचानक उनकी दृष्टि दूर—बहुत दूर सिंहगढ पर पडी। उन्होने सोचा—"इस सुदृढ़ किले से हम बहुत बड़े प्रदेश का नियन्त्रण कर सकते थे। कभी यह शक्तिशाली दुर्ग हमारे अधिकार में था। आज मुगलों के अधिकार मे है।" फिर कुछ समय तक मौन मूर्तिवत् खडी रहीं। लगता था कि मस्तिष्क के सघर्ष ने तन की सारी क्रिया-शीलता छीन ली है।

कुछ समय के बाद वे नीचे आयीं और अविलम्ब शिवाजी को बुलाने के लिए आदमी भेजा। शिवाजी पूजापाठ करके जलपान कर रहे थे। माता की आज्ञा सुनकर वे बिना हाथ धोये ही अपनी काली तेज घोडी कृष्णा पर चल पड़े।

आते ही माताजी को उन्होंने झुककर प्रणाम किया और इस आकस्मिक बुलाने का कारण पूछा। वे कुछ न बोली और न कुछ उचित उत्तर दिय, केवल इतना ही कहा—"आज मैं तुमसे (पाश) खेलना चाहता हूँ।" वह मुस्करा रही थीं।

शिवाजी बड़े आश्चर्य में पड़े। आज माताजी को क्या सूझा है जो मुझसे पाशा खेलना चाहती हैं ? उन्होंने विनम्र कहा-"यह ठीक नहीं है कि पुत्र अपनी माता का विरोध करे।"

और खेल आरम्भ हो गया। जीतने वाले को मुँहमागा पुरस्कार देने की शर्त थी। तीन बार पाशा फेंका गया। पहले शिवाजी जीते बाद की दोनों बाजियाँ जीजाबाई के हाथ लगीं। अब पुरस्कार माँगने का समय आया। शिवाजी ने पूछा--"मागिये माताजी क्या दू ?" माताजी शान्त थीं। पुनः बोलीं—मुझे सिंहगढ़ चाहिए।" "सिंहगढ़...?" शिवाजी ने अब समझा कि यह सारा खेल क्यो रचा गया। पुरस्कार तो बड़ा मँहगा था, पर वे कुछ बोल न सके, केवल इतना ही कहा—"पर इतनी जल्दी सिंहगढ़ हाथ में आ नहीं सकता!"

"बस इतने ही में हिम्मत पस्त हो गयी। शर्त लम्बी थी। आदमी की जबान जल्दी नही बदलती।" माताजी ने कहा।

जबान की बात थी, विकट समस्या थी। शिवाजी इसका समाधान खोजने चल पड़े। उन्होंने तानाजी को बुलाया। तानाजी उस समय अपने पुत्र की शादी में व्यस्त थे, फिर भी शिवाजी का पत्र पाते ही वे चल पड़े। उनके साथ उनका मामा शालेर और छोटे भाई सूर्याजी भी थे।

"आइए तानाजी, मैंने आपको इस समय अचानक एक बड़े आवश्यक कार्य के लिए बुलाया है। क्षमा करें।" तानाजी के आते ही शिवाजी ने कहा।

"कोई बात नहीं" तानाजी मुस्कराये। दोनो बचपन से साथ थे। यो तो तानाजी शिवाजी से बड़े भी थे, पर सम्बन्ध मित्रवत् था। शिवाजी ने सिंहगढ़ विजय की योजना बनाने के लिए कहा। तानाजी बोले—"इसके लिए ~~इतनी~~ जल्दी क्या है। मुगलों के हाथ में गये अपने सत्तर किलों को हमने पुनः प्राप्त कर लिया है, किन्तु इतनी शीघ्रता से सिंहगढ़ हाथ आने वाला नही। सुना है बादशाह ने किले की रक्षा के लिए शक्तिशाली सेना उदयभानु के नेतृत्व में भेजी है।"

"मुअज्जम की नीयत पर जो उसे सन्देह हो गया। पुत्र पिता को धोखा दे सकता है, पर उदयभानु ?..." शिवाजी उसकी बात खतम होने के पहले ही बोलने लगे थे—"कुछ भी हो हमें उसे शीघ्र लेना है। माताजी की आज्ञा है कि सिंहगढ पर अविलम्ब उनका अधिकार होना चाहिए। हम आज्ञा पालन में सब कुछ करने को तैयार है।" शिवाजी की आँखों में उत्साह की ललाई उतर आयी।

"माताजी की आज्ञा ?...तब तो हम किसी भी मूल्य पर सिंहगढ़ लेकर माता के चरणो में उपस्थित होगे। आप जरा भी न घबराये। हमारे विपक्ष में एक नही हजार भानु उदय हो जाय तब भी उदयभानु तानाजी का कुछ कर नहीं सकता।" छाती ठोंकते हुए तानाजी ने कहा।

००००००

माघकृष्ण नवमी की जाड़े की कटकटाती रात थी। आकाश में तारे ठिठुरे पड़े थे। हवा सनसना रही थी। तानाजी केवल तीन सौ मावले योद्धाओं को लेकर सिंहगढ़ की ओर चल पड़े। अधेरी रात में उनके हाथो में नंगी तलवारें चमक रही थीं। चुपचाप—बिल्कुल खामोश वे आगे बढ़े। भगवती का नाम भी उन्होंने मन में ही लिया।

जंगलो और पहाड़ों को पारकर यह छोटी सेना सिंहगढ़ की पहाड़ी के निकट पहुँची। पहाड़ी के चारो ओर घना जंगल था। तानाजी ने सैनिको को चुपचाप छिप जाने की आज्ञा दी। किले में पहरा पड़ रहा था। पहरे के सैनिक सजग थे। जंगल के निवासी कोली जाति के लोगों को भी उदयभानु ने मिला लिया था, वे सभी समाचार उन तक पहुँचाते थे।

कोलियो को आहट लगी जैसे कुछ लोग झाड़ियों में छिपे हैं। सुनगुन शुरू हो गयी। हो सकता है जानवर हों, लोगो ने सोचा। उनका यह सोचना और भी दृढ़ हो गया, जब बाद में कुछ घण्टे तक बिल्कुल कोई आहट न लगी। 'जानवर थे, चले गये।' और फिर सब सो गये।

आधी रात बीत जाने के बाद तानाजी कोली सरदार के यहाँ पहुँचे। गुदड़ी से लिपटा सरदार अपनी झोपड़ी में सो रहा था। दरवाजे की खटखटाहट सुनकर वह बाहर आया और एक नये व्यक्ति को देखकर पहले चौंक उठा। बाद में, तानाजी ने जब अपना परिचय दिया, आने का कारण बताया और सहायता के लिए याचना की, तब उसने प्रसन्नता का अनुभव किया। "हम आप तो यहाँ के रहनेवाले है, जीवन मरण के साथी हैं। आप के लिए हम जान तक दे सकते हैं।" सरदार बोला। इस आश्वासन से तानाजी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने पुनः कहा—"द्रोणागिरि की ढालुआ पहाड़ी की ओर से बढ़कर कल्याण द्वार की ओर सेना ले जाइए[1]। इधर किसी प्रकार का भय नहीं हैं। मुख्य द्वार की ओर तो कड़ा पहरा है।" बहुमूल्य राय लेकर तानाजी नमस्कार कर चल पड़े। कोली सरदार की सहायता का पूर्ण वचन मिल गया था। अब उनका उत्साह दूना था।

इधर सूर्य्याजी तथा मामा शालेर ने भूत पूर्व किलेदार रामाजी को मिला लिया। सेना द्रोणागिरि की ओर बढ़ी—चुपचाप, धीरे धीरे। पास आते ही एक मुगल पहरेदार को लगा जैसे शत्रु आ पहुँचे हैं। इसके पहले कि वह समाचार पहुँचाने का प्रयत्न करे, तानाजी का एक सनसनाता तीर उसे लगा। वह वहीं ढेर हो गया।

सेना कल्याण द्वार के निकट पहुँच गयी, पर द्वार बन्द था। जो भी पहरेदार उधर दिखायी देता, वह वहीं समाप्त कर दिया जाता। अब किले के भीतर कैसे पहुँचा जाय? उपाय होने लगा कि इसी बीच १२ मावले दुर्ग की प्राचीर पर चढ़ गये। बिना किसी चीज के सहारे वे चढ़े चले जा रहे थे। हे भगवान्! भगवती तू इनकी रक्षा कर।

फिर किले के बुर्ज से रस्सी बाँध कर लटकायी गयी। ऊपर चढ़ने की योजना बन गयी। 'पहले मैं चढ़ूँगा' तानाजी आगे लपके। "पीछे हटो, शालेर के रहते तुम ऊपर नहीं चढ़ सकते।"

---

1. History Of The Maratha People by Kincaid &. Parasnis Page 229.

"लेकिन मामाजी आप बूढ़े हो चले। लड़ाई के लिए शक्ति चाहिए, हड्डियों का ढाँचा नहीं।" तानाजी ने उन्हें पीछे खींचते हुए कहा।

शालेर का स्वाभिमान जैसे जाग उठा। वह बोला "छोड़ दो मेरा हाथ। यह हड्डियाँ दधीचि की हड्डियों से भी कठोर हैं।" और वह देखते ही देखते छलांग मार कर बहुत ऊपर चढ़ गया। इसके बाद तानाजी, सूर्य्याजी और सैनिक किले के भीतर आये।

हर हर महादेव, जयभवानी के नारे ने विचित्र कोलाहल मचा दिया। दुश्मन आ गया हल्ला मचते ही मुगल सैनिक हड़बड़ा कर उठे, किन्तु राजपूत अब भी बिस्तर पर पड़े थे, जैसे अफीम खाकर सोये हो। जमकर लड़ाई होने लगी। ये तीन सौ मावले क्या थे जैसे आफ़त के परकाले।

उधर उदयभानु ने ललकारा, "तानाजी, यदि बहादुरी का हाथ देखना और दिखाना हो तो सामने आ जाओ।" तानाजी, भला यह ललकार कब सहन करने वाले थे। दोनो एक दूसरे से भिड़ गये। तलवारे चलने लगीं। तीसरे को बीच में आना युद्ध—नीति के विरुद्ध होगा। केवल दो व्यक्ति लड़ रहे थे। कुछ समय के बाद दोनों घायल होकर गिर गये। पहले उदयभानु के प्राण पखेरू उठे और बाद में तानाजी के।

भाई के मरते ही सूर्य्याजी तड़पे, "भइया चले गये, पर कोई बात नहीं। अब हम लोग भी यहाँ से जिन्दे नहीं जायेंगे।" इतना कहना था कि हर मावला जैसे बिजली हो गया। खोज खोजकर राजपूत मारे जाने लगे। किले के बाहर कोलियों ने भी हो हल्ला शुरू कर दिया। अब राजपूतो का रहा सहा जोश भी परास्त हो गया। भगदड़ मच गयी।

भागकर प्राण बचाने की जल्दी में कुछ राजपूत पहाड़ी के ऊपर से गिर पड़े और मर गये। करीब १२ सौ राजपूत खेत रहे। बूढ़े मामा शालेर ने भी अच्छा कमाल दिखाया।

विजय के बाद अस्तबल के निकट घास के विशाल ढेर में आग लगा दी गयी। लपटें आकाश को चूमने चल पड़ीं। १० मील दूर रायगढ़ किले से

शिवाजी ने लपट देखकर समझ लिया कि तानाजी विजयी हुए। प्रातःकाल के पहले ही वे सिंहगढ़ की ओर चले। उन्होंने देखा चारों ओर शान्ति थी। विजय के बाद भी किले में जरा भी प्रसन्नता दिखायी नहीं दे रही थी। उन्हें आश्चर्य था। तब तक शालेर मामा दिखायी पड़े। शिवाजी को देखते ही वे रो पड़े। शिवाजी भी सन्न रह गये। आखिर यह विजय कैसी?

मामा से मालूम हुआ कि तानाजी ने वीर गति पायी। उन्हें बड़ा दुख हुआ। उनका बली साथी नहीं रहा। वे अत्यन्त खिन्न हो बोले-"सिंहगढ़ तो मिल गया पर सिंह चला गया।" मातम की सिसकती खामोशी में विजय का उल्लास जैसे छिप गया।

वहीं तानाजी का शव जलाया गया। सभी की आँखें जैसे डबडबा आयी थीं। माता जीजाबाई तो रो पड़ी थी—आज मेरा दूसरा शिवा चला गया। मराठे नंगे पाँव और नगे सिर चिता के चारों ओर खड़े थे, सोच रहे थे एक दिन सब की यही गति होती है। राजा, रंक, फकीर,-आग सबको जलाकर राख कर देती है।"

००००००

ऐसे ही कोंडाना पुरन्दर कल्याण भिवड़ी, माहुली आदि किलों पर शिवाजी का अधिकार हो गया। किसकी हिम्मत थी, जो उनकी विजय में बाधक होता? दाऊदखाँ कुरेशी ने थोड़ा प्रयत्न किया, पर व्यर्थ।

इधर दिलेरखाँ की प्राण घातक शत्रुता मुअज्जम और यशवन्त दोनों से थी। उसने मौका देखकर बादशाह से शिकायत कि शाहजादा ने शिवाजी से गुप्त सन्धि कर खुदमुख्तार बनाने की कोशिश में है। बादशाह की बक्र दृष्टि दोनों पर पड़ने लगी। उसका पता दोनों को किसी प्रकार लग गया।

दिलेरखाँ पहले से ही डरता था अब तो उसने अपना प्राण संकट में देखा। चुपचाप वह एक दिन भाग निकला। अगस्त की गहरी वर्षा में भी दोनों ने उसका पीछा किया। इसके लिए शिवाजी से भी मदद मांगी गयी थी।

पानी में लथपथ सेना दिलेरखाँ का पीछा करती रात दिन आगे बढ़ती

ताप्ती के किनारे पहुँची। बाढ़ से नदी समुद्र जैसी लग रही थी। इस पहाड़ी नदी की तेज धारा की फुफकार इतनी भयानक थी जैसे करोड़ों सर्प एक साथ फुफकार रहे हों। मुअज्जम की हिम्मत पार जाने की न पड़ी, पर दिलेर नदी पार आगे निकल चुका था। 'नमकहराम को मजा न चखा सका' यशवन्त को इसका दुख था। पर वह क्या करता ?

अब शिवाजी का सामना करने वाला कोई नहीं रहा। चारों ओर उनकी जय जयकार होने लगी। वे जिधर तीन हजार योद्धाओं को लेकर निकल जाते हाहाकार मच जाता।

और इसके बाद ३ अक्टूबर को वे सूरत पहुँचे।

यहाँ पहले से ही भगदड़ मची थी। कोठीदार अपना माल असबाब सुहायली भेज रहे थे। अंग्रेजों ने अपनी रक्षा के लिए सुहायली में अच्छा प्रबन्ध किया था। बन्दरगाह को बचाने के लिए जेटी के किनारे पर आठ बड़ी बड़ी तोपें लगायी गयी थीं। अनेक हिन्दू मुसलमान तथा आरमेनियम व्यापारियों के अतिरिक्त सूरत के जहाजी माल के दारोगा और मुख्य काजी ने भी अंग्रेजों के इसी गोदाम में पनाह ली थी। दस मील सूरत से पश्चिम यह सुहायली सुरक्षित था।

कहते हैं, एक बार लकवा जब मार देता है तो जिन्दगी बरबाद हो जाती है। सन् १६६४ की लूट के बाद सूरतवासियों को ऐसा ही भय था। नगर के चारों ओर ईंट की एक हलकी दीवार खड़ी कर लीगयी थी। पर यह इतनी निकम्मी और भद्दी थी कि शिवाजी के १५ हजार सवारों के घोड़ों की टापों से एक एक ईंट जैसे उड़ गयी। नगर की रक्षा के लिए केवल तीन सौ मुगल सैनिक[1] थे—वह भी आलसी निर्बल और निकम्मे। भागकर इन सैनिकों ने किले में शरण ली। बाहर निकलकर कौन आफत मोल ले ?

खाली नगर को मराठों ने अच्छी तरह लूटा। दो दिनों तक लूट होती रही। गरीब लोग कहीं न जाकर अपने घर के भीतर ही थे। उन्हें विशेष हानि नहीं

---

1. यदुनाथ सरकार

हुई। दूसरे दिन की रात को शहर के करीब आधे मकान जला दिये गये। पहली लूट की लोगों को याद सजीव हो गयी।

"तुम लोग यदि चुपचाप रहोगे तो तुम्हारी कुछ हानि नहीं होगी।" मराठों ने डच कोठीदारो से कहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि वे बैठे भगवान का नाम लेते रहे। फ्रेंच कोठीदारों ने भी मराठों को कीमती चीजो की भेंट दी। वे भी बच गये। असली मुकाबला इस समय अँग्रेजों तथा मुगलो से ही था।

हल्ला मचाता मराठों का एक दल अँग्रेजी कोठी के भी सामने पहुँचा। 'इसमें तो कुछ नही है। फाटक तोड़ना बेकार है।' मराठो में से कुछ के विचार थे। इसमें आग लगादो।' एक विचित्र ललकार सुनायी पड़ी। फिर क्या था? लोग लपके। दनादन कोठी के ऊपरी भाग से गोलियाँ छूटीं और मास्टर स्ट्रेन्स-ह्याम की तड़प सुनायी पड़ी, "खबरदार जो आगे बढ़े, एक भी बचकर जाने नहीं पाओगे।" गोलियाँ छूटती रहीं। मराठों की हिम्मत आगे बढने की न हुई। केवल पचास गोरो ने कोठी बचा ली। निकट की तुर्की व्यापारियों की सुदृढ़ 'नयी सराय' भी बच गयी।

"तातार सराय में सुलतान अब्दुल्लाखाँ मक्का से लौटकर आराम कर रहा है। बड़ी सम्पत्ति है उसके पास।" इतना सुनना था कि मराठे इस ओर लपके। पेड़ों की आड़ से सराय में गोली छोड़ने लगे। कई घन्टो तक लगातार गोलियाँ बरसती रहीं। जिन्दगी दुश्वार हो गयी।

अब रात हो गयी। इधर शहर जल रहा था। लाल, पीली, काली भयानक लपटें नागिन सी आकाश को निगलने जैसे बढ़ी चली जा रही थी। तातार सराय का फाटक खोलकर लोग सारा सामान छोड़कर भागे। जिन्दगी रहेगी तो सामान फिर हो जायगा। रात मे ही सराय लूटी गयी। गहरी रकम हाथ लगी, जिसमें औरंगजेब द्वारा अब्दुल्ला को दी गयी सोने की पलंग भी थी।

करीब ६६ लाख की लूट के बाद भी मराठों को अँग्रेजो से बदला लेने की गहरी कसक रह गयी। वे पुनः अँग्रेजी कोठी के सामने बहुत बड़ी संख्या में पहुँचे और आग लगने की धमकी देने लगे। किन्तु धमकी देकर और गुर्राकर ये हट गये। अँग्रेजों के लिए अब रक्षा दुर्लभ हो गयी।

उषा की मुस्कराती शीतल किरणों ने दो अँग्रेज बनियों को शिवाजी के शिविर में जाते देखा। उन्होंने पहुँचते ही सिर झुकाकर नमस्कार किया और कहा, "हम आपकी बहादुरी और वीरता के कायल हैं। हमसे जो भूलें हुई है, आप क्षमा करे और यह छोटी सी भेंट स्वीकार करें। इतना कहकर लाल बनात, तलवार और अन्य अस्त्र आगे बढ़ाकर शिवाजी के चरणों के पास रख दिये। शिवाजी पहले कुछ समय तक सोचते रहे, जैसे वे अंग्रेजों को क्षमा करना नहीं चाहते थे। बाद में उन्होने सोचा शरण में आये का कभी निरादर नहीं करना चाहिए। उन्होंने भेंट स्वीकार कर ली अँग्रेजों और मराठो में दोस्ती हो गयी।

५ वीं अक्टूबर को शिवाजी ने शहर के हाकिम और प्रमुख व्यापारियों को कहलाया कि प्रति मास १२ लाख रुपया मुझे दे दिया करो, तब तुम चैन से रह सकोगे, नही तो हर महीने तुम्हारा शहर जलता दिखायी देगा। तुम राख में मिला दिये जाओगे। उसी दिन वे सूरत से बगलाना प्रदेश की ओर चल पड़े। सुहायली पर जरा भी आँच न आयी।

इस लूट से सूरत तबाह हो गया। सुहायली में छिपे यहाँ के सबसे बड़े व्यापारी हाजी सैयदबेग ने कहा कि अब मैं अपने बालबच्चों के साथ बम्बई चला जाऊँगा। अब बादशाह के राज मे खैरियत नहीं। लोग बहुत डर गये थे। आये दिन शिवाजी के आने की अफवाह उठ जाती थी। जन-जीवन व्याकुल था। लोग रोज ही भागने लगे। इतने बड़े व्यापारिक केन्द्र और बन्दरगाह का वैभव समाप्त हो गया।

००००००

औरंगाबाद में मुअज्जम को सूरत की बरबादी का पता चला। प्रजा की आस्था मुगल शासन से उठती जा रही है। यह देख उसने दाऊदखाँ को मुगलों का सामना करने के लिए भेजा। वह वहाँ से चंदौर पहुँचा और मराठों के आक्रमण की सच्ची खबर लेने के लिए रुका। इस समय शिवाजी यहाँ से पाँच कोस की ही दूरी पर थे।

प्रतीक्षा के बाद गुप्तचर ने खाँ का सूचना दी कि शिवाजी आधी फौज लेकर बगलाना से उतरकर नासिक की ओर बढ़ चले है। उनकी आधी सेना पृष्ठ रक्षा के लिए घाटी के इसी ओर पड़ी है।

"सेना किसके नेतृत्व में है?" दाऊद ने पूछा।

"जानेवाली सेना का नेतृत्व स्वयं शिवाजी कर रहे है और तैयार खडी सेना के सेनापति प्रतापराव है।" शीघ्र ही वह बोला।

सूचना मिलते ही तैयारी होने लगी। शाम हो चली थी। पठान इखलास खाँ मियाना को बुलाकर दाऊद ने कहा--"खाँ, मौका है। उसकी आधी सेना चली जा चुकी है। यदि हमने पूरी ताकत लगायी तो खुदा जरूर कामयाबी देगा। हमारी सेना के अगले भाग के आफिसर आप ही रहेंगे। इखलासखाँ ने मुस्कराकर स्वीकार किया।

कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी की चाँदी से धुली रात थी। रात भर तैयारी होती रही। तीसरे पहर चाँद डूबा। सेना अँधेरे में चल पड़ी। मशालें भी नहीं थीं। चलना कितना कठिन था, फिर भी जंगली झाड़ियो को पार करते लोग निर्दिष्ट पहाड़ी पर पहुँचे। यहाँ सैनिको को छिप जाने की आज्ञा हुई और वे पहाड़ियो में छिप गये। बुन्देले बन्दूकची भी आड़ लेकर तैयार हो गये। अन्धकार का हृदय काँप उठा। सृष्टि के मुख पर से कालिमा धीरे धीरे मिटने लगी। सबेरा हुआ।

पहाड़ी पर से मुगलो ने देखा नीचे मराठे पहले से तैयार खड़े हैं। ऊपर से बड़े-बड़े पत्थर ढकेले जाने लगे। पर इससे कुछ होने वाला नहीं। अब देर ठीक नहीं, इखलासखाँ जैसे उकता गया। अभी सैनिक तैयार नहीं थे, फिर भी वह थोड़े से आदमियों को लेकर शत्रु पर टूट पड़ा। लड़ाई शुरू हो गयी। अँधेरी घाटी में मारते और मरते सैनिकों को सूर्य की किरणों ने भी नहीं देखा।

इखलासखाँ घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा मराठो का पलड़ा भारी दिखायी दिया। तब तक दाऊदखाँ भी अपनी सेना के साथ आ गया। सात घण्टे तक लड़ाई चलती रही। कभी मराठे जीतते दिखायी देते और कभी मुगल। उधर

मराठो का एक दल सूरत और बगलाना की लूट का समान लेकर अपने देश की ओर बढ़ रहा था। इधर लड़ाई चल रही थी। इस मौके पर बुन्देले बन्दूकचियों ने बड़ा काम किया। दाऊद की तोपो ने भी मराठों को आगे बढ़ने नहीं दिया।

दोपहर को सैनिक थक गये। लड़ाई रुक गयी। लोगो ने भोजन किया और सन्ध्या के पहले फिर लड़ाई छिड़ गयी। मराठों की सेना अधिक थी, फिर भी वे तोपखाने के सामने टिक नहीं सके। रात में कोंकण की ओर भागे। इन्होंने लूट का माल पहले भेजकर बडी योग्यता की थी।

००००००

दिसम्बर में शिवाजी लूटते बरार तक चले आये। इतनी दूर कभी मराठे आये नही थे। यहाँ के लोग इस आकस्मिक आपत्ति के लिए बिल्कुल ही तैयार नही थे। इसके बाद करंजा के धनिको को लूटना शुरू किया। ये धनिक पहले बहुत घबराये। बाद में इन्होने एक तरकीब निकाली। उन्होंने सुना था कि शिवाजी औरतों पर कभी वार नहीं करते। इसलिए नगर के बड़े बड़े धनिकों ने औरतों का वेश बनाया और बहुमूल्य गहने पहनकर दो दो तीन-तीन के गिरोह में नगर से निकल भागे।

कुछ मराठो को इनकी यह चलाकी मालूम हो गयी। उनमे कुछ लोग इन बनी हुई औरतो के गिरोह पर लपके। शिवाजी ने इन्हें रोकते हुए कहा—खबरदार औरतों पर हाथ मत उठाना।

"महाराज ये पुरुष हैं। औरत का वेश बनाकर भागे जा रहे हैं।" सैनिकों ने कहा।

"औरत बनने वाले तो औरतों से भी गिरे होते हैं। उन पर हाथ उठाना पुरुषों को क्या जानवरों को भी शोभा नहीं देता।" शिवाजी मुस्कराते हुए कहते रहे—"इन्हें जाने दो। इनके वेश का तो ख्याल रखो। भिखारी के रूप में आये रावण को सीता माता ने रक्षापंक्ति के बाहर आकर भिक्षा दी थी

किन्तु उसके वेश पर अविश्वास नहीं किया। यह हमारे यहाँ की परम्परा है। "ये भले ही पुरुष हों, पर इस समय तो औरत हैं, इन्हें छोड़ दो।"

करीब-करीब सभी धनी इसी प्रकार भागे। इतना होने पर भी करोड़ों रुपये की संपत्ति शिवाजी के हाथ लगी। चार हजार बैलो और गदहो पर लाद कर लूट का सामान शिवाजी ने भेजवाया।

००००००

जिस समय शिवाजी बरार तथा बगलाना में थे, उस समय उनका प्रसिद्ध पेशवा मोरे त्र्म्बक पिंगले खानदेश लूट रहा था। आगे बढ़कर उसने साल्हेर के किले पर घेरा डाला।

सूरत आदि स्थानो की हाहाकार और शिवाजी की जय जयकार औरंगजेब के कानों तक पहुँची! उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। मामूली पहाड़ी चूहा आज महलो की नींव हिलाता बढ़ा चला आ रहा है और मुगल सेना हार पर हार खाती चली जा रही है। लगता है खुदा को यही पसन्द है।" उसके ग्लानि तथा पश्चाताप की सीमा न रही। उसने महावतखाँ को दक्षिण का सेनापति नियुक्त किया। दाऊदखाँ को उसका सहायक बनाया। इसके अतिरिक्त अमरसिंह चन्द्रावत के साथ एक शक्तिशाली राजपूती सेना भी भेजी। जनवरी में शाहजादा मुअज्जम के यहाँ महावतखाँ, यशवन्तसिंह दाऊदखाँ आदि सभी प्रमुख अधिकारी औरंगाबाद में एकत्र हुए।

दो शेर एक जंगल में रह नहीं सकते तब इतने बहादुर एक साथ कैसे रहते। दाऊदखाँ और महावतखाँ ही आपस में जरा सी बात के लिए लड़ गये। द्वेष ने एक दूसरे को बहुत दूर कर दिया। प्रत्येक दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करता रहा। इस बीच मराठों ने साल्हेर ले लिया। किन्तु दाउदखाँ ने शीघ्र ही मराठों से अहिवन्तगढ़ छीनकर बदला लिया।

दाऊद की इस विजय ने महावत को डाह से पागल बना दिया, किन्तु अब कुछ सोचना व्यर्थ था। आकाश में मानसून मंडराने लगा। वर्षा में लड़ाई

बन्द हो गयी। मुगल सैनिक अधिकारियो के खेमें में अब तलवारों की झन झना-हट के स्थान पर पायलों की रुन झुन सुनायी पड़ने लगी। नाँच और गाना होता था, वर्षा की बहार ली जाती थी। पंजाब और अफगानिस्तान की ४ सौ नर्तकियों की एक समूची सेना ही खेमें में थी,[1] जो देश जीतने के लिए नहीं, इन मुगल सैनिको का दिल जीतने के लिए रखी गयी थी। इन सैनिको को अब अनुभव हो रहा था कि जीवन का वास्तविक आनन्द कहाँ है? युद्ध में मारने और मरने में, या सावन की हलकी फुआर के बीच इस मधुर मधुर प्यार में।

दिन बीतते गये। अक्टूबर का महीना आया। महावतखाँ की वासना तथा विलासत की कहानी औरंगजेब के कानों तक पहुँची। वह इसे कब सह सकता था। नाँच और गाने से उसे सख्त नफरत थी। उसने महावत को दखन से बुलाया तथा दिलेरखाँ और बहादुरखाँ को साल्हेर जीतने की जिम्मेदारी का काम सौंपते हुए लिखा—"मुसलमान का आदर्श कुरान है। कुरान में जिन चीजो से नफरत की गयी है, हर मुसलमान को उससे नफरत करनी चाहिए। विलासता एक मीठा जहर है और इस जहर को महावतखाँ ने पीना शुरू किया था—मौज और मस्ती के लिए। किन्तु क्या मौज और मस्ती से लड़ाई जीती जा सकती है? दुनियाँ में नाम कमाया जा सकता है?...मुझे आशा है कि तुम्हारे ऐसे बहादुर कुरान के पवित्र आयतो का अवश्य ख्याल करेंगे और लड़ाई में कामयाबी हासिल करेंगे।"

पत्र मिलते ही दोनों सरदारों ने इखलासखाँ मियाना, अमरसिंह चंद्रावत तथा अन्य कर्मचारियो को तुरन्त साल्हेर भेजा और स्वयं पूना जिले में आक्रमण के लिए चल पड़े। दिलेरखाँ की दिलेरी से एक बार पूना पुनः मुगलों के हाथ में आया। कहते है नौ वर्ष से छोटे बालको को छोड़कर सबकी हत्या कर डाली गयी। इस अमानुषिक हत्याकाण्ड के एक ही महीने बाद मुगलों ने पुनः मुँह की खायी।

दिसम्बर में दिलेरखाँ और बहादुरखाँ साल्हेर की ओर आये। निकट के

---

1. Sardesai's New History Of The Marathas P. 196

गाँवों को इन्होंने जला दिया। अनेक हत्याएँ हुई। करीब एक महीना तक साल्हेर का रक्तपात होता रहा। दोनो ओर के अनेक सैनिकों की जाने गयीं। फरवरी के पहले सप्ताह में पेशवा मोरो पंत ने मुगलो के दाँत खट्टे कर दिये और उन्हें हार मानकर भाग जाना पड़ा। साल्हेर और मुधेल पर मराठो का एक छत्र राज्य हो गया।

इखलासखाँ के अतिरिक्त ३० बड़े बड़े कर्मचारी घायल हुए। १० हजार से अधिक की जाने गयी।मराठो को ६ हजार घोड़े, बहुत से ऊँट और १२० हाथी मिले। इन्हीं पर लूट का सामान भेजा गया। उस समय के एक कवि ने मराठों की इस विजय का वर्णन किया है।

पुण्याच्या कण्या गर्जताती शिवाजी
तिथे नादतो पेशव्या मर्द गाजी
जशी मर्जिली कौरवें पांडवने
तशी मारिली मोगलें पेशव्याने।[1]

इस लडाई मे प्रतापराव और आनन्दराव ने भी अच्छा पराक्रम दिखाया था। यह लड़ाई मराठा इतिहास में पहली थी, जिसमें उन्होने शत्रुका खुल्लम खुल्ला सामना किया था। अबतक वे लड़ाई में गोरिल्ला युद्ध नीति का ही सहारा लेते थे।

साल्हेर की विजय के समाचार से शिवाजी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होने समाचार लाने वाले को सोने के अलंकार उपहार में दिये। गरीबो और ब्राह्मणो को मिठाइयाँ बाँटी गयीं।

इसके बाद पंगेरा में भी मराठों की शानदार विजय हुई। दिलेरखाँ इस

---

1 Sabhasad Bakhar p. 63

**"निर्भय पेशवा द्वारा शिवाजी के नाम की गर्जना की प्रतिध्वनि पूना की घाटियों में गूँजती है। पेशावा ने मुगलों को वैसे ही काट डाला जैसे अर्जुन ने कौरवों को काट डाला था।"**

किले पर बहुत बड़ी सेना लेकर आया था। किलेदार रामाजी के पास केवल ६००. सैनिक थे। तूफान सी बढ़ती सेना के सामने इनका अस्तित्व ही क्या। फिर भी ये जमकर लड़े। करीब करीब सभी घायल हो चले थे। 'लेकिन मृत्यु के पूर्व हटना नहीं होगा' जैसे इनकी प्रतिज्ञा थी। और इसी प्रतिज्ञा के बलपर उन्होंने शत्रु को भगा दिया।

अपनी इन बड़ी हारों की सूचना पाकर औरंगजेब बहुत बिगड़ा। उसने दिलेरखाँ को लिखा—हारकर अपने मालिक का अपमान करने के पहले लड़ाई में मर क्यों नहीं गये। ऐसा अपमान पूर्ण समाचार सुनाने के लिए तुम जिन्दा हो, मुझे आश्चर्य है। तुम जानते हो कि आदिलशाह, पुर्तगाली अधिकारी सिद्दी आदि सभी हमारा साथ देने के लिए तैयार थे। यदि तुम उन्हें मिलाकर चारो ओर से शिवाजी को घेर लेते तो आज वह तुम्हारा तलुआ चाटता दिखायी देता। लेकिन तुमने ऐसा नही किया। क्यों? क्योकि तुम्हारे भाग्य में विजय नहीं लिखी है और हमें भी अपनी ज़िन्दगी बेइज्जत होकर बितानी है।

पत्र देखते ही बहादुरखाँ और दिलेर दोनों जल उठे। जान को हथेली पर लेकर काम किया जाय और फिर भी ऐसी उलाहना। यह उन्हें सह्य नहीं था। उन्होंने शीघ्र ही इस पत्र का छोटा सा जवाब लिखा—"बादशाह सलामत, जिन्दाबाद। मुझे अपने और शिवाजी के विषय में कुछ नहीं कहना है। अब बस इतना याद रखिए कि यह वही शिवाजी है, जो आगरे में आपके कठिन पहरे से निकल भागा था, आप तथा आपकी सेना उसका कुछ बिगाड़ न सकी। ऐसे इन्सान को जीतना मौत को जीतना है, जहाँपनाह।"

जवाब इतना माकूल था कि औरंगजेब कुछ बोल न सका। मन में ही जल भुनकर रह गया। अब उसे विश्वास होने लगा था कि 'जैसे समुद्र का जल तौला नहीं जा सकता, जैसे मध्याह्न के तरुण रवि को देखा नहीं जा सकता, जैसे मुट्ठी में बन्द कोयला के टुकड़ों का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता, वैसे ही इस शिवाजी को भी जीता नहीं जा सकता।'[1]

---

[1] सरित्पतीचें जल मोजवेना। माध्यान्हिचा भास्कर पाहवेना।
मुष्टींत वैश्वानर बांधवेना। तैसा शिवाजी मज जिंकवेना।

अब शिवाजी की धाक और भी जम गयी। मराठों ने कोली देश के धरमपुर और जौहर पर अधिकार कर लिया। इस बीच सूरत के व्यापारियो को भी खूब डराया और धमकाया गया।

oooooo

पनहाले पर पुनः चढ़ाई करने की योजना बनी।

शिवाजी ने राजापुर में अपने बहादुर सिपाहियो और सैनिक अधिकारियों को एकत्र किया और कहा—वीरों अधिक महत्व के स्थान तथा किले अब आपके पराक्रम से हमारे अधिकार में है। किन्तु पनहाला अब तक हम पा न सके। अब हमें उसे अवश्य ले लेना है। मैने इसी महान कार्य के लिए आप सबको यहाँ बुलाया है। जितना शीघ्र हो आप उसके लिए प्रबन्ध करे।" इतना कह शिवाजी चुप हो गये। सैनिक मुँह में मुँह डालकर आपस में बात करने लगे। पनहाला की चढ़ाई के लिए सभी तैयार थे, पर यह कार्य-भार किस पर सौपा जाता है, लोग यही देख रहे थे। तब तक शिवाजी ने अन्नाजी दत्तो से कहा—"पनहाला लेने की महान जिम्मेदारी के कार्य का संचालन आप ही करें। यदि आवश्यकता समझे तो अपनी सहायता के लिए कोडाजी रावलेकर को भी ले लें।" "आपकी आज्ञा मुझे शीरोधार्य है महाराज, भगवती ऐसी शक्ति दे कि शीघ्र ही भगवा झन्डा पनहाले पर फहरा सकूं।" दत्तोजी ने अपनी स्वीकृत देते हुए कहा।

तैयारी होने लगी। ६ मार्च (सन् १६७३) की अँधेरी रात को कुछ सैनिक दत्तोजी के नेतृत्व में चल पड़े। फाल्गुन की शीतल मंद एवं सुगन्धित हवा बह रही थी। इस गहरे सन्नाटे में लोग समथल भूमि पार कर बिल्कुल खड़ी पहाड़ी की ओर पहुँचे। "हमें मुख्य मार्ग की ओर से ही आगे बढ़ना चाहिए।" इधर से ऊपर चढ़ना कठिन है। एक मराठा योद्धा बोला।

"हम यहाँ सरल कार्य करने नही आये हैं। मुख्य मार्ग से बढ़कर सफलता प्राप्त करना तो और भी कठिन है।" दत्तोजी बोले।

तब तक कोंडाजी रस्सी के सहारे खड़ी पहाड़ी पर ऊपर चढ़े। किला क्या था छोटी छोटी पहाड़ियों का समूह। ऊपर आने पर किले में कूद पड़ना आसान था। धीरे-धीरे तीस और सैनिक चढ़ आये। दत्तोजी अन्य सैनिकों को ले किले के गुप्त द्वार की ओर चले।

किले के भीतर पहुँच कर इन तीस सैनिको ने नगाड़े की आवाज के साथ शोर मचाना शुरू किया। किले के पहरेदारों के होश उड़ गये। चारो ओर पहरा पड़ रहा है, आखिर ये भीतर कैसे घुसे? जमीन से पैदा हुए या आकाश से बरस पड़े? पहरेदारो को आश्चर्य था। वह कुछ समझ नही सके।

कुछ सैनिकों ने बढ़कर गुप्त द्वार खोल दिया। तुमुल कोलाहल करती सेना दत्तोजी के साथ किले में घुसी। इधर कोडाजी किलेदार बाबूखाॅ के निवास स्थान पर पहुँच चुके थे। वे उसके शयन कक्ष में घुसे। खाॅ अब भी सो रहा था। दरवाजे पर पहुँचते वह तड़पा—"खाॅ यह सोने का समय नही है। एक बार उठो और फिर सदा के लिए सो जाओ।"

खाँ की आँखें खुली। सामने भयानक अट्टहास करती मौत खडी थी। अल्लाह यह क्या? सपना तो नहीं है? इसके पहले कि वह कुछ सोचे उसके तन के दो टुकड़े हो गये।

दत्तोजी ने भी किले के अन्य अफसरो एवं सैनिकों को पीटना शुरू किया। सभी लैम्प बुझा दिये गये कोलाहल कितना भयानक था। औरतें और बच्चे चीख रहे थे। बाबूखाँ के सहायक नागोजी पंडित ने जब जीवन रक्षा असम्भव समझी, तब वह सब कुछ छोड़कर पहाड़ियों में भागा। उसके पास एक तलवार भी नहीं थी। जीवन का मोह उसे अरण्य के सूने हृदय में ले गया।

देखते देखते सबेरा हुआ। उषा की सुनहली किरणों ने पनहाला पर लहराते भगवा झंडा का स्पर्श किया। मराठे बसंत की मुस्कराहट के साथ मुस्करा पड़े।

शिवाजी को विजय का समाचार मिला। प्रसन्नता की एक नयी लहर उनके तन मन में दौड़ गयी। 'शाबाश, दत्तोजी तुमने तानाजी से' कम कमाल नहीं

किया।' उनका मन बोल उठा। वे उसी समय पनहाला के लिए चल पड़े।
यहाँ एक महीने रहकर उन्होंने किले की मरम्मत करायी। चारो ओर की दीवारों की मरम्मत की गयी। अनेक तोपें लगायी और इसे अपना अजेय दुर्ग बनाया। इसके बाद पारली और सतरा के किलों पर भी उसका अधिकार हुआ।

०००००० 

"यह सब खवासखाँ की बेखबरी का नतीजा है। पनहाला चला गया। पारली तथा सतरा के किले भी उसके हाथ लगे। अब हमारे पास रहा क्या? अब तक हमारा वजीर सोता रहा, बड़े शर्म की बात है।" बीजापुरी दरबार का हर दरबारी खवासखाँ को इस पराजय के बाद कोसता रहा। अन्त में बहलोलखाँ को पनहाला लेने का कार्य सौंपा गया और प्रदेश में बिखरे अन्य सेनापतियों को शीघ्र ही उसकी सहायता करने के लिए सुलतान की ओर से पत्र भेजा गया।

इधर तैयारी शुरू हुई। उधर गुप्तचर ने शिवाजी को बहलोल के आक्रमण की सूचना दी। उन्होंने तुरन्त सेनापति प्रतापराव को बुलाकर कहा—"देखो, आज रात पश्चिम में बीजापुर नगर की ओर चुपचाप बढ़ जाओ। बहलोल उधर से ही आक्रमण करने आयेगा, उसे मार्ग मे ही घेर लो।"

आज्ञा की ही देर थी, सेना का प्रयाण हो गया। बीजापुर से १५ मील की दूरी पर उमराणी गाँव में बहलोल पड़ाव डाले पड़ा था। प्रतापराव ने उसे चारो ओर से घेर लिया, किन्तु लड़ाई नहीं हुई। रात हो गयी थी। थके थे। सैनिकों ने विश्राम किया।

सबेरा होते ही मराठे चारो ओर से अफगान फौज पर टूटे। दिन भर लड़ाई हुई। पानी लाने के सभी मार्ग बन्द कर दिये गये। अफगान अब प्यासे मरने लगे। एक एक बूँद पानी को तरस गये।

उसी रात को बहलोल का व्यक्तिगत सहायक प्रतापराव के खेमें में पहुँचा। राव अभी सोया नहीं था। दीपक की काँपती ज्योति जल रही थी। लागत है

कि पहिले से ही उसने अनुमति ले ली थी। आते ही उसे बैठने के लिए राव ने उचित स्थान दिया और इशारे से पूछा—कहो कैसे चले ? मुहरों से भरी थैली आगन्तुक ने आगे रखकर कहा—"वीरवर, खाँ साहब ने आपको यह नजर भेंट की है।" मुस्कराते हुए राव ने थैली हाथ से उठायी। उसका मन बोल उठा—बाप रे बाप इतना धन। इतने में आगन्तुक पुनः बोला—"उनका कहना है कि क्यों बेकसूर आप हम सबको मारे डाल रहे हैं ? इससे आपका व्यक्तिगत क्या लाभ। यदि कहीं से आप हम लोगो को लौट जाने देते; तो बड़ी कृपा होती। हम सब यहाँ से केवल अपनी जान लेकर ही जाना चाहते हैं। खेमें में हमारी सारी चीजें पड़ी रहेगी, वह सब आप ले लीजिएगा।"

ऐसा ही हुआ। घेरा कुछ ढीला पड़ा और उसी रात को बहलोल अपनी समूची सेना के साथ सकुशल निकल भागा।

oooooo

शिवाजी ने १० अक्टूबर को कन्नड़ प्रदेश पर चढ़ाई की थी। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली, बहलोल ने उन्हें लौटने के लिए विवश किया। इसी बीच प्रतापराव के विश्वासघात का उड़ता समाचार उन्हें मिला। अब वह अपने को रोक न सके, तुरन्त प्रतापराव को बुलवाया।

"कहिए आपने तो बड़ी बहादुरी दिखायी।' प्रतापराव चुप था। चोर का जी आधा। वह व्यंग्य समझ गया। अब जैसे शिवाजी का क्रोध और भभका, "जानते हो राव विश्वासघात की सजा मौत से कम और कुछ नहीं होती। तुम्हारे भाइयों ने अपनी शान और धरती माता के मान के लिए मरते दम तक झुकना जैसे जाना ही नहीं और तुम थोड़े से धन के लिए अपने सम्मान को खो बैठे। हमें भूल गये, चीखती धरती की आवाज भूल गये। लानत है तुम्हारी जिन्दगी पर। अपने मुँह पर कालिख लगाकर कहीं चले जाओ, पर मराठा जाति पर कालिख न लगाओ।"

प्रतापराव को अब मालूम हो गया कि शिवाजी ने सब कुछ जान लिया।

वह कहता क्या ? मारे डर के काँपने लगा। आत्मग्लानि की धारा में उसका साहस जैसे बह गया। शिवाजी ने पुनः गरजते हुए कहा--'मेरी आँखों के सामने से अभी ही हट जाओ। बहलोल को हरा कर आओ; वर्ना कभी मुँह मत दिखाना।'

प्रतापराव का ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ था। उसे अत्यन्त दुख हुआ। ग्लानि में वह डुबा था। पश्चाताप वह अग्नि है जो जीवन की मधुर से मधुर कल्पना को जलाकर भस्म कर देती है और जिसके धूएँ में विवेक जैसे छिप सा जाता है।

राव भी अब विवेक खो बैठा था। वह बहलोल की खोज में कोल्हापुर से ४५ मील दक्षिण तक जा पहुँचा। नेसरी गाँव में उसका सामना हुआ। राव पागलों की भाति बिना दायें-बायें देखे आगे बढ़ा। आनन्दराव ने उसे रोका। यह आक्रमण का मौका नहीं है। पर वह भला कब रुकने वाला था। डान किकज़ोड की भाति नंगी तलवार लेकर बहलोल पर टूट पड़ा। इस मूर्खता का साथ देने वाले केवल छह सिपाही थे। बाकी सब आनन्दराव की आज्ञा मान कर रुक गये।

प्रतापराव और उसके छह साथी उसी समय मारे गये। बहलोल मराठी सेना पर विजय के उल्लास में टूट पड़ा। जीती हुई सेना और घायल सांप का मुकाबला करना सरल नहीं। मराठों की हिम्मत पस्त हो गयी। फिर भी आनन्द-राव ने तगड़ी ललकार लगायी, "बहादुरों, यदि दुश्मन को न हरा सको तो जीते जी मत लौटना। लड़ाई में एक नया जोश आया। इधर आनन्द ४५ मील प्रति घन्टे की गति से आगे बढ़ा। दिलेर और बहलोल दोनो ने उसका पीछा किया, पर व्यर्थ हुआ।

कन्नड़ में पहुँच कर साँप गाँव का बाजार मराठों ने लूटा। बहलोलखाँ एवं खिजिरखाँ से बंकापुर में फिर सामना हुआ। बीजापुरी सेना का एक दल हारा। बहुत से घोड़े हाथी और धन लेकर मराठे सकुशल लौट आये।

इन दिनो जाड़े की अधिक वर्षा के कारण महाराष्ट्र में अकाल पड़ा; महामारी

फैली। लड़ाइयाँ बन्द हो गयी। केवल लूट खसोट का ही बाजार गरम था। उत्तर में औरंगजेब भी अफ़रीदियों के विद्रोह में फंसा रहा।

०००००००

सन् १६७३ मे सतरा के परली दुर्ग का पुनः निर्माण अब शुरू हुआ। शिवाजी ने अपने गुरु स्वामी रामदास के लिए यहाँ पर एक आश्रम और कई मठ तथा मन्दिर बनवाये। साधुओ के भरण पोषण के लिए निकट के गाँवो की आमदनी निश्चित कर दी गयी। खूब अच्छी तरह साधु सन्त रहने लगे।

किसी को किसी बात की चिन्ता नहीं थी, फिर भी रामदास जी प्रातःकाल पूजा पाठ तथा योगाभ्यास के उपरान्त भिक्षाटन के लिए निकल जाते और सन्ध्या तक झोली भर कर चले आते। शिवाजी को आश्चर्य था। गुरुजी को आखिर किस बात की कमी है। वे रोज भिक्षा क्यो मागते है? शिवाजी हैरान थे।

एक दिन सन्ध्या को शिवाजी अपने गुरु से मिले। भिक्षा मागकर वे अभी अभी लौटे थे। चरण छूकर बैठ गये। कुछ कहने की हिम्मत न हुई। क्या किया जाय कि गुरुजी के मन की तृष्णा समाप्त हो। वे सोचने लगे। गुरुजी चुपचाप बैठे थे। उनके अँधरों के बीच से हँसी झांकती थी। 'क्यों शिवा कैसे चले,' उन्होंने धीरे से पूछा। 'यो ही महाराज दर्शन के हेतु चला आया। शिवाजी ने कहा।

कुछ समय के बाद शिवाजी वहाँ से उठे और गढ़ के अध्यक्ष के पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक दान पत्र लिखवाया। उसपर अपनी मुहर लगायी। दान पत्र मे पूरा राज्य गुरुजी के चरणो में अर्पित कर दिया गया था।

वे पुनः गुरुजी के पास आये और काँपते हाथों से दान पत्र उनकी झोली में छोड़ दिया।' क्या रख रहे हो, शिवा।' गुरुजी ने पूछी।

"भिक्षा की झोली में भीख के अतिरिक्त और क्या रखूँगा।" शिवाजी ने कहा।

"मुझे तुम भीख दे रहे हो?" गुरुजी को आश्चर्य नहीं था, पर वे समझ गये कि इसे अब कुछ अभिमान हो चला है। वे जोर से हँसे। यह हँसी शिवाजी के लिए रहस्यमय और अबूझ थी। फिर गुरुजी ने गम्भीर स्वर में कहा—"अच्छा झोली की भी भिक्षा बाहर निकालो।"

शिवाजी ने पहले दान-पत्र निकालकर गुरुजी के सामने रखा। वे पढ़कर मुस्कराने लगे। फिर और सामान निकालने लगे। एक के बाद एक सामान निकलता गया। घन्टों हो गया, पर झोली खाली न हुई। अब शिवाजी को अपने अज्ञान का भान हुआ। वे गुरुजी के चरणों पर गिर पड़े। चरण स्पर्श करते ही अभिमान जैसे उड़ गया।

गुरुजी मुस्कराते हुए बोले, "अब तो तुमने सारा राज्य हमें दे दिया। तुम हमारे केवल गुमास्ता रहे। राज्य तुम्हारे भोग विलास तथा मानमानी की चीज नहीं रहा। खबरदार, कभी अत्याचार मत करना। तुम्हारे ऊपर एक बड़ा मालिक है।"

शिवाजी ने मस्तक झुकाकर गुरुजी की आज्ञा स्वीकार की।

---

१२

# राज्याभिषेक

इतना विशाल भूखण्ड, शक्तिशाली जल सेनाएँ और सम्मान प्राप्त करने के बाद भी शिवाजी अब तक बीजापुर की देशद्रोही प्रजा मात्र थे। मोरे, यादव, निम्बालकर ऐसे पुराने राज घराने के लोग भी उन्हें मामूली जागीदार का पुत्र ही समझते थे। शिवाजी की प्रजा के सामने भी बहुत बड़ी कठिनाई थी। वह अपना लगान किसे दे, शिवाजी को या बीजापुर के सुलतान को? नियमानुसार शिवाजी राजा थे नहीं, इसलिए उनकी सनद और भूमिदान का आज्ञा पत्र आदि भी बिल्कुल बेकार सा था। इस स्थिति को जीजाबाई अच्छी तरह समझती थीं। उन्होंने एक दिन प्रतापगढ़ में शिवाजी को बुलाया।

आज्ञा पाते ही वे उपस्थित हुए। माताजी बोली, "शिवा, अब तू राज-छत्र धारण कर। भवानी की कृपा से प्रजा के हृदय के सिंहासन पर तो तू अब विराजमान हो चुका है, पर राज सिंहासन पर बैठे बिना सुशासन सम्भव नही।" शिवाजी को लगा जैसे भवानी साक्षात बोल रही हैं।

माता ने सदा शिवाजी पर नियन्त्रण रखा था। इस समय भी वे जीवके न प्रशस्त मोड़ की ओर संकेत कर रही थीं। शिवाजी कुछ सोचते रहे। फिर वे बोले—माताजी, मैंने तो सारा राज गुरुजी के चरणों में अर्पित कर दिया। अब मै राज छत्र धारण करने का अधिकारी नही रहा।"

"किन्तु जो चीज तुम्हारी नहीं थी। तुम उसे दे कैसे सकते थे? अब तक

तुम राज्य के उतने ही अधिकारी रहे हो जितना एक साधारण सैनिक।" शिवाजी चुप थे। तर्क विलक्षण था। क्या एक साधारण सैनिक से अधिक मेरा प्रयत्न नहीं? क्या मेरा सारा उद्योग मामूली सैनिक के बराबर ही रहा है? प्रश्न शिवाजी के मन में उठा, पर वह वाणी से व्यक्त न हो सका। उनकी मूक आँखों में प्रश्न वाचक चिह्न अवश्य था।

जीजाबाई ने अपने पुत्र की मनस्थिति समझ ली। वे पुनः बोलीं, "मातृ-भूमि की स्वतंत्रता के लिए किये गये अपने प्रयत्न का यदि साधारण सिपाही के प्रयत्न से तुलना करोगे तो अवश्य अपने को ऊँचा पाओगे, पर ऐसी तुलना व्यर्थ है। प्रयत्न तो विचारों का परिणाम होता है। कोई जरूरी नहीं है कि सबका परिणाम समान ही हो। देश की सेवा में जो हजारों मर गये और जो मरने के लिए तैयार हैं मातृभूमि के प्रति उनका प्रेम तुम्हारे प्रेम से किसी प्रकार कम नहीं। इसलिए इस राज पर जितना तुम्हारा अधिकार है, उतना उन सबका है जिन्होंने अपनी बलि दी है या बलिदान के लिए तत्पर हैं।" जीजा-बाई का स्वर बादलों सा गम्भीर था।

"लेकिन मां, मैंने अपनी ही ओर से नहीं बल्कि सभी मराठों की ओर से गुरुजी के चरणों में राज्य समर्पित किया था।" शिवाजी बोले।

"......और यह तुम्हारी अनधिकार चेष्टा थी। तुमने काम तो अच्छा किया, पर यह पवित्र कार्य करने के केवल तुम्हीं अधिकारी नहीं थे।" अब शिवाजी के पास कोई उत्तर नहीं था। माताजी कुछ सोचकर पुनः बोली, "अच्छी बात है आज सन्ध्या को हमें गुरुजी से अवश्य मिलना चाहिए। उसी दिन शाम को दोनों सज्जन गढ़ गये।

भिक्षा मांग कर अभी अभी स्वामीजी आये थे। दोनों ने उनका चरण स्पर्श किया। आशीर्वाद देकर माता पुत्र को साथ देख, मुस्कराते हुए वे बोले—कैसे चले इधर?

"एक राय लेने आयी हूँ महाराज।" जीजाबाई बोलीं। गुरुजी ने प्रश्न पूछने के लिए मुस्कराते हुए संकेत किया। जीजाबाई पुनः बोली—जब तक मराठों का

राज्य नहीं हो जाता तब तक हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा। मैं सोचती हूँ कि शिवा का राज्याभिषेक कर देना चाहिए।"

"सो तो ठीक है। किन्तु, राज्याभिषेक की आवश्यकता क्या? शिवा तो यो ही राजा है।...तुम्हे मालूम नही माँ, महाराष्ट्र के राजा छत्रपति शिवाजी ने अपना सारा राज्य मुझे दे दिया है।" इतना कहकर वह जोर से हँसे। इनकी हँसी में जीजाबाई की भी हँसी मिल गयी। शिवाजी मारे शर्म के जैसे गड़े जारहे थे। इस तिक्त व्यग्य ने उनके हृदय मे रहे सहे अभिमान को भस्म कर दिया।

पुनः गुरुजी ने कहा, "राज्याभिषेक अवश्य हो जान चाहिए। भिक्षाटन के समय प्रजा की परेशानियो का हमें भी अनुभव हो जाता है। बिना हिन्दू राज्य की स्थापना के वे दूर नहीं हो सकती।"

जीजाबाई मन के अनुकूल आज्ञा पाकर बडी प्रसन्न हुई।

००००००

'शिवाजी राजछत्र धारण करने वाले हैं।' यह चर्चा धीरे-धीरे पूरे महाराष्ट्र में फैल गयी। अधिकाश लोग इस समाचार से प्रसन्न ही थे, किन्तु कुछ ब्राह्मणो को यह कार्य ठीक नही लगा। उन्होंने शिवाजी के राज्याभिषेक का विरोध करते हुए कहा कि हिन्दू धर्म के अनुसार क्षत्रिय ही राजसिहासन का अधिकारी है। शिवाजी शूद्र है।[1] वह राजछत्र एव राजसिंहासन के अधिकरी नहीं है। यह एक भयकर समस्या खडी हो गयी।

वस्तुतः भोसलों के पूर्वज उदयपुर के क्षत्रिय राजा थे। पर जिद्दी ब्राह्मणो ने उसे स्वीकार नहीं किया। इधर समर्थ गुरु रामदासजी ने कर्म की प्रधानता पर जोर देते हुए शिवजी को क्षत्रिय स्वीकार किया। पण्डितों से उनका शास्त्रार्थ भी हुआ। उन्होंने कहा—मनुष्य की जाति उसके कर्म के अनुसार होती है।

---

१. उन दिनों भोसला वश की गिनती शुद्र में ही होती थी।

ब्राह्मण के गर्भ से पैदा होकर भी शूद्र का कार्य करने वाला शूद्र है और शूद्र का पुत्र भी अच्छे कर्म करके ब्राह्मण बन सकता है ।"

"तो क्या आप शास्त्रों की मर्यादा पर अपनी बुद्धि की छाप लगाना चाहते है ?"

अपनी ही बुद्धि की नहीं, आप सबके बुद्धि की छाप लगाना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि विवेक की आँखो से आप अपने शास्त्रों का अवलोकन करें । क्या ब्राह्मण की दुराचारी एवं लंपट सन्तान को भी आप ब्राह्मण कहेंगे । मेरा विचार है कि ऐसे को ब्राह्मण होना नहीं चाहिए ।"

"आप अपना विचार ऐसों को पैदा होने के पहले ही सुना दिया करें ।" ब्राह्मणों का समूह इस व्यंग्य पर जोर से हँसा । पर ऐसे हास्य की गुरुजी परवाह करने वाले नहीं थे । वे तर्क पर तर्क देते गये, पर काम बनता नजर नहीं आया ।

पर सभी ब्राह्मण ऐसे नहीं थे । कुछ चाहते थे कि शिवाजी का राज्याभिषेक हो । उनका एक शिष्ट मंगल—जिनमें केशव भट्ट पुरोहित, बालाचन्द भट्ट सोमनाथ भट्ट थे—उदयपुर तथा अन्य स्थानों पर गया, जहाँ क्षत्रियों के प्राचीन वंश थे । इस शिष्टमंडल के संयोजक बालाजी आवजी थे । सभी स्थानों में लोगो ने स्वीकार किया कि भोसला वंश के लोग राजस्थान के प्राचीन क्षत्रिय हैं ।

इस अवसर पर काशी के विख्यात पंडित विश्वेश्वर भट्ट से, जो गागा भट्ट के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे, भी व्यवस्था ली गयी । उन्होंने बहुत सोच-समझ कर व्यवस्था दी कि शिवाजी के आदि पुरुष चित्तौर के सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे । अतएव ये राजसिंहासन के उचित अधिकारी हैं ।[1]

गागा भट्ट दिग्विजयी विद्वान् थे । उनके समान पंडित उस समय भारतवर्ष

---

1. यदुनाथ सरकार का कहना है कि गागा भट्ट को बहुत सा धन घूस में देकर ऐसी व्यवस्था ली गयी थी ।

में न था। उनकी व्यवस्था के आगे किसी की हिम्मत न थी कि कुछ बोल सके। लाचार महाराष्ट्र के सभी ब्राह्मणों को उन्हें क्षत्रिय मानना पड़ा।

००००००

कई महीने तक अभिषेक की तैयारी होती रही। दूर-दूर के लोग आमन्त्रित किये गये। भारत के कोने से पंडित और विद्वान् आने लगे। करीब ग्यारह हजार ऐसे ब्राह्मण और विद्वान् थे जो अपनी स्त्री और बच्चों के साथ आये थे। रायगढ़ चखाखच भरा था। चार महीने तक मिठाई और पकवान की भरमार थी।

पूरी तैयारी हो जाने के बाद शिवाजी गुरु और, माता का आशीर्वाद ले अपने देवी देवताओं की पूजा के लिए निकले। पहले चियलूण में जाकर परशुराम की पूजा की। ब्राह्मणों और गरीबों को खूब दान दिया। इसके बाद प्रतापगढ़ में अपनी इष्टदेवी के मन्दिर में आये। यहाँ उन्होंने भवानी को सवा मन सोने का छत्र चढ़ाया, जिसका मूल्य ५६००० रुपया था। अत्यन्त विश्वास और प्रेम से कई दिनों तक पूजाकर वे २१ मई को रायगढ़ लौटे।

२८ मई को उनके शुद्धि का उत्सव प्रारम्भ हुआ। हजारों वर्षों से उनके पुरखे शूद्र समझे जाते रहे हैं। इसलिए प्रायश्चित आवश्यक था।

प्रातःकाल से ही उत्सव आरम्भ हुआ। देवताओं की पूजा के बाद शिवाजी का उपनयन संस्कार किया गया। रायगढ़ अच्छी तरह से सजाया गया था। चारो ओर उल्लास की नयी लहर-सी थी। सभी प्रसन्न थे। माता जीजाबाई अत्यन्त प्रसन्न दिखायी दे रही थीं। पास ही गुरुजी भी ऊँचे सिंहासन पर विराजमान थे। हजारों पण्डित पंक्ति में बैठे थे। वेद ध्वनि में सबका मिला जुला स्वर अत्यन्त आकर्षक था।

जनेऊ धारण कर लेने के बाद शिवाजी प्रसन्न हो बोले, "अब मैं द्विज होगया हूँ। द्विज को वेद पढ़ने का अधिकार है। अतएव हमारे सारे कार्यों में वैदिक मंत्रों का ही प्रयोग होना चाहिए।" सुनते ही सभी ब्राह्मण एक साथ

ही विरोध कर उठे। कलियुग में क्षत्रियों को द्विज कहलाने का अधिकार नहीं है। ब्राह्मणों के अतिरिक्त कोई दूसरा द्विज नहीं कहला सकता।" बात बढ़ती ही गयी। आनन्द और उल्लास एक विचित्र हो हल्ला में खो गया।

ब्राह्मणों ने सोचा कि यदि शिवाजी का अभिषेक नहीं होता तो दान दक्षिणा नहीं मिलेगी। गहरी रकम से हाथ धोना पड़ेगा। खुद गगा भट्ट को इसकी बड़ी चिन्ता थी। तीसरे पहर प्रमुख पण्डितों की सभा बैठी और निश्चय हुआ कि अभिषेक अवश्य होना चाहिए, किन्तु वैदिक मंत्र के द्वारा नहीं। किसी प्रकार लोगों ने शिवाजी को भी राजी कर लिया। उस समय तो बात टल गयी।

संस्कार समाप्त हो गया। मुख्य अध्वर्यु भट्ट को पैतिस हजार रुपया दान में मिला। अन्य ब्राह्मणो में २५ हजार रुपया बाटा गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल तुला दान की व्यवस्था हुई। शिवाजी सोने चाँदी तथा अन्य वस्तुओं से तौले गये। १६०००हून[1] उनका वजन था। इतने वजन का बहुमूल्य सामान गरीबों और ब्राह्मणों को दिया गया। अब जैसे शिवाजी के पापों का मोचन हो चला। पर इतना ही काफी नहीं था। आक्रमण और लूट के समय अनेक निरीह बालक स्त्रियाँ निरपराध व्यक्ति जान और अनजान में मारे गये थे, इसके प्रायश्चित के लिए करीब आठ हजार रुपये का और दान हुआ।

००००००

आज ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी है।

प्रात:काल से ही रायगढ़ विहँस रहा है। एक उल्लासमय कोलाहल है। आज राज्याभिषेक का शुभ दिन है। घर घर मंगल गीत गाये जा रहे हैं। पूरा वातावरण मुखरित है जैसे धरती बोल उठी है। आज बहुत तड़के ही शिवाजी सोकर उठे हैं। स्नान कर भवानी और भगवान शंकर की पूजा पर बैठ गये। घन्टों पूजा चलती रही। पूजा से निवृत्त होते ही उन्होंने कुल गुरु बालभ भट्ट, राजपुरोहित गागा भट्ट आदि का चरण स्पर्श किया और आशिवाद लिया।

---

१. ( हून = $\frac{7}{8}$ तोला )

अब अभिषेक के मुख्य उत्सवों का समय आया। शिवाजी को श्वेत वस्त्र तथा अलंकारों से विभूषित किया गया। मस्तक पर शुभ्र चन्दन का लेप था कितना भव्य व्यक्तित्व था। अब वे अभिषेक स्नान की ओर चले। साथ में सहधर्मिणी महारानी सोमराबाई थी। उनकी आचल से शिवाजी के दुपट्टे की छोर बँधी थी। पीछे शम्भूजी था।

स्नान गृह में सात बड़ी नदियों, सात तीर्थों तथा सात समुद्रो का जल इकट्ठा किया गया था यहाँ पर शिवाजी पत्नी के साथ दो फीट वर्गाकार सोने की चौकी पर बैठे। आठो कोने पर आठ अष्ट प्रधान खड़े हुए। उनके सामने बहुमूल्य घड़ों में जल था। चौकी के पीछे शम्भूजी खड़े थे।

ठीक मुहूर्त पर लोगो ने शिवाजी पर जल छोड़ा। मंत्रोच्चरण शुरू हुआ। हजारों ब्राह्मणों के मिश्रित स्वर से आकाश गूँज उठा। सधवाओं के मधुर कंठ ने मंगल गीत गाये। इसके बाद सोलह सधवा ब्राह्मणियों ने सोने की थाल में पंच प्रदीप लेकर आरती उतारी। और फिर पुष्पो की वर्षा हुई।

अब गीले वस्त्र बदलकर शिवाजी तथा महारानी ने बहुमूल्य कामदार वस्त्र तथा सिर पर झालरदार पगड़ी पहनी। मणि और मोतियों से युक्त अलंकार धारण किये। पगड़ी से मणियां झूल रही थीं। अब अस्त्र पूजन की बारी आयी। पहले तीर धनुष ढाल आदि प्राचीन अस्त्रो की पूजा हुई बाद में उस समय के प्रचलित अस्त्र पूजे गये।

अब लोग सजे सजाये राजसिंहासन की ओर चले। राज द्वार पर आम्र पल्लवों से ढके दो स्वर्ण कलश थे। द्वार के दोनों ओर हाथी तथा घोड़े के एक एक सुन्दर बच्चे खड़े थे। इनका साज सोने का था, जिसमें जवाहिरात जगमगा रहे थे। भीतर घुसते ही आँखें जैसे चकाचौंध हो जाती थीं। जरी का चंदवा टंगा था जिसमें मोती टंके थे। फर्श पर लाल मखमल बिछा था, मानों बहुत सी वीर बहुटियाँ एक साथ आकर मिल गयी हो, या प्रातःकालीन बाल रवि की अरुण किरणों से आच्छादित आकाश का टुकड़ा ही बिछा दिया गया हो। बीच में बहुत बड़ा सोने का सिंहासन था। जिसमें जड़े मणियों की शोभा

ऐसी थी मानो पीले आकाश में रंगीन तारे झिल मिला रहे हैं। सिहासन के आठों कोने पर आठ मणि स्तंभ थे, जिनसे चदवाँ बाँधा गया था। जगह जगह मणियो के गुच्छे लटक रहे थे। सिहासन की गद्दी बाघाम्बर की थी। उस पर मखमल बिछी थी, ऊपर राजछत्र था।[1] इसके अतिरिक्त अनेक राजचिह्न सोने के भालों में लटका कर रखे गये थे। जिसमे मुगलो का शाही चिह्न दो बड़ी मछलियों के सिर, तुर्की राजचिह्न घोड़े के पूँछ का चवर तथा ईरान का राज चिह्न एक बड़ा मानदण्ड विशेष दर्शनीय था।

केवल मुहूर्त्त की देर थी। माता, गुरु, कुल गुरु और पुरोहित का चरण स्पर्श कर तथा अन्य लोगों की ओर सिर झुका कर राज सिहासन पर शिवाजी सपत्नी विराजे। नीचे की ओर तीन आसन पर शम्भूजी गागा भट्ट और पेशवा मोरेश्वर त्र्यम्बक पिंगले बैठे। अन्य मंत्री सिंहासन के दोनो ओर पंक्ति में खड़े थे। इसके पीछे नील प्रभु और बालाजी आवजी थे। अन्य दराबरी भी अपने अपने स्थान पर पहुँच गये।

सिहासन पर बैठते ही सोलह सधवाओ ने पुनः पंच प्रदीप से आरती उतारी। मंत्र पाठ आरम्भ हुआ। चार. ओर से फूल बरसने लगे। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया। फिर जय जयकर से आकाश फटने लगा—'क्षत्रिय कुलावतंस, सिहासनाधीश्वर, महाराज छत्रपति शिवाजी की—जय'

महाराष्ट्र के सभी किले में ठीक इसी समय तोपों की सलामी हुई। हर किले में उत्सव हुआ। पूरा प्रदेश जान गया कि शिवाजी को गद्दी मिली।

आठ बजे के करीब जब कार्य समाप्त हुआ तब अँग्रेज दूत हेनरी आक्सिण्डेन नीराजी रायजी के साथ महाराजा के सामने आया। शाही ढंग से मुजरा करने के बाद वह अपने दुभाषिये नारायण शेणवी के साथ सिंहासन के निकट आया और करीब ३००० रुपये के अलंकार भेट किये। शिवाजी ने अत्यन्त प्रसन्नता से

---

१. यदुनाथ सरकार के अनुसार इस सिंहासन में बत्तिस मन केवल सोना था।

उसे स्वीकार किया। इसके बाद मिलने तथा भेट देने का जैसे तांता ही लग गया। सभासदों में इत्र और पान की बाढ़ ही आ गयी।

अन्त में शिवाजी का जुलूस निकला। जुलूस के आगे एक हाथी जरीकी पताका और दूसरा हाथी भगवां झंडा लिये था। लाखों की संख्या में लोग जयजयकार करते चल रहे थे। मानों समुद्र उमड़ पड़ा था। राज मार्ग के दोनों ओर घरों तथा वृक्षों की शाखायो पर मनुष्य जैसे लदे थे। लोगों ने दूब तथा पुष्प वर्षा की। सधवाओं ने अपनी खिड़कियो से ही आरती उतारी। घूमता जुलूस रायगढ़ के सभी मन्दिरों में पहुँचा। पूजा पाठ समाप्त कर लोग दोपहर तक पुना गढ़ में लौट आये।

०००००००

यो तो पण्डितो ने सोच विचार कर अभिषेक की घड़ी निश्चित की थी, फिर भी लगता है इसमें कोई बहुत बड़ी भूल हो गयी, क्योकि अभिषेक के बाद ही एक के बाद एक आपत्तियाँ आने लगीं। दो ही दिन बाद शिवाजी की एक रानी का देहान्त हो गया। इसके बाद ग्यारह दिनों तक मूसलदार वर्षा होती रही। एक दिन सूर्य दिखाई नहीं दिया। इन दिनों कोई भी रायगढ़ से निकल न सका। सभी अतिथि टिके रहे। खूब खर्चा हुआ। यो तो बेशुमार दौलत पहले से ही लुटायी गयी थी। अब इस को मिलाकर करीब ७ करोड़ रुपये खर्च हो गये।

सबसे बड़ा धक्का तो उस समय लगा जब १८ जून को जीजीबाई स्वर्ग सिधारीं। पूरे महाराष्ट्र की आँखें डबडबा आयीं। शिवाजी के अधैर्य का ठिकाना न रहा। लगता है कि हिन्दू राज्य स्थापना के ही लिए वे जी रही थीं। अपना काम पूरा करते ही चल पड़ीं। अब शिवाजी अकेले थे। कौन रास्ता दिखायेगा? रामदासजी जो हैं। पर अब रास्ते की आवश्यकता क्या? रास्ता तो मिल चुका था। शिवाजी को उस पर केवल चलना था।

०००००००

राजा होने के बाद उन्होंने कई महत्व पूर्ण कार्य किये। राजगद्दी के दिन से एक 'राज्याभिषेक शक' नाम का संवत् चलवाया। फारसी और उर्दू के स्थान पर राज भाषा मराठी स्वीकार की गयी। राज काज में संस्कृति के परिभाषिक शब्दो का प्रयोग आरम्भ हुआ। ऐसे शब्दों का एक कोश 'राज व्यवहार कोश' बनवाया गया। यह कार्य रघुनाथ पतं हनुमन्ते की देख रेख में हुआ। जिसमें उस समय के कई प्रकाण्ड विद्वानों ने भाग लिया। जिनमें ढुंडिराज लक्ष्मण व्यास का नाम विशेष उल्लेखनीय है।[1]

शासन को आठ भागों में विभक्त किया गता। प्रत्येक की अच्छी व्यवस्था की।

अभिषेक के उत्सव में राज कोष बिल्कुल खाली हो गया था। हाथ पर हाथ रखकर बैठना अब शिवाजी के लिए सम्भव नहीं था। जूलाई खतम होते होते चारों ओर अफवाह फैली कि मराठे अब लूट मार शुरू करने वाले हैं। मुगल सुबेदार बहादुरखाँ ने चौकसी आरम्भ की। पेड़गाँव की छावनी से उसने २५ मील आगे बढ़कर मराठों को रोकना चाहा। पर इसी बीच दूसरी ओर से मराठों के एक दल ने छावनी लूट ली और आग लगा दी। १ करोड़ रुपया और २ सौ घोड़े लूट में मिले। फिर कई महीने लूट का काम चलता रहा। कोली प्रदेश, खानदेश बगलाना औरंगाबाद आदि लूटे तथा जलाये गये। अब मुगल परेशान हो गये, फिर भी उनकी शक्ति कम न थी। सन् १६७५ की फरवरी में उन्होंने कल्याण फूँक दिया। पूरा नगर जल उठा। अग्नि की तीव्र ज्वाला जाड़े की काँपती रात में आकाश की ओर लपकती रहीं।

इस भीषण अग्नि काण्ड के बाद मराठों ने एक विचित्र चाल चली। शिवाजी ने बहादुरखाँ से सन्धि का प्रस्ताव किया। बहादुर ने सोचा, चलो शत्रु परास्त हो रहा। सन्धि की बातें ठीक होने लगीं। इसी बीच कोल्हापुर और फोण्ड के सुदृढ़ दुर्ग पर मराठों ने अधिकार कर लिया।

---

1. सोयं शिवछत्रपतेरनुज्ञां मूर्धाभिषिक्तस्य निधाय मूर्ध्नि।
अमात्यवर्यो रघुनाथनामा करोति राज्यव्यवहार कोशम्।—सर देसाई

इस व्यवहार से बहादुरखाँ खूब बेवकूफ बना। ग्लानि की चरम सीमा क्रोध में समाप्त होती है। अब वह क्रोधित हो शिवाजी से बदला लेने के लिए बीजापुर के वजीर खवासखाँ से मिला। काम बनने में अभी देर थी कि बीजापुर के दक्षिण उमरावों और- अफगानो के बीच झगड़ा हो गया। खवासखाँ कैद कर लिया गया। बहादुरखाँ का सपना अलादीन के महल की तरह लुप्त हो गया।

इधर १६७६ की जनवरी में शिवाजी बहुत बीमार पड़े। स्वास्थ्य गिरता गया। अनेक उपचार होने के बाद सफलता मिली और तीन महीने की लम्बी बीमारी के बाद मार्च में हालत ठीक हुई।

'खवासखाँ मेरा मित्र था। वह मेरे लिए जान देने को तैयार था। हमें उसके शत्रु का डट कर मुकाबला करना चाहिये।' बहादुरखाँ ने सोचा। मुगल सेना नये वजीर तथा अफगान नेता बहलोलखाँ पर चढ़ आयी। आपसी झगड़े से तो वह परेशान था ही। अब वह मुगलों का सामना कैसे करे। लाचार हो उसने शिवाजी से सन्धि का प्रस्ताव किया। स्वार्थ में मनुष्य मित्रता ही नहीं शत्रुता भी भूल जाता है। इस सन्धि के अनुसार आदिलशाही राज्य की रक्षा शिवाजी को करनी पड़ेगी। इसके लिए बीजापुरी सरकार तीन लाख रुपया तथा एक लाख होण उन्हें कर के रूप में देगी। बीजापुर के जिन क्षेत्रों पर शिवाजी ने अधिकार कर लिया था, उनके वे पूर्ण अधिकारी मान लिए गये।—किन्तु यह सन्धि अधिक दिनों तक न टिक सकी।

---

१३

## दक्षिण विजय

अब शिवाजी की नजर कर्णाटक प्रदेश पर पड़ी। इस प्रदेश की नीची भूमि में तीन उमरावों—नासिर मुहम्मदखाँ, शेरखाँ लोदी तथा एकोजी की जागीरें थीं। इनमें आपस में ही छीना झपटी हो रही थी। सुलतान नाबालिक था। अब भला किसका डर रहा। राजनीति के मंच पर क्षिप्र गति से पटाक्षेप हो रहा था। इसी बीच गोलकुण्डा का ब्राह्मण मंत्री मदन्ना शिवाजी से मिला।

"कहो ब्राह्मण कैसे चले?" शिवाजी ने उससे मिलते ही पूछा। उन्होंने सोचा, शायद गोलकुण्डा के कुतुबेशाह ने इस ब्राह्मण को निकाल दिया है। यह शरण लेने आया है। उसने कुछ ऐसा ही उत्तर भी दिया—"महाराज आपही की शरण में तो आया हूँ।" वह मुस्कराते हुए बोला। शिवाजी की धारणा और भी दृढ़ हुई। वे हँस पड़े, बोले, "तो आओ। जहाँ चाहो वहाँ रहो। सबै भूमि गोपाल की।"

"नहीं महाराज। अभी रहने का कष्ट नहीं है। शाह का आप से एक आवश्यक कार्य है।" शिवाजी के अनुमान की भीत जैसे हिली। वे मदन्ना के स्वभाव और उसके विचारों से अच्छी तरह परिचित थे, किन्तु शाह से उनका कोई निकट का परिचय नहीं था। कुतूहल उनकी आँखों से टपक पड़ा। मदन्ना फिर बोला—इस समय गोलकुण्डा पर तूफ़ान आने वाला है। आकाश बिल्कुल लाल है। शाह को आपकी सहायता की अविलम्ब आवश्यकता है।"

"क्यों, क्या बात है।" अत्यन्त गम्भीर हो उन्होंने कहा।

"शेरखाँ ने जिंजी पर आक्रमण कर दिया है। नासिर मुहम्मद ने हमसे सहायता मांगी है।

"तो तुम दूसरे की सहायता करने के लिए इतने परेशान हो?" उसकी बात खतम होने के पहले ही वे बोल उठे।

"इसीलिए नहीं महाराज। शेरखाँ वहाँ से सीधा गोलकुण्डा आने वाला है।" अब उनकी मुद्रा गम्भीर हुई। वे सोचने लगे, आपस के झगड़े में पड़ना चाहिए या नहीं। किन्तु, इससे कोई हानि तो है नहीं। लाभ ही हो सकता है। पास बैठे शिवाजी के साथी भी चुप थे। वे पुनः बोले, आखिर शाह के सन्धि की शर्त क्या होगी?"

"इसे आपही निश्चित करें? मेरी मंशा तो कुछ और है?"

शिवाजी के सम्मुख जैसे एक नया रहस्य उपस्थित हुआ। वे छूटते ही बोले, "मंशा......? बोलो। कोई हरज नहीं। यहाँ सब अपने आदमी है।"

वह रुककर हिचकिचाते हुए बोला, 'हम चाहते है कि हमारा प्रदेश मुसमान शासक के लौह पंजे से मुक्त हो जाय। तीस बरस पहले के सफल हिन्दू शासन की आज भी जनता को याद ताजी है।......इसे आपही कर सकते है, महाराज।

हिन्दू धर्म और हिन्दू राज्य की याद दिलाकर जो चाहे वह शिवाजी से कराया जा सकता था।—और फिर इनमें कोई धोखा नहीं था। सन्धि की शर्तें प्रह्लाद नीराजी ने तय की थीं।

००००००

यह दूसरा चित्र है, रघुनाथ नारायण हनुमन्ते का। इस योग्य प्रभावशाली ब्राह्मण की तंजौर मे धाक जमी थी। शाहजी ने इसे अपने पुत्र व्यङ्कोजी का संरक्षक और वजीर बनाकर रखा था। सारा राजकाज उसके हाथ में था। अतएव उसकी और उसके भाई जर्नादन की राजा जैसी पूजा होती थी। "किन्तु

शासक मैं, और हनुमन्ते का सम्मान हो। यह कैसे हो सकता है?" व्यङ्कोजी ने सोचा, और उसने एक दिन हनुमन्ते को अचानक बुलाया।

यो तो राजा की आज्ञा थी, फिर भी वह राजा का संरक्षक था। भला किससे कम। उस समय तो वह टाल गया, किन्तु सन्ध्या को मिला। व्यङ्कोजी ने कहा, "अब मैं आपको अधिक कष्ट न देकर राज कार्य स्वयं करना चाहता हूँ।"

"इससे अच्छा और क्या हो सकता है? जब आप छोटे से थे तभी से मैं आपके सफल शासक होने की कामना करता रहा। अब मेरी कामना पूरी होगी, कितना अच्छा है, मेरे लिए?" वह ऊपर की ओर देखकर बोलता रहा, मानों उसके मंगलमय भविष्य की कामना कर रहा था। पर यह सब अभिनय था—बिल्कुल अभिनय। उसका मन तो बोल रहा था, 'हनुमन्ते, आज से तुम्हारा सम्मान समाप्त हुआ। अब कोई दूसरी राह देखो।'

व्यङ्कोजी ने पुनः कहा,—"अच्छा तो कल राजस्व का हिसाब बना दीजिए।" हनुमन्ते ने तो उस समय 'अच्छा' कह दिया, पर वह अपमान सह न सका। राजकोष में गड़बड़ी थी, भला हिसाब क्या बनाता। कई दिनो तक बीमारी का बहाना लिए पड़ा रहा। एक दिन उसने राजा से प्रार्थना की, "यदि आज्ञा होती तो सपरिवार काशी चला जाता। जीवन की सन्ध्या आयी। पता नहीं कब विस्तर बिछालूँ। कुछ दान पुण्य भी करलूँ।"

आज्ञा मिल गयी। वह सपरिवार गुप्त खजाने को ले चल पड़ा।

यह खबर शिवाजी को लगी। उन्होंने उसे अपने यहाँ बुलाया। उसे वह जानते थे। वह आते ही बोला—"आज मुझे बड़ी खुशी है महाराज। आदमी जिन्दा रहता है तो कहीं न कहीं मिल ही जाता है।" "यह तो मेरा भी भाग्य है, क्योंकि हम दोनों जिन्दे हैं।" आसपास के लोग जोर से हँस पड़े। शिवाजी पुनः बोले, "तीर्थयात्रा में जाने की क्या आवश्यकता? तंजौर में ही भगवान को याद करो। व्यङ्को अकेला है।" विशेष जानने की इच्छा से उन्होने कहा था।

"अब वह अकेला कहाँ? महाराज वह राजा है। उसके पास अनेक सैनिक

हैं। अब उसे मेरी सेवाओं की आवश्यकता क्या ?" वह चुप होकर पुनः बोला, "जब चीटी के मरने के दिन आते हैं तब पंख जम जाता है। आकाश में अपने बल पर उठना चाहती है। कितना बड़ा आकाश और कितने छोटे छोटे पंख!" वह जोर से हँसा और कहता रहा, "महाराज, आप पिता के बड़े पुत्र है। तंजौर के उचित अधिकारी आपही है। मैं आपको इसकी याद इसलिए दिला रहा हूँ कि यदि आपने उचित ध्यान नही दिया तो तंजौर में मुसलमानो की तलवार चमती दिखाई देगी।"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरे रहते व्यङ्कों पर कोई आँख नहीं उठा सकता।" "यदि उन्होंने आप पर तलवार उठायी तो ?" वास्तविक बात कह दी। वह नहीं चाहता था कि मुझे निकालकर मेरा राजा चैन से रहे।

"तो छोटे भाई का क्रोध बड़े भाई के सिर पर माथे पर ?" शिवाजी ने मुस्कराते हुए कहा और बात का सिलसिला ही समात कर दिया।

हनुमन्ते अब शिवाजी के पास रहने लगे। मराठो को एक अनुभवी और योग्य व्यक्ति मिल गया। इस बीच मुगल सुबेदार बहादुरखाँ ने भी शिवाजी से सन्धि की। उसने बहलोल से बदला लेने के लिए ऐसा किया था। शिवाजी को मिलाने से उसके कार्य में अब बाधा नहीं पड़ेगी। शिवाजी के लिए भी लाभ ही था। कर्णाटक ऐसे दूर प्रदेश में जाने पर मुगल आक्रमण कर सकते थे, किन्तु अब वे ऐसा नहीं करेंगे।

इसके बाद शिवाजी की गोलकुण्डा यात्रा की योजना बनी। जनवरी के आरम्भिक दिनों में ये ससैन्य चल पड़े। किसी को किसी प्रकार का कष्ट दिये बिना ही चुपचाप चलने की सेना को आज्ञा थी।

oooooo

मार्ग में एक दिन पड़ाव पड़ा। सर्दी की सन्ध्या की सनसनाती हवा के बीच कचहरी बैठी। प्रमुख अफ़िसर शिवाजी के दोनों ओर बैठे। सामने सैनिक थे। सभा के बीच में चार पाँच अभियुक्त खड़े थे। उनके हाथ बँधे थे। चेहरा नीचा था।

अभियोग लगाते हुए प्रधान शासक ने कहा—"यह बात सभी खास और आम को मालूम करा दी गयी थी कि यात्रा में गाँव वालों की किसी भी चीज को कोई हानि न पहुँचाएँ, किसी की आबरू न ले, फिर भी इन अभियुक्तों ने आज्ञा का उल्लंघन किया।" सभी शान्त थे। उसने नम्बर एक को आगे बुलाया और अभियोग पत्र पढ़ते हुए कहा—"..... इसने निकट के ग्राम के एक गरीब का झोपड़ा लूटा है ।" अभियुक्त अब भी चुप था। शिवाजी ने पूछा, तुम्हें अपने अभियोग के सम्बन्ध में कुछ कहना है।" उसने सिर हिलाकर कुछ न कहने का संकेत किया। इसके बाद अभियुक्त नम्बर दो तीन की पारी आयी। दोनों पर ऐसा ही लूट का अभियोग था। दोनो ने चुपचाप स्वीकार किया। चौथे अभियुक्त का अभियोग अत्यन्त गम्भीर था। अभियोग पत्र पढ़ते हुए प्रधान शासक बोला—"......इसने एक विधवा ब्राह्मणी के साथ बलात्कार किया है।"

सुनते ही शिवाजी जल उठे। व्याघ्रोचित स्वर में कड़कते हुए बोले, "तुम्हें इस अभियोग के विषय में क्या कहना है?"

"महाराज, उसने झूट कहा है।" अभियुक्त हिचकिचाते हुए बोला।

अब शिवाजी का क्रोध अपनी सीमा के बाहर आ पहुँचा। उन्होंने कांपते स्वर में पूछा—क्या वह औरत यहाँ तक आयी है?

"नही महाराज। उसने भरी सभा में अपना मुँह दिखाने के पहले चुल्लू भर पानी में डूब मरना अच्छा समझा है।" प्रधान शासक ने कहा। शिवाजी से अब न रहा गया। वे तडपे, "क्यो वह झूठ बोलती है? जो ग्लानि और लज्जा से अपना सिर नहीं उठा सकती, घर के बाहर निकल नही सकती, वह ऐसा अभियोग लगा सकती है। तुमने साधारण पाप किया होता, तो कदाचित वह अपने सम्मान का ख़्याल कर कुछ न कहती। उसकी आत्मा ने किस स्थिति में विद्रोह किया? उसने कैसे हमारे पास शिकायत भेजी—यह जरा सोचने की बात है। और यदि उसे झूठा अजाम लगाना होता, तो वह हममें से और भी लोगों पर लगाती। तुम्हारे खिलाफ ही उसने क्यों कहा?......एक तो तुमने

अपराध किया और फिर झूठ बोलते हो। इस अपराध की सजा मृत्यु से कम और कुछ नहीं हो सकती। मै नही चाहता कि ऐसे पापों की सजा में किसी प्रकार की रियायत कर औरो को अपराध के लिए प्रोत्साहित करूँ।"

चौथे अभियुक्त को प्राण दण्ड और शेष तीन को अंग भंग की सजा मिली। अब यात्रा में किसी की हिम्मत नहीं थी कि जरा भी उपद्रव करे।

○○○○○○

फरवरी के पहले सप्ताह में शिवाजी हैदराबाद पहुँच गये। आगमन में नगरी अपनी पूरी सज-धज के साथ मुस्कराही थी। हैदराबाद की गलियाँ कुंकुम और केशर से ढकी थी। प्रमुख मार्गों पर तो फूल बिछे ही थे। लाखों नरनारी आँखे बिछाये सड़को के किनारे तथा घरो के छज्जो और खिड़कियो पर बैठे थे। हैदराबाद एक प्रसून सा लग रहा था, जिसमें रंग बिरंगी साड़ी पहने औरते तितली सी मंडरा रही थी।

निश्चित समय पर शिवाजी का जुलूस निकला। प्रत्येक सैनिक जरी का वस्त्र पहिने उमरावकी तरह सजा था। प्रमुख सैनिको की पगड़ी से मोतियो के तोड़े लटक रहे थे। जनता अपने वीर पुरुष के दर्शन के लिए ललायित थी। जुलूस आते ही लोग चिल्ला उठे "छत्रपति शिवाजी की जय"। छज्जों से फूल बरसने लगे। शिवाजी ने मार्ग में दोनों हाथों अशर्फियाँ लुटायीं। योंतो लम्बी बीमारी और लगातार एक महीने की यात्रा से वे दुर्बल हो गये थे फिर भी उनका सदा हँसता चेहरा लोगों को अत्यन्त आकर्षक लगा। वे सबको हाथ उठाकर नमस्कार करते चलते, जनता निरन्तर जय पुकारती, महिलाएँ आरती उतारतीं, मंगल स्वर सवारती, श्रद्धा पूर्वक निहारती—जुलूस आगे चला जारहा था।

शिवाजी प्रत्येक मुहल्ले के प्रधान से मिलते और उसे खिलअत तथा अलंकार प्रदान करते आगे बढ़े। जब दाद महल (न्याय प्रासाद) के निकट पहुँचे तब जुलूस रुक गया। सभीशान्त खड़े हो गये। बाकी लोगों को छोड़ शिवाजी अपने पाँच प्रधानों के साथ महल में घुसे। कुतुबशाह दरवाजे पर पहिले से ही तैयार था। देखते ही

बोला, "जाओ मेरे प्यारे दोस्त" और छाती से लिपट गया। दोनों ने कई बार एक दूसरे को गले लगाया और फिर राजसी कालीन पर बैठे। शाह का मन्त्री मदन्ना भी बगल में बैठा। बाकी लोग खड़े रहे। घण्टों बातचीत हुई। शिवाजी ने अपने जीवन की साहसिक कहानियाँ सुनायीं। शाह बड़े चाव से सुनता रहा। महल की बेगमें भी ऊपर बैठी पत्थर की कलात्मक जाली से सुन रही थीं। कहते-कहते जब शिवाजी जोश में आ जाते तो उनकी मुखमुद्रा देखते ही बनती।

बात जब समाप्त हुई और वे चलने को हुए तब शाह बोला—"छत्रपति आप से मिलकर बड़ी खुशी हुई। जी चाहता है कि दिन भर बातें करूँ। पर आप थके हैं। रोकना ठीक नहीं समझता।"

शिवाजी हँसने लगे और बोले, "बातों के लिए तो अभी सारी जिन्दगी पड़ी है दोस्त।" वह उठकर चलने लगे। शाह ने मणि जड़ित स्वर्ण इत्र-पात्र से निकालकर अपने हाथ से उन्हें इत्र लगाया और पान का बीड़ा दिया तथा दरवाजे तक उन्हें पहुँचाया।

दूसरे दिन मदन्ना के यहाँ दावत थी। शिवाजी और उनके प्रधान कर्मचारियों को निमन्त्रण था। लोगों ने बड़े प्रेम से भोजन किया। मदन्ना अत्यन्त प्रसन्न था। उसने स्वागत में किसी प्रकार की कमी नही रखी। भोजन समाप्त करने के बाद शिवाजी ने कहा—मदन्ना, भोजन बड़ा स्वादिष्ट था। मन तृप्त हो गया। इसके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार करो।"

"मैं धन्यवाद का पात्र कहाँ? हमारे ऐसे गरीब के पास ऐसी कौन कला है जो आपको तृप्त कर सकें। यह तो आपका स्नेह है, आपने ऐसा कहा। हाँ, मैं आपका धन्यवाद अपनी बूढ़ी माँ से कहूँगा। उन्होंने आज का भोजन अपने हाथों बनाया है।"

शिवाजी गद्गद हो उठे, उन्होंने कहा "मेरा भाग्य है जो मैंने आज माताजी के हाथ का बना भोजन किया। स्नेह का इसमें स्वाद था, प्रेम के अपरिमित स्वाद से सेवरी के जूठे बेर भी अमृत तुल्य मीठे हो गये थे।...

माताजी से मेरा धन्यवाद ही नहीं, नमस्कार भी कहिए।" हँसते हुए वह बोला "अच्छी बात है।"

००००००

तीसरे पहर शिवाजी पुनः शाह से मिले। इस बार भी घण्टों बातचीत होती रही। पहले सन्धि की शर्तें निश्चित हुईं, फिर गोलकुंडा की राजनीतिक स्थिति पर विचार हुआ। शिवाजी ने धर्म की शपथ लेकर कहा कि जब कभी भी गोलकुंडा पर आपत्ति आयेगी तब मैं शीघ्र सहायता में उपस्थित होऊँगा। शाह ने भी ५ लाख रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया। कर्णाटक विजय की योजना पर भी विचार हुआ।

इसके पश्चात् दोनों मित्र महल के बरामदे में बैठे। सामने मराठी सेना नमस्कार करती निकल गयी। शाही परेड के बाद उस दिन का कार्यक्रम प्रायः समाप्त हो गया।

मौज मस्ती से भोज और तमाशे में ही दिन बीतते रहे। एक दिन एक महत्वपूर्ण घटना हुई। सन्ध्या के समय महल के बड़े उद्यान में शाह और शिवाजी अपनी सेना के प्रमुख अधिकारियों के साथ बैठे थे। देखते ही देखते समीर की मन्द गति सन्ध्या की लाली को भी बहा ले जा रही थी। शाह ने गम्भीर मुद्रा में शिवाजी से पूछा—"आपके पास हाथी कितने होंगे।"

"हजारों! उनकी संख्या मै ठीक बता नहीं सकता।" शिवाजी के सस्मित अधरों में भी गम्भीरता थी। पुनः वे जोर से हँसे और मालवे सरदारों की ओर संकेत कर कहा "हमारे कुछ श्रेष्ठ हाथी तो यहाँ ही बैठे हैं।"

"ये आदमी हैं या हाथी?" उसने साश्चर्य पूछा।

"ये आदमी हैं, पर हाथियों से भी अधिक शक्तिशाली।"

शाह को विश्वास न हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल इसकी परीक्षा रखी गयी। शाह ने अपना सर्वश्रेष्ठ हाथी मैदान में छोड़ा। इधर शिवाजी की ओर

से ऐसाजी कंक तलवार लेकर आ धमके। हाथी मद में चूर था। ऐसाजी भी उत्साह की मदिरा पीकर चूर थे। दोनों में भिड़न्त हो गयी। शाही तथा मराठी सेना के अतिरिक्त हजारों दर्शकों की भीड़ थी। दोनों पक्ष के लोग अपने-अपने लड़ाकुओं को ललकार रहे थे। कभी चिंघाडता हाथी अपनी सूड़ में ऐसाजी को लपेटने की कोशिश करता और कभी ऐसाजी गिरते हुए उसकी मस्तक में तलवार भोक देते। घण्टो लडाई चलती रही। महल के बरामदे में बैठे दोनों शासक अपने-अपने हाथियों की लड़ाई देखते रहे।

ऐसाजी थककर पसीने में लथपथ हो गये थे, फिर भी उन्होंने बडी खूबी से हाथी का सूँड़ काट लिया। चिघाडता वह मैदान से भाग चला। सभी मराठे मारे खुशी के उछल पड़े। 'शाबाश ऐसाजी' की आवाज चारों ओर से सुनायी पड़ रही थी। शाह को भी उसके पराक्रम पर आश्चर्य था। उन्होंने मुस्कराते हुए शिवाजी को बधाई दी।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद यहाँ से शिवाजी श्रीशैल के दर्शन के लिए चल पड़े।

कुर्नूल से पूर्व डेढ़ हजार फीट की ऊँचाई पर सघन बनों से घिरा मल्लिकार्जुन शिव का भव्य मन्दिर है। मन्दिर की ऊँची दीवारों पर विभिन्न पशुओं, योद्धाओं तथा ऋषियों के अतिरिक्त रामायण तथा पुराण के अनेक दृश्य बड़ी कारीगरी से खुदे हैं। प्रमुख शासको की इस मन्दिर को धन से सहायता मिलती रही है। द्वादश ज्योतिर्लिंग में इसकी भी गणना है। शिव के मन्दिर के निकट एक छोटा भवानी का भी मन्दिर है।

शिवाजी ने यहाँ स्नान-ध्यान और भगवती की पूजा में चैत्र की नवरात्रि बितायी। यहाँ की शान्ति, धरती के अंचल में बिखरी रम्यता, प्रकृति के अधरों से झरती स्निग्ध कोमलता शिवाजी को अत्यन्त लुभावनी लगी। यह स्थान उन्हें स्वर्ग जैसा प्रतीत हुआ। आध्यात्मिक विचारों में डूबे उनके भावुक मन ने एक दिन सोचा अब मुझे क्या चाहिए? हिन्दू राज्य का सपना पूरा हो गया। भगवती की कृपा होगी तो उसका विस्तार होता रहेगा। क्या ही अच्छा होता, यही माता के चरणों में अपनी बलि चढ़ा देता।

हृदय कंपा देने वाली इस विचित्र भावना के साथ शिवाजी माता के सुनसान मन्दिर में पहुँचे। भगवती की प्रतिभा उन्हें हँसती हुई दिखायी पड़ी। सोचा, माता प्रसन्न हैं। उन्होने माथा टेका। फिर गदगद स्वर में बोले, "तुम्हारे ही आशीर्वाद से मुझे यह तन मिला है। आप मै तुम्हें अर्पित करना चाहता हूँ। मेरे अपराधों को क्षमा करो माँ।" इतना कहते ही उन्होंने अपनी गर्दन पर तलवार मारने के लिए हाथ चलाया, किन्तु हाथ आगे न बढ़ सका जैसे किसी ने पकड़ लिया। वे स्तब्ध रह गये। उन्हें एक विचित्र आवाज सुनायी पड़ी—"शिवा, तू बहुत बड़ा अपराध करने जा रहा है। जिस तन को हमने बनाया है उस पर तुम्हारा क्या अधिकार ? तुम हमारी कृति को बिगाड़ने वाले कौन ? इससे तुम्हें मोक्ष नही मिलेगा। तुम्हारी आत्मा छटपटाती रहेगी। तुमने यह कैसे समझा की तुम्हारा काम समाप्त हुआ ? अभी तुम्हें बहुत कुछ करना है।" और फिर वैसा ही सन्नाटा छा गया। यह भगवती की वाणी थी या शिवाजी के मन की आवाज ? पर उनके कानों में बराबर गूँज रहा था "आत्म-हत्या पाप है। मृत्यु को पुकारना कायरता हैं।"

०००००००

चौथी अप्रैल को शिवाजी मद्रास की ओर बढ़े और १२ मई को जिंजी तथा २३ मई को बलूर दुर्ग अधिकार में कर लिया। दोनों दुर्गों की मरम्मत करायी गयी। जिंजी प्रदेश के दक्षिण में शेरखाँ लोदी की जागीर थी। अब उसकी बारी थी।

लोदी को उसके ब्राह्मण मंत्रियों ने आरम्भ से ही भ्रम में रखा था, अब भी वे यही कह रहे थे, "परवरदिगार शिवाजी भला कही आपका सामना कर सकता है ? उस मक्खी की क्या मजाल जो हाथी के सम्मुख सिर उठाये।" शेरखाँ को अपनी शक्ति पर हद से ज्यादा भरोसा था। किन्तु उसका भ्रम फ्रान्सेसो मार्टिन ने शिवाजी की वास्तविक शक्ति से परिचित करा कर दूर किया। पर अब क्या होता। समय दूर चला गया था।

तिरुवड़ी में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। मराठों के छह हजार सुसज्जित घोड़ो को देखकर खाँ का हृदय काँप उठा। वह अपने ब्राह्मण मंत्रियो पर दाँत पीस पीस कर रह जाता था। "किन्तु अब अफसोस करने से काम नहीं चलेगा। धीरे से भाग चलिए।" खाँ के एक सैनिक ने उसके पास आकर कहा।

गोधूलि थी। दोनो सेनाएँ लड़ रही थी। खाँ पीछे से चुपचाप भागा। तिरुवड़ी के किले में जाकर वह छिप गया और किले का फाटक भीतर से बन्द कर लिया गया। किन्तु मराठो ने वहाँ भी उसका पीछा किया। फाटक बाहर से तोड़ा जाने लगा, इसके पहले ही खाँ का दिल टूट चुका था।

अन्धकार की छाती पर धीरे-धीरे चन्द्रमा चढ़ आया। किले के पिछले गुप्त द्वार से खाँ अपनी जान लेकर जंगल की ओर भागा। इस समय वह अकेला था, बिल्कुल अकेला; मन की अशान्ति तथा प्रकृति की शान्ति ने ही उसका साथ दिया, किन्तु वह इन दोनों में सामंजस्य स्थापित न कर सका। उसके चरण काँप कर रुक गये। सिर चकराने लगा। वह मस्तक पकड़कर झुटमुट में बैठ गया। उसने दूर से देखा—हाथ में जलती मशाल लिए मराठे किला लूट कर चले जा रहे है। फिर भी वह चुप था।

इसके बाद मराठी सेना ने कालेरुण नदी के तट पर बसे तिरुमलवाड़ी में अपना डेरा डाला। जूलाई का महीना था, तूफान और वर्षा का मौसम। काम ठप पड़ चला था, फिर भी मदुरा से कर वसूल करने की कोशिश में मराठे थे, छिट पुट आक्रमण हो रहा था।

यहाँ से तंजोर केवल ५ कोस की दूरी पर था। शिवाजी का सोतेला भाई व्यंकोजी (एकोजी) यहाँ का शासक था। हनुमन्ते की बात रह रह कर शिवाजी को याद हो जाती थी। उन्होंने व्यंकोजी को एक दिन शिविर में मुलाकात के लिए बुलाया। पहले व्यंकोजी ने अपने मंत्री को भेजा और अभय वचन मिल जाने के बाद वे स्वयं दो हजार सैनिकों के साथ शिवाजी से मिलने आये। शिवाजी ने उनका खूब स्वागत किया।

एक दिन काम की बात छिड़ गयी। शिवाजी ने कहा—"पिता की जागीर

तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति तुम्हारे पास है। पिता के सम्पत्ति में मेरा भी कुछ अधिकार है।

"हाँ क्यों नहीं।" जो आपकी आज्ञा हो कहिए। व्यंकोजी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा।

"शास्त्र के अनुसार तुम्हारा बड़ा भाई होने के नाते हमें पिता की सम्पत्ति का तीन चौथाई भाग मिलना चाहिए।" शिवाजी ने कहा।

व्यंको कुछ बोल न सका, किन्तु वह एक चौथाई में सन्तोष करने वाला नहीं। उसने सोचा यदि इस समय मैं शिवाजी के कथन का विरोध करता हूँ तो भयंकर आफत आ सकती है। इसलिए विरोध होते हुए भी अत्यन्त प्रसन्नता जाहिर की।

रात हो चली। सैनिक शौच और स्नान में व्यस्त थे। कालेरूण का तट इस अँधेरे में भी जैसे गुलजार हो गया। धीरे धीरे अँधेरा और बढ़ा और तट सुनसान होने लगा। जब सारा कोलाहल सो गया, तब व्यंकों जी अपने कुछ सैनिकों के साथ शौच के लिए निकले। सैनिको ने तट पर चारो ओर देखा—आदिम न आदिमजात। बिल्कुल सन्नाटा। सैनिक बोला—कोई नहीं है महाराज। नाव तैयार है। तब तक डाड़े की छपछप आवाज सुनायी पड़ी। और नाव किनारे लगी। व्यंकोजी के साथ चार सैनिक नाव पर बैठे। नाव पार चली।

सबेरा होते ही व्यंको के भागने के समाचार ने सनसनी पैदा कर दी। शिवाजी को आश्चर्य था। क्या मैं उसे खाये जा रहा था कि वह भाग गया। उनके मंत्रियों पर कड़ी नजर रखी गयी, किन्तु बाद में उन्हें छोड़ दिया गया।

इसी बीच गोलकुण्डा पर मुगलो ने हमला किया। महाराष्ट्र से इतनी दूर आये मराठों को बहुत दिन हो गये थे। शिवाजी ने अब यहाँ रुकना उचित नहीं समझा। अपने पिता की जागीर के सभी हिस्से कब्जे में कर अपने भाई शान्ताजी[1] को शासक, रघुनाथ हनुमन्ते को दीवान और हम्बीर राव मोहिते

---

1. शाहजी का दासी पुत्र।

को सेनापति नियुक्त कर महाराष्ट्र चल पड़े। शिवाजी के अधिकार में आये, कर्णाटक का यह प्रदेश १८०,मील लम्बा तथा १२० मील चौड़ा था। इसमें ८६ सुदृढ़ दुर्ग थे।

'पिताजी के सारे प्रदेश पर शिवाजी का राज्य नहीं हो सकता।' व्यंकोजी ने पिता की जागीर लेने के लिए शान्ताजी पर चढ़ाई की। दिन भर की लड़ाई के बाद शान्ताजी की विजय हुई।

लाचार होकर व्यंकोजी ने सन्धि का प्रस्ताव किया। सन्धि की शर्तें शिवाजी के पास भेजी गयीं। उन्होने सोचा उतनी दूर जाकर शासन करना कठिन है, और फिर व्यंको भी मेरा भाई ही है.। उन्होंने शर्तें स्वीकार करलीं। मैसूर की जागीर भी उन्होने व्यंको को दे दी। शान्ति हो गयी। हम्बीरराव सेना लेकर लौट आये। रघुनाथ हनुमन्ते वहीं रहे। एक दिन व्यंकोजी ने हँसते हुए हनुमन्ते से पूछा—क्यों हनुमन्ते, तुम तीर्थ यात्रा कर आये।

"हाँ महाराज। मैं तीर्थ यात्रा आत्म शुद्धि के लिए नहीं; वरन् शासन शुद्धि के लिए करने गया था, और वह हो गया। यात्रा सफल रही न।" वह जोर से हँसा।

———

# १४

## जीवन सन्ध्या

शिवाजी के जीवन के अन्तिम दिन आपत्ति और असफल संघर्ष के दिन थे। उनका स्वास्थ्य भी धीरे-धीरे गिरने लगा। लड़ाइयों में [illegible] उन्हें वैसी सफलता नहीं मिलती। जिन दिनों वे कर्णाटक में थे, उनकी सेना ने गोआ और पुर्तगाली प्रदेश पर आक्रमण किया, किन्तु व्यर्थ। कर्णाटक से लौटते समय बेलगाँव के निकट बेलवाड़ी में सावित्री बाई नामक 'पटेलिन' ने डटकर शिवाजी का सामना किया था। इस कायस्थ विधवा ने सत्ताईस दिनो तक बेलगाँव के विशीर्ण किले की रक्षा की। मराठी सेना इस वीरांगना को भी सरलता से गिरफ्तार न कर सकी। एक दिन वह किसी कार्यवश किले के बाहर आयी और उसे साखूजी गायकवाड़ ने पकड़ा और बेईज्जत किया। महिला शिवाजी के सामने पेश की गयी।

जैसे वह जल रही थी। उसकी आँखों से आग निकल रही थी। वह कड़कती हुई बोली—क्यो राजा, तुम्हारे राज्य में यही न्याय है कि निहत्थी महिला पर आक्रमण कर उसे बेईज्जत किया जाय?

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।" शान्त भाव से शिवाजी बोले। पास ही गायकवाड़ भी खड़ा था। महिला जाल में फँसी सिंहनी की भाँति उसे घूरती "फिर इस नीच, पापी के लिये तुम्हारे यहाँ कोई सजा नहीं है। माना की मेरी और तुम्हारी शत्रुता है, किन्तु शत्रु से व्यवहार करना तुम्हारी सेना नहीं

जानती ।" वह अपने प्रति हुए अत्याचार लज्जा के कारण कह न सकी, किन्तु उसके क्रोधावेश और कहने के ढंग से शिवाजी ने सब समझ लिया। वह पुनः कहती गयी, "यदि तुम्हारे यहाँ न्याय है तो एक तलवार मुझे भी दो—और तब देखूँ इस नीच गायकवाड़ का पराक्रम।"

नारी की ऐसी गर्जना सुनते ही सब शान्त हो गये। गायकवाड़ काँपने लगा। उसे विश्वास था कि मेरे पापों का भंडा फोड़ छत्रपति के सामने नहीं होगा। किन्तु इस स्थिति में वह धैर्य खो बैठा। अत्यन्त भरे गले से शिवाजी ने कहा, "बहिन मेरा सिर अपने पापो के कारण लज्जा से नत है। तुम्हारे साथ जिसने ऐसा व्यवहार किया, सचमुच वह नीच है। पाप ने उसे अन्धा बना दिया था, और मै उसे सदा के लिए अन्धा बना दूँगा। मुझे क्षमा कर दो। तुम्हारी बहादुरी का मैं कायल हूँ। इतना ही याद रखो, जो शिवाजी हिन्दुस्तान के बादशाह औरङ्गजेब से नहीं हारा, वह एक साधारण महिला से हार मानता है।" उन्होंने अपने कर्मचारियों से गायकवाड़ की ओर सकेत कर पुनः कहा—इसे ले जाओ और इसकी दोनों आँखें निकाल कर जिन्दा छोड़ दो। जीवन भर दर-दर की ठोकर खाकर अपने पापो का प्रायश्चित करे।" गायकवाड़ हाथ जोड़कर कुछ निवेदन करना चाहता था, किन्तु शिवाजी उसकी एक बात भी सुनना नहीं चाहते थे। वे उठकर चले गये।

इस घटना के बाद उन्हें दो गहरी असफलताएँ और मिली। बीजापुर का किला लेने का प्रयास असफल रहा। अन्त में शिवनेरी के दुर्ग पर उन्होंने आक्रमण किया। कितना प्रिय था उन्हें यह किला। यही वे पैदा हुए थे। बचपन की कुछ सुखद स्मृतियाँ इस किले में जैसे उन्हें रह रहकर पुकार रही थी। किन्तु इस किले को भी वे न ले सके।

आपत्ति और दुलहिन कभी अकेले नहीं आती। उनका पुत्र शम्भूजी, जिससे बड़ी बड़ी आशाएँ थी, लम्पट, नशेबाज और दुराचारी निकला। अपने पुत्र के ऐसे चरित्र से उनका सपना एक बार चमक कर शीशे की तरह चूर चूर हो गया।

००००००

"अरे गजब हो गया। हे भगवान् तेरी भी लीला खूब है, ऐसे धर्मपरायण का पुत्र ऐसा दुश्चरित निकला। जिसने कभी परनारी को आँख उठा कर देखा भी नहीं, उसके पुत्र ने ऐसा कुकर्म किया।" पनघट से घड़ा भरकर जाती हुई एक स्त्री ने कहा। आस-पास की औरतें आश्चर्य से उसे देखती रहीं। "क्या हुआ बहिन?" एक ने पूछा।

"अरे सुना नहीं शम्भूजी ने एक सधवा ब्राह्मणी का धर्म नष्ट कर दिया और जब उसके पति ने इस कार्य का विरोध किया, तो उसे खूब पीटा।"

"आँखें संसार को देखती हैं पर स्वयं को नहीं देखती। छत्रपति ने सब पर कड़ी नजर रखी, पर स्वयं उसका पुत्र लम्पट निकला।" दूसरी ने कहा।

"दीया तले सदा अँधेरा होता है, बहिन।"

"क्या छत्रपति ने इसके लिए कुछ नही किया?" पुनः दूसरी बोली।

"आज सन्ध्या को दरबार होगा। देखो, क्या होता है।" मुँह ही मुँह बात चारो ओर फैल गयी।

सन्ध्या को दरबार हुआ। न तो चहल पहल थी और न पहिले जैसी प्रसन्नता। चुपचाप सभी आकर अपने स्थान पर बैठ गये।

शिवाजी सिर नीचा किये, मनमारे सभा में पधारे। सब ने उठकर अभिवादन किया, फिर शान्ति छा गयी। हथकड़ी और बेड़ियों से जकड़ा शम्भूजी सामने खड़ा था। शिवाजी ने एकबार भरी निगाह से उसकी ओर देखा, मानों शंकर तीसरे नेत्र से देख रहे हो। फिर वे उठे और बोले—साथियों, जिस अन्तर्द्वंद्व की स्थिति में मैं आपके सामने बोलने खड़ा हुआ हूँ। उसका अनुमान आप सब लगा सकते हैं। मुझे अपराध और अपराधी के विषय में कुछ नहीं कहना है। दोनों के सम्बन्ध में आप मुझसे कम नहीं जानते। इस समय मैं कुछ सोच नहीं पा रहा हूँ। मुझे दुख है कि आज यह सब देखने के लिए मैं जीवित कैसे हूँ? ऐसे पुत्र से तो पुत्र हीन होना ही अच्छा था। मुझे आज इस बात का दुख नहीं है कि मैं अपने पुत्र को कठोरतम दंड देने जा रहा हूँ, किन्तु दुःख इस बात का है कि हमारे स्वतंत्र राष्ट्र की इमारत की नींव ही पक्की

थी कि उसमें घुन लग गया। चरित्रहीनता बड़े से बड़े राष्ट्र को समाप्त कर देती हैं।

हमारे देश का इतिहास इसका साक्षी है। विलासता का विष पीकर ईरान, मिश्र रोम आदि देशों की महान् सभ्यताएँ अपनी कहानी धरती में छिपकर सो गयीं। चरित्र का पतन होते ही रावण ऐसा शक्तिशाली शासक भी समाप्त हो गया, फिर हमारी आपकी क्या बिसात?" बोलते बोलते शिवाजी रुके। जैसे उनकी आँखे डबडबाने लगीं। फिर बोलना जारी रखा..."यदि किसी और ने ऐसा अपराध किया होता, तो मै उसे प्राणदण्ड देता। किन्तु जब मेरे पुत्र ने ऐसा अपराध किया तो मै उसे प्राण दण्ड से भी कठोर दण्ड दूंगा। आज पूरा महाराष्ट्र देख ले कि पाप का प्रायश्चित कितना कठोर होता। इतिहास शिवाजी के इस न्याय को कभी न भूले।"

लोग शान्त थे। शिवाजी ने सैनिको को संकेत करके कहा—ले जाओ इसे और पनहाला किले में बन्द कर दो। मै अपने प्रधानो से राय लूँगा कि इसे कैसे मृत्यु दण्ड दिया जाय। जिससे अधिक से अधिक यातना सहनी पड़े।' सैनिक उसे ले चले। सभा समाप्त हुई।

शम्भूजी अपनी स्त्री येसूबाई के साथ पनहाला में बन्दी कर दिया गया। विरोध करने की उसकी जरा भी हिम्मत न हुई। वह पिता से एक शब्द भी बोल न सका।

इधर एक दिन (१३ दिसम्बर १६७८) रात में मौका पाकर शम्भूजी पनहाले से भाग निकला। अब वह मृत्यु की दीवार के बाहर था। रातो रात भाग कर वह मुगल सेनापति दिलेरखाँ से मिला। खाँ मारे खुशी में अपने को जैसे भूल सा गया। उसने बादशाह को शीघ्र ही पत्र लिखा कि दुश्मन का बेटा अब हमसे मिल गया है। मुश्किल जल्दी ही आसान हो जायगी।

शम्भूजी को बादशाह की ओर से राजा को उपाधि और सातहजारी मनसबदारी दी गयी। दोनों ने मिलकर बीजापुर के आक्रमण की योजना बनायी। पहिले वहाँ के शासक सिद्दी मसऊद ने शिवाजी से सन्धि की। बाद में ऐसी

परिस्थिति आयी कि उसकी सन्धि दिलेर से ही हो गयी। आगे बढ़कर दिलेर ने शिवाजी का भूपालगढ़ ले लिया। कैदियों के हाथ काट डाले गये, बाकी को गुलाम बनाकर बेच दिया गया। इस काण्ड से मराठों में हाहाकार मचा।

०००००००

लगातार लड़ते रहने से औरङ्गजेब का खजाना खाली हो गया। उसने दो अप्रेल १६७६ से जजिया नामक विशेष कर हिन्दुओ पर लगाया। यह कर तीन श्रेणी का था और प्रत्येक को आमदनी के अनुसार प्रति वर्ष देना पड़ता था।

बादशाह के इस अन्याय को शिवाजी सह न सके। उन्होने उसे अत्यन्त आकर्षक एव भाव पूर्ण पत्र लिखा। पत्र की मधुर फारसी भाषा नीलोजी प्रभू मुंशी की थी।[1]

शाहशाह आलमगीर !

"मैं आपका परम शुभचिन्तक शिवाजी, ईश्वर की अनुकम्पा एवं रवि की किरणों से भी उज्जलतर बादशाह के अनुग्रह के प्रति धन्यवाद प्रदान कर निवेदन करता हूँ कि मै आपका चिरहितैषी आपकी शरण से बिना आज्ञा के ही लौट आने मे बाध्य हुआ था, फिर भी सेवक में कर्त्तव्य एवं कृतज्ञता जितनी भी सम्भव तथा उचित हो सकती है पूरा करने में सदैव तत्पर हूँ...।

"इधर सुनने में आया है कि मुझसे लड़ने में आपकी सम्पत्ति और राज्य-कोष समाप्त हो चला है। अतएव अभाव की पूर्ति के लिए आपने केवल हिन्दुओ पर जज़िया नामक कर लगाया है। जिनकी वसूली से सरकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे।

---

१: इस पत्र की फारसी हस्तलिखित प्रतिलिपि रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन में सुरक्षित है। श्री यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री आफ दी औरङ्गजेब में उसका अँग्रेजी अनुवाद दिया है। यहाँ उस अँग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर।

"शाहंशाह इस विशाल साम्राज्य रूपी भवन के निर्माता बादशाह अकबर ने सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्मान से ५२ ( चान्द्र ) वर्षों तक राज किया था। उन्होंने ईसाई, यहूदी, मुसलमान दादूपन्थी, फलकिया ( गगनपूजक ) माला किया, आनसरिया ( विषयवादी ) नास्तिक, ब्राह्मण एवं जैन साधुओ आदि सभी धर्मानुयायियो के प्रति समानता के व्यवहार की नीति अपनायी थी। इसीसे वे 'जगत गुरु' के नाम से प्रख्याय हुये।

"दूसरे बादशाह जहाँगीर ने अपने कृपा की विशद छाया ससार और उसके निवासियों पर २२ वर्षां तक फैलायी। उन्होंने अपने मित्रो एवं कर्मचारियो के कार्य में हृदय से योग दिया। उनकी सभी इच्छाओ को पूरा किया। बादशाह शाहजहाँ ने भी ३२ वर्षों तक अपने कृपा की छाया लोगो पर छोड़ी और जीवन की अमरता का आत्मीय फल प्राप्त किया और अपने शासन के लिये नाम एवं यश कमाया।"

"नाम कमाने के बाद और किसी धन की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसकी जीवन कथा उसके नाम को अमर कर देती है।" ( फारसी पद्य )

"अकबर के पुण्य का ऐसा प्रभाव था कि वे जिधर मुडता सफलता और विजय उनका स्वागत करते। अपने शासन काल में उन्होने अनेक राज एवं किले जीते। उन बादशाहो की शक्ति और ऐश्वर्य इसी से समझा जा सकता है कि आलमगीर ऐसा बादशाह उसकी राजनीति का अनुसरण करने में ही असफल और व्यग्र हो गया। उन बादशाहों में भी जजियाकर लगाने की ताकत थी, किन्तु उन्होंने अन्धविश्वास अपने हृदय में फडकने नहीं दिया, क्योंकि वे समझते थे कि छोटे बड़े सभी मनुष्यो को खुदा ने विभिन्न धर्मों में विश्वास रखने एवं विभिन्न प्रवृत्तियों के उदाहरण स्वरूप बनाया है। उनकी दया की ख्याति स्मृति और समय के पत्र पर सदा लिखी रहेगी, मानव मात्र के हृदय और वाणी में इन तीन महान् आत्माओं ( बादशाहो ) की प्रशंसा और शुभ कामना सदा वास करती रहेगी। सफलता औरों की कामना का ही फल है। इसी से इनकी सम्पत्ति दिन पर दिन बढ़ती गयी। उनके राज्य में परमात्मा के प्राणी

निर्भयता और शान्ति से आराम करते रहे और उन बादशाहों को सफलता मिलती रही।"

"किन्तु आपके शासन काल में बहुत से किले और प्रदेश आपके अधिकार से निकल गये। जो बाकी हैं शीघ्र ही निकल जायेंगे, क्योंकि उनके विनाश के लिए मेरे प्रयत्नो में किसी प्रकार की कमी न होगी। आपकी प्रजा कुचली जा रही है। आपके प्रत्येक गाँव की आमदनी कम हो गयी है। एक लाख के स्थान पर हजार और हजार के स्थान पर दस रुपये वसूल होते है, और वह भी बड़ी कठिनाई से। बादशाहों और राजकुमारों के महलो में दरिद्रता तथा भिक्षावृत्ति ने अपना घर बना लिया है। उमराओ और अफिसरो की दशा की कल्पना बड़ी सरलता से की जा सकती है। आपके शासनकाल में सेना अनिश्चित है। व्यापारी त्रासित हैं। मुसलमान चिल्ला रहे है। हिन्दू अग्नि में भुने जा रहे है। अधिकाश को रात मे रोटी नसीब नहीं, और दिन में दिल की जलन के हाथ मारने से उनके गाल लाल हो जाते है। ऐसी दुःखद स्थिति मे आपकी शाही आत्मा प्रजा पर जजिया लगाने में कैसे प्रेरित हुई। शीघ्र ही आपका अपयश पश्चिम से पूरब तक फैलकर इतिहास की पुस्तको में सुरक्षित हो जायगा, कि हिन्दुस्तान के बादशाह भिखारियो के भिक्षापात्रों पर लोलुप दृष्टि डालकर, ब्राह्मणो जैन सन्तो, योगियो, सन्यासियो, वैरागियो, दिवालिए, दरिद्रता तथा अकाल के सताये लोगों पर जजिया लगा रहे हैं और भिखारियों की झोलियों के छीनने में ही अपना पराक्रम दिखा रहे हैं। आपने तैमूरवंश के नाम और सम्मान को दफना दिया।"

"शाहंशाह, यदि आप खुदा की पवित्र पुस्तक कुरानशरीफ़ में विश्वास करते होंगे तो आप उसमें पायेंगे कि परमात्मा सबका मालिक है (रब्-उल-आलमीन्) केवल मुसलमानों का मालिक (रब्-उल्-मुसलमीन) नहीं। इस्लाम और हिन्दू धर्म इन 'शब्दो' में केवल भिन्नता है। जैसे ये दो भिन्न रंग हैं, जिससे स्वर्ग के चित्रकार ने मानव-जाति का चित्र निर्मित किया है।"

"मस्जिद में उसे अजान से स्मरण करते है। मन्दिर में उसकी खोज में

घंटा बजाते हैं। धर्म एवं कर्मकाण्ड में कट्टरता दिखाना खुदा की पाक किताब (कुरान) की बातों को बदलना है। चित्र पर नयी रेखा खीचने का तात्पर्य है चित्रकार की भूल दिखाना।

"धर्म के अनुसार जजिया न्याय संगत नहीं। राजनीतिक दृष्टिकोण से यह उस समय लगाया जा सकता है जब एक सुन्दरी स्वर्ण अलंकारों से सुसज्जित होकर एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में निर्भय होकर जा सके। ऐसी सुरक्षा एवं सुव्यवस्था हो। किन्तु इन दिनों आपके बड़े-बड़े शहर लूटे जा रहे हैं तब छोटे-छोटे गाँवो की हस्ती क्या? ऐसी स्थिति में यह अन्यायपूर्ण है। साथ ही यह भारत में एक नया अत्याचार है जो अत्यन्त हानिकारक है।"

"यदि आप सोचते है कि प्रजा पर अन्याय करना तथा हिन्दुओ को धमकाना ही आपका धर्म है तो पहले हिन्दू-सिरमौर राणा राजसिंह से जजिया वसूल कीजिए, तब यह मुझसे वसूल करना कठिन नहीं होगा, क्योकि मै तो सदा आपकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ। किन्तु मक्खियों और चीटियो को दबाने और कष्ट देने में कोई पुरुषार्थ नहीं है।"

"मुझे आश्चर्य है कि आपके आफिसर देश की वास्तविक अवस्था आपको नही बताते वरन् ज्वाला को तिनको से दबाकर छिपाते हैं।"

"आपका राज सूर्य महानता के क्षितिज में सदैव चमकता रहे।

शिवाजी के इस पत्र का बादशाह पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। जजिया बन्द नहीं हुआ।

oooooo

"छत्रपति इसकी रक्षा कीजिए। बीजापुर का नमक आपके दो पुस्तों ने खाया है। आपकी इज्जत इसी बीजापुर से बढ़ी, किन्तु अब यह खतरें में है। दिलेर भीमा पार कर इधर चढ़ा चला आ रहा है। किले की रक्षा करने में हम असमर्थ हैं। हमारे पास शक्तिशाली सेना नहीं, रसद नही, रुपये नही, बचाव का कोई साधन नहीं। आपका ही का भरोसा है। आपके अतिरिक्त राज का दुःख

दर्द सुनने वाला इस समय कोई नही।...आप हमारी मदद करें। आप जो चाहेंगे, वह दिया जायगा।" हिन्दूराव नामक दूत द्वारा शिवाजी को दिये गये बीजापुर के वजीर मसऊद के वचन की ये पंक्तियाँ है।

हालत नाजुक देखकर शिवाजी ने उसी समय दस हजार सवार और रसद बीजापुर भेजी और अपने दूत बिसाजी नील कंठ को भी लिखा। वह मसऊद से मिला।

अक्टूबर के अन्त में शिवाजी ने स्वयं बीजापुर से पश्चिम सेलगुड़ नामक स्थान में पहुँचकर मुगल क्षेत्र में धावा किया। उन्होने सोचा कि इस आक्रमण से मुगल बीजापुर की ओर न बढ़कर इधर ही जुट जायँगे। राजधानी बच जायगी पर उसने ऐसा नहीं किया उसे तो बीजापुर के किले पर झण्डा फहराने की धुन थी। इधर मुगल राज्य लूटा और उजाड़ जा रहा था। उधर वह बीजापुर पहुँचा।

किन्तु ऐसा मजबूत किला लेना कोई खेल नहीं। शिवाजी और जयसिह ऐसे योद्धाओं को भी सफलता नहीं मिली, तो भला दिलेरखाँ की क्या बिसात? लाचार होकर वह एक महीने के बाद नगर छोडकर पश्चिम की ओर धनाढ्य प्रदेश की तरफ बढ़ा और लूट मार शुरू की। यहाँ के लोग निश्चित सुख चैन की जिन्दगी बिता रहे थे। आक्रमण की इन्हे जरा भी आशंका नहीं थी। इन्होंने बचाव नहीं किया था। ये खूब लूटे गये। गाँव का गाँव समाप्त हो गया। स्त्रियो की आबरू लूटी गयी।

चारों ओर हाहाकार मचा था। मुगलो के अत्याचार को शम्भूजी ने अपनी आँखों देखा। लम्पट होने पर भी उसमें शिवाजी का रक्त था, वह यह देख न सके। चुपचाप लौट आये। अत्याचार की इस दुःख दर्द भरी कहानी ने रात को भी विश्राम नहीं लिया। आधी रात के करीब पानी में गिरने की झमझम कई लगातार आवाजें शुरू हुईं। ऐसा लगा मानो यहाँ के निवासी अपना बहु-मूल्य समान कुएँ में फेंक रहे हैं। मुगल सिपाहियो मे खलबली मची, वे उस ओर लपके। यहाँ आसपास के कूओं पर हिन्दू और मुसलमान औरतें पंक्ति

बढ़ जा रही थीं। सधवाओं का श्रृङ्गार देखते ही बनता था। विधवाएं अपना बाल खोले बिल्कुल चंडिका-सी थी। कुछ औरतो की छाती से उनके छोटे चिपके बच्चों की आँखे इधर-उधर टुकुर-टुकुर ताकती थीं। एक के बाद एक नम्बर लगा था, प्रत्येक कूएँ में कूदती जाती थी। मुगलों को पास आते ही उनमें एक कुलागना तड़पी—आगे बढ़ने की हिम्मत मत करना। शान्ति और इज्जत ने तुम लोगो ने जीने तो नहीं दिया, अब आबरू बचाकर मरने में खलल मत डालो।

सिपाहियों ने ऐसी सामुहिक आत्महत्या अपने जीवन में कभी नहीं देखी थी। यह कड़कती आवाज सुनते ही वे अवाक् रह गये। आगे बढ़ने की हिम्मत न रही। चित्र से खड़े रहे और जब तक सभी औरतें कूएँ में न कूद गयी, तब तक न लौटे।

रात में मुगलो के खेमे में यही चर्चा रही। शम्भू ने दिलेरखाँ से कहा—"अब अत्याचार बन्द कीजिए खाँ।"

"मै तुम्हारे हुक्म की तामील करने के लिए यहाँ नहीं हूँ। तुम हमारे आफिसर नहीं हो।

"मै हुक्म नहीं, राय दे रहा हूँ खाँ। अत्याचार और उत्पीड़न से सलतनत सलामत नही रहती।"

खाँ जोर से हँसा और बोला—मुझे राय देने से अच्छा होता आप अपने आपको राय देते। उस समय आपकी यह बुद्धि कहाँ थी जब सधवा ब्राह्मणी पर नियत खराब हुई।

येह चोट अत्यन्त मार्मिक थी। वह क्या जवाब देता। मौन अपने शिविर में चला आया।

रात के तीन बज चुके थे। दस सैनिको का लेकर शम्भूजी चुपचाप शिविर के बाहर निकले। पत्नी यसूबाई भी पुरुष के वेश में थी। बिना बोले शान्त लोग आगे बढ़े। चलते समय एक मुगल सैनिक ने द्वार पर ही टोका था। किन्तु देखा शम्भूजी जारहे है। हो सकता है प्रातःकाल टहलने के लिए निकले

हो। यदि वह सोचता कि रानी साहब भी साथ है, शंका का आधार होता। पर उसने तो सभी पुरुष को ही देखा था। चुप हो गया। लोग बाहर चले गये।

कई मील चलने के बाद कुछ सिपाही आते दिखायी दिये। शम्भूजी ने सोचा मुगल हैं। आफत आयेगी। उन्होंने दो सैनिकों को पहिले देखने के लिए भेजा। तब तक वे वहीं आड़ में खड़े रहे। यसूबाई का मन जला जा रहा था। वह सोचती, यदि हमारा पति दुराचारी न होता तो ये दिन क्यों देखने पड़ते। वे अपने पर स्वयं मन ही मन कुडबुडा रही थी। तब तक दोनों सैनिक लौटे। उनके साथ और भी सिपाही थे। जिन्हें मुगल समझा गया था, वे मराठे निकले। सबने शम्भूजी से निवेदन किया, "इधर उधर भटकने से अच्छा है। आप पनहाला चले।"

"लेकिन तुम सब पिताजी का स्वभाव और उनके निर्णय से परिचित हो। ऐसी स्थिति में वहाँ मुझे खतरा है। मै नहीं जाऊँगा।"

अब यसूबाई से रहा न गया। उसकी विद्रोही आत्मा बोल उठी—इस प्रकार अपमानित होने से तो अच्छा था आप पनहाला मे मृत्यु की सजा भुगतकर अपने पापो का प्रायश्चित करते।"

पत्नी की ऐसी फटकार सुनकर शम्भूजी पनहाला की ओर चले। प्रभात की प्रसव वेदना से रजनी का मुख लाल होने लगा।

००००००

"महाराज अब शहर में सम्पत्ति नहीं रही। लोगों ने अपना धन जान मुहम्मद नामक पीर के आश्रम में छिपा दिया। लोगो ने सोचा है कि इस धार्मिक स्थान पर मराठे हाथ नहीं उठायेंगे।" औरंगाबाद से ४० मील पूरब के जालना नामक नगर के लूट के समय सैनिको ने शिवाजी से कहा।

"तो पीर से कहो कि वह सारी सम्पत्ति दे दे, नहीं तो उसका आश्रम उजाड़ दिया जायँगा। ऐसे ढोंगी पीरो से शिवाजी नहीं डरता।" उसी समय पीर के

के पास सैनिक पहुँचे। उसे छत्रपति की आज्ञा सुनायी, किन्तु उसने विचार नहीं बदला और कहा—"नगर के लोगों के धन की रक्षा के लिए मैंने वचन दिया है। मैं मरते दम तक वचन का पालन करूँगा।" किन्तु मराठे नहीं रूके। वे आश्रम उजाड़ने और लूटने लगे। पीर ने हाथ में पानी लेकर पाक कुरान की आयत पढ़कर बददुआ दी। 'खुदा ऐसे राजा को जल्दी ही जमीन से उठालो।'[1]

नगर और आस पास के गाँव लूटकर ज्योंही शिवाजी लौटे मार्ग में ही मुगलों का एक दल उनसे आ भिड़ा। तीन दिनों के बाद दूसरी शक्तिशाली मुगल सेना औरंगाबाद से भी आ गयी। अब वे चारों ओर से घिर गये। पीर की बद्दुआ शीघ्र ही सामने आती दिखायी थी। वे बड़े फेर में फँसे। अन्त में मुगल सेना के एक सरदार केशरीसिंह की सहायता से वे सारी सम्पत्ति छोड़कर केवल पाँच सौ सवारों के साथ किसी प्रकार जान बचाकर निकले। अनेक मराठे योद्धा इस लड़ाई में काम आए, अनेक पकड़े गये।

नासिक के २० मील पूर्व पट्टादुर्ग (विश्रामगढ़) में शिवाजी पहुँचे, तो वे बहुत थके थे। यहाँ उन्होंने कुछ दिनों तक विश्राम किया। जब कुछ आराम हुआ तब रायगढ़ गये। अब उन्हें जैसे यह विश्वास हो गया था मैं अधिक दिनों नहीं चलूँगा। इन्द्रियाँ श्रात हो गयी थी। जीवन के पथ पर संघर्षरत चरण अब कुछ शिथिल पड़ रहे थे। मेरे बाद महाराष्ट्र का क्या होगा। कौन मेरी तलवार सँभालेगा। उनको यह भीषण चिन्ता समा गयी। इसी चिन्ता में वे ४ दिसम्बर १६७६ को शम्भूजी मिलने गये।

अब भी शम्भूजी में, कुछ परिवर्तन नहीं हुआ था। उसकी मुखमुद्रा और चालढाल से लम्पटता साफ जाहिर होती थी। शिवाजी अब हताश से थे फिर भी उन्होंने पुत्र को समझाया। अपने राज्य का विस्तृत विवरण उसे बताया। सम्पत्ति और सैनिक शक्ति से उसे परिचित करते हुए बोले "शम्भू यदि तुम

---

१. इस घटना के पाँच ही महीने बाद शिवाजी की मृत्यु हुई।

चाहो, तो इतनी शक्ति से सम्पूर्ण भारत पर छा सकते हो। जन्मभूमि से विदेशियों को निकाल सकते हो।" किन्तु शम्भूजी सदा चुप रहता। उनके उपदेशों का उस पर कुछ प्रभाव दिखाई नहीं देता। ऐसा लगता, वह एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है। फिर भी पिता पुत्र को सुधारने का प्रयत्न करता रहा।

शिवाजी जानते थे कि मेरे मरने के बाद राज्य की क्या दशा होगी। दुश्चिन्ता तथा दुर्भावना ने उनके मन में अशान्ति उत्पन्न कर दी थी। एक दिन ऐसी ही मानसिक अशान्ति में वे बैठे थे, उन्हें अपने मन की आवाज सुनायी पड़ी—शिवा सोचो, तुम्हारे रहते ही शम्भू में लम्पटता आ गयी तब तुम्हारे न रहने पर क्या होगा। भावना से कर्त्तव्य बडा है। तुम अपने पुत्र के लिये दण्ड घोषित कर चुके हो! उसे माफ नही कर सकते। इतिहास क्या कहेगा? दुनिया क्या कहेगी? यही न, कि उसने सारी न्यायप्रियता तथा धर्म परायणता की हत्या पुत्र प्रेम की बलिवेदी पर दी। शिवा फिर से सोचो...समझो... यदि यहाँ फिसले तो फिर उठ न सकोगे।" वह और भी घबरा उठे। उन्होने उसे पनहाला में पुनः कैद कर लिया। शिवाजी के इन आकस्मिक परिवर्तन पर लोग आश्चर्य चकित थे। फरवरी मे वे रायगढ़ लौट आये।

उत्तराधिकारी कौन होगा? उन्होंने अपने दूसरे पुत्र राजाराम का मार्च (१६८० ई०) में उपनयन तथा विवाह कर दिया। इस समय उसकी अवस्था दस वर्ष की थी। समारोह भी साधारण ही था। शिवाजी का दिल टूट चुका था। घोर आशावादी पुरुष जीवन की सन्ध्या में निराशा के थपेड़े में आ चुका था। स्वास्थ्य गिरता ही गया।

२३ मार्च १६८० ई को उन्हें बुखार आया और फिर रक्त अमाशय से पीड़ित हुए। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध वैद्य और चिकित्सको ने औषधि आरम्भ की। किन्तु रोग धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। विस्तर से लग गये। जीवन ज्योति काँपने लगी। ३० मार्च से हालत चिन्ताजनक हो गयी। मन्दिर और मस्जिदों में छत्रपति की जीवन रक्षा के लिए सामुहिक प्रार्थनाएं आरम्भ हुई। किन्तु, कुछ फल न निकला।

प्रधान राज कर्मचारी अपने स्वामी के विस्तार के पास ही थे। रायगढ़ के बाहर जनता प्रतिक्षण अपने छत्रपति की दशा जानने के लिए विकल थी। अन्त में तीन अप्रेल की रात को उन्हें तेज पसीना छूटा, वे कुछ घबराये से दिखाई दिये। उन्होंने संकेत से अपने प्रधान कर्मचारियों को निकट बुलाया और बड़े धीरे से बोले—अब मै चला। घबराने की कोई बात नहीं। बराबर इस पृथ्वी पर आता रहूँगा। जीवात्मा अमर है। शरीर के नाश होने से क्या होता है। आप धरती माता की बराबर सेवा करते रहिए, क्योकि अब मै जब आऊँ, तो आपको अधिक सम्पन्न और प्रसन्न देखूँ।......" इसके आगे वे कुछ बोल न सके। सबकी आँखें बरस पड़ी। शिवाजी की निष्प्रभ आँखो में भी आँसू आ गये थे। रात का भयावह काँपता अँधेरा और भी डरावना हो गया था। रात ही में तीन बजे के करीब उनकी चेतना लुप्त होने लगी।

इधर पूरब में सूर्य उदय हो रहा था, इधर महाराष्ट्र सूर्य अस्त हो चला।

---